"भाई बरुआ के नवीन मौलिक उपहार "अखिया निहार के, पग धूरि झार के" को पाकर अनुगृहीत हुआ। विषय की नवीनता और लेखनी की कला-कमनीयता तन-मन की आंखों में ऐसी चुभी कि इस संवेदना के सरोवर में अवगाहन करते ही बना। विद्रोही कलम के धनी ने आज के दाम्पत्य जीवन के अन्तस और बाह्य को जिस पैनी तरल दृष्टि से पहचाना है, वह आज तक की भावभूमि से अनजाना है। जीवन के अन्धेरे-उजेले पाख का इतना मनोरम और मार्मिक उद्घाटन आश्चर्य में डालनेवाला है। हमारे संक्रमण काल की अस्त-व्यस्त मनोदशा के विस्मृत विश्वास को मूर्तिमान करनेवाली यह लेखनी अभिनन्दनीय ही नहीं, स्पृहणीय भी है। मैं भाई बरुआ को इस आस्था-पूर्ण सजग संकल्पनात्मक समाराधन के लिए सौ-सौ साधुवाद देता हूं।"

अँखियाँ निहार के !
पग-धूरि झार के !!

युग-पुरातन लक्ष्मण-रेखा

अँखियाँ निहार के पग-धूरि झार के

[संघर्षी दाम्पत्य के उठते-गिरते पलड़ों में आसीन अश्रु और हास की प्रतिष्ठा-सूक्ति]

लेखक

य रु आ

[कलकत्ता के उर्दू कथाकार, कलकत्ता के हिन्दी कथाकार, रामू के मूक आँसू, शैलेय और अर्जेय हथौड़े के ख्यातिप्राप्त रचयिता]

प्रकाशक

रामपुरिया प्रकाशन

कलकत्ता-२०

प्रकाशक
श्री रतनलाल रामपुरिया
रामपुरिया प्रकाशन
२, उडबर्न रोड, कलकत्ता

प्रकाशकीय-सम्पादक
यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'

प्रकाशकीय-व्यवस्थापक
ललितकुमार शर्मा 'ललित'

चित्रकार
शशिकान्त

प्रथम बार २०००

मूल्य चार रुपया

मुद्रक
पं० बृजलाल पाण्डेय,
युनाइटेड कमर्सियल प्रेस लि०,
१, राजा गुरुदास स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

प्रकाशकीय-सूचना :

क्षमा करें, आपसे एक प्रश्न है 'आप अपनी पत्नी कैसे रखते हैं ?'

एक युग था, जब परिवारों की सामूहिक सूचनाएं पास-पड़ोस में नियमित तौर पर पहुंचती रहती थीं। आज हमारा देश एक बड़ा मुहल्ला भर बन गया है, उस हालत में आपके परिवार की शुभ-अशुभ सूचनाएं किस तरह आपके उत्तर, दक्षिण, पूरब और पच्छिम के अंचलों में पहुंच पायें ?

मन्दिरों में सुबह-शाम घड़ियाल और आरती की घंटियाँ अपने सार्थक युगों में, दूर-दूर तक, एक निश्चित् घड़ी की शुभ सूचना नियमित समय पर भिजवाने का सहज साधन बनी हुई थीं। इसी तरह लाश को श्मशान तक ले जाने के क्षणों में 'राम नाम सत्य' की धुन अलापते हुए जो शंख ध्वनि की जाती थी, पास-पड़ोस में वह सामाजिक अशुभ का संकेत मात्र हुआ करता था। क्योंकि परिवारों के समूह का नाम एक मुहल्ला हुआ करता, यह एक स्थायी नियम सा था कि सब परिवारों की चहल-पहल आपसी दुख-सुख की सूचनात्मक हार्दिक आत्मीयता से विश्वस्त और आश्वस्त रहे। किन्तु आज परिवार तो हैं, पर मुहल्लों के बीच में एक-एक टापू सदृश। और मुहल्ले दूर-दूर खड़े हुए मानवीय रिश्ते से अछूते बट वृक्ष जैसे !

इसी तरह, आज सारे देशके परिवार एक-हजार-एक तरीकों से दीर्घ और हल्की, ठण्ढी-तप्त व विषाद और हर्ष की साँसें लेते हैं और बौधिक समाधान तथा सहानुभूति से दूर, अपनी गिरिस्ती के दुख-सुख की सामूहिक सूचना देने में विश्वास नहीं करते।

लेखक ने इसी विस्मृत विश्वास का सूत्र हाथ में लेकर अपने प्रवास-काल की वे पारिवारिक झलकियां दी हैं जब कि वह एक या दो दिन किसी न किसी परिवार में मेहमान की बतौर ठहरा है।

सभी परिवारों का जीवन-यापन जरा से हेरफार के साथ एक—जैसे रूदन और हँसी के दो समानान्तर तटों के बीच से प्रवहमान है। इसी प्रवाह में लेखक की तरणी चली है। आप आज इसी तरणी की यात्रा का ब्यौरेवार रिपोर्ताज सुनेंगे।

अपने पाठकों के हाथों में अपने प्रकाशन की यह दूसरी कृति भेंट करते हुए हम हार्दिक सन्तोष अनुभव कर रहे हैं।

—रतनलाल रामपुरिया

लेखकीय निवेदन

दम्पत्ति चिरजीवी हों !

आजकल जो माचिस बाजारों में खुलेआम बिकती हैं और जिन्हें आप निर्भीकतापूर्वक अपने घरों की रसोई में व कोठियों में जहाँ-तहाँ रखे रहते हैं, या सिगरेट जलाने के बाद सोते समय अपने तकिये के नीचे ही सरका कर सहेज देते हैं, 'सेफ्टी माचिस' कहलाती हैं। यह सेफ्टी शब्द जरा तसल्ली से प्रसवित नहीं हुआ होगा; इसका बीज-निर्माण भी जरा कठिनता से ही बन पड़ा होगा। यातायात में खतरे के स्थानों पर सेफ्टी का बड़ा-बड़ा साइनबोर्ड लगा रहता है। और इन दिनों तो चौराहों पर, क्योंकि पैदल चलने वालों को चौराहे के संतरी की उठी हुई बाईं-बाईं बाँहों का आज्ञा-पालन करना पड़ता है, चेतावनी के बतौर लिखा रहता है कि आप के सामने मृत्यु आवारा घूम रही है; जरा बच कर रहिये और अपनी सुरक्षा सम्हाल कर रखिये। 'सेफ्टी फर्स्ट' सड़कों का शाश्वत् नियम सा करार हो गया है। इसी तरह यह 'सेफ्टी' माचिसों के पहले विशेषण उस समय लगाने की जरूरत आ पड़ी थी जब माचिस की तीलियाँ माचिस में ही रगड़ने से नहीं जलती थीं, बल्कि उन्हें जमीन पर पड़े पत्थर या दीवार से या लोहे के ट्रंक से ही रगड़ने से अग्नि-सुहासिनी (अग्नि-देवता शब्द मुझे आज तक, सच मानिये, जँचा ही नहीं।) गुप्त मायाविनी प्रेमिका की नाईं प्रकट हो कर आप का प्रथम और अंतिम आलिंगन करनेके लिये उत्सप्त हो जाती थी। उन माचिसों से अनेक दुर्घटनाएँ घटीं, अनेक बच्चे जल मरे और अनेक जराजीर्ण मकानों का उद्धार हो गया था। तभी सरकार की ओर से उन माचिसों का प्रचलन बंद हुआ था

और उसी के बाद से इन सेफ्टी माचिसों का व्यवहार चालू हुआ था। ये तो सिर्फ माचिस की पेटी की बगल में एक गहरी स्फूर्णा देने से ही आसक्त होकर उद्दीप्त हो सकती हैं। यह 'सेफ्टी' जैसे तो आमतौर से चल रही अग्नि-दुर्घटनाओं की लक्ष्मण-रेखा बनाकर खींच दी गई थी।

लक्ष्मण-रेखा! जैसे तो अपने युग में भी सीता के सौंदर्य का विशाल ज्वाल तामसी और राजसी वृत्तियों वाले दानवों और राक्षसों तक को अपने प्रखर दाहक-स्पर्श से मोहाच्छादित करता फिरता था, उसी की सुरक्षा के लिये लक्ष्मण ने एक रेखा चारों ओर वृत्ताकार खींच दी थी कि इस सुहासिनी अग्निमयी मानवीकी ज्वालाओं से सब राक्षस अपने को सुरक्षित कर सकें। सच मानिये, आप! लक्ष्मण ने वह रेखा सीता की सुरक्षा के लिये नहीं खींची थी। वह तो उन्होंने सेफ्टी की बतौर खींची थी कि दानव या राक्षस आकर उसमें न जल मरें। और आप जानते ही हैं कि सीता का अंत तक कुछ न बिगड़ा। रावण उस के रूप-ज्वाल में इस तरह झुलस कर मरा कि उस की नाभि का अमृत भी उस की अमरता की रक्षा न कर सका।

लक्ष्मण-रेखा हमारी प्राचीनतम सभ्यता के चौराहों की प्रहरिनी रही है। वह शाश्वत सेफ्टी की सनातन प्रतीकिनी बन कर आज तक जीवित रहती चली आ रही है। आज तो नवीन सभ्यता और नवीनतम संस्कृतिका युग और जमाना है। वाह्य जगत् में सेफ्टी के कुछ मोटे-मोटे कायदे-कानून निर्धारित हो चुके हैं। पर आज भी हमारे घरों में, हमारे सामाजिक चौराहों पर यही लक्ष्मण-रेखा खिंची हुई है और यही सामाजिक खतरों के, तूफानों के और बवंडरों के आने की पूर्व-सूचना देती रहती है। लक्ष्मण-रेखा सिर्फ एक मोटी रेखा ही नहीं थी। उसने सीता को और सीता को अपने आलिंगन-पाश में बद्ध करने वाले महामूर्खों को अग्रिम खतरे की घंटी टुनटुना कर सुना दी थी कि होशियार, सचेत! सेफ्टी वही, जो कि आप की सुरक्षा बाद में करे, पहले आपको अग्रिम खतरे

की सूचना जरा जोर से घोष कर दे। अन्यथा सेफ्टी चालाक सियारों के लिये खेत में एक डंडे के सिर पर रखी हुई हंडिया मात्र ही रह जाती है। वह खेत का पदरोपण या चर्वण करने वाले दुष्ट जानवरों को किसी मनुष्य या पहरेदार का बोध नहीं होने देती।

मुझे यह तो पक्का विश्वास है कि आप को रामायण की लक्ष्मण-रेखा वाली कथा पूरी तरह से याद नहीं है, या पूरी तरह से समझ में नहीं आई है। प्रायः इस बात से आप नाराज हो उठेंगे तो निश्चय ही अपनी असहिष्णुता का नग्न परिचय देंगे।

रामायण पुस्तक कम है, ताम्रपत्री इतिहासिक-पत्र अधिक है। और, जिस इतिहासिक-पत्रक पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पदतलुओं की छाप कम, सीता नाम्नी तरुणी के गोरे पदतलुओं की पदच्छाप ही भरपूर अंकित है। और इन्हीं स्त्रैण पद-तलुओं की रेखाओं को पढ़कर हमारे इतिहासकारों ने और कवियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की मानवी रूपरेखा निर्धारित की है।

इसी निर्धारित की हुई धारणा को जो लोग एकदम हृदयंगम् कम करते हैं, या कतई नहीं करते हैं, बल्कि, इस धारणा के इर्दगिर्द लहकती हुई एक निगूढ़ मृगमरीचिका को ही अपना ईष्ट-देवता मान कर नित्य प्रति सुबह यह काम करते हैं कि रामायण का पाठ तोते की तरह से करते ह, उन्हें मैं अगर नास्तिक कहता हूँ, तो उन्हें मुझ पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

रामायण-पाठी सुनाया करते हैं कि रामने सोने के मृग को मार दिया था। पर वे कितना असत्य भाषण करते हैं। अरे, विशुद्ध भक्तों को ऐसा असत्य भाषण शोभा नहीं देता। राम ने अगर स्वर्णिम मृगमरीचिकाका संहार कर दिया होता, तो आज इस दुनिया में सर्वत्र पृथ्वी के चप्पे-चप्पे पर, स्वर्ण की मृगमरीचिका के पीछे क्यों हाहाकार मचा हुआ होता? नहीं, उस स्वर्णिम मृगमरीचिका के समूल नाश

की बात गलत है। वही मृगमरीचिका तो महाकवि तुलसीदास की जरा-सी चूक से सारी रामायण में इस तरह व्याप्त हो गई है, गोया कि यही मृगमरीचिका रामचन्द्र जी की पुरुषोत्तमी मर्यादा थी। और, न जाने कितने सैकड़ों सालों से हमारे भोले ग्रामीण इसी मृगमरीचिका के पीछे अंधे इंसानों की तरह दौड़ते चले आ रहे हैं। राम ने उस स्वर्णिम मृगमरीचिकाका समूल संहार कहाँ किया ? उन्होंने तो मारीच राक्षस का वध किया था। वह राक्षस मरते-मरते भी राम को छका गया और अपनी मायाविनी मृगमरीचिका उनके रोम-रोम में सूक्ष्म जहर सी कोंच गया। और सदा के लिये स्वर्ण के प्रति जन-जन में आसक्ति का विष-बीज बो गया।

किसी गड़े हुए मुरदे की दुबारा शनाख्त करने के लिये जब पुलिस दुबारा कब्र खोदती है, तो स्वाभाविक है कि उस लाश की ऐसी दुर्गति पर सभी को दुख होता है। लेकिन इतिहास को आप मरी हुई लाश न समझें। इतिहास की लक्ष्मण-रेखा में जो व्यक्ति अपनी मृत्यु के उपरान्त आकर सुरक्षित रूप से चिर-विश्राम करता है, अगर उसकी शव-परीक्षा पुनः पुनः की जाती है तो आप निश्चय रखिये कि उस लाश की सद्गति ही होती है। सब से बड़ी बात यह है कि भगवान राम इतिहास की लक्ष्मण-रेखा में इस तरह अवस्थित नहीं हैं कि उनका सीता की तरह से अपहरण किया जा सके। मैं तो रामायण को अन्तिम सत्य आज तक नहीं मान सका हूँ। हमने अपनी अंध-बुद्धि से उस लक्ष्मण-रेखा में बंदी राम के सत्यों को आज तक अपनी इन नग्न आँखों से देखने का दुस्साहस ही नहीं किया है। पर बिना उस दुस्साहसके हम राम को निर्जीव ही नहीं बने रहने दे सकते। वे मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। आज जब कि हमारे नये राष्ट्र के नये समाज के लिये नई लक्ष्मण-रेखाओंकी अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी है, उस समय अत्यन्त जरूरी है कि हम राम के नये अर्थ और उनके जीवन के वे अभाव जो कि उस समय पूरित नहीं किये जा सके और जिनके घाव आज तक

हरे रहते चले आये हैं, आज गूढ़ भक्तिभावमें ग्रहण करें और राम की पुरुषोत्तमी मर्यादा का वह अमृत, जो कि राम ने रावण की नाभि से स्खलित करा कर सिर्फ धूल में ही बिखेर दिया था, अपनी नई संतति को चरणामृत के रूप में बाँटें। आप चौंकिये मत, मैं आप से कहीं शत-शत सहस्र-गुणी धार्मिक आदमी हूँ।

लक्ष्मण-रेखा की कहानी

तो, पहले कहानी ठीक आकार-प्रकार में सुन ली जाये और तब हम उस शहद के छत्ते में वैज्ञानिक तरीके से शहद निकालेंगे। गँवारू तरीका तो यह है कि शहद के छत्ते को तोड़-मोड़ कर चीथ डाला जाता है और उसे भींच-भींच कर शहद निकाला जाता है। और सैकड़ों मक्खियोंकी हत्या कर दी जाती है। इस तरह राम-कथा का शहद निकालने के लिये न जाने किस-किस गँवार भक्त ने रामायण की भी इसी तरह दुर्गति की है। आधुनिकतम शहद निकालने की प्रणाली यह है कि आप शहद इस तरह निकालें कि शहद के छत्ते की जरा सी भी क्षति न करें, उन कोठरियों को जरा भी आँच न आने पाये और शहद का छत्ता पूरा-पूरा साबूत बना रहे। और मक्खी एक भी न मरे।

रावण सीता के अपहरण की योजना बनाता है। मारीच को वह स्वर्ण-मृग बनने के लिये विवश करता है। उस सुनहले मृग को देख कर सीता जी रामको विवश करती हैं और उन्हें उस मृग का आखेट करने के लिये बाहर भेज देती हैं। अपनी विवशता से बाध्य होकर राम लक्ष्मण को विवश करते हैं कि वह सीता की रक्षा का भार अपने ऊपर लें। मारीच आज मरने के लिये विवश हो उठा है। क्योंकि रावण आज अपनी स्वप्निल वासना से विवश हो उठा है। और उसकी विवशता को सफलता देने के लिये मरने से पहले 'हा लक्ष्मण, हा सीते' चीख कर मारीच लक्ष्मण को विवश करता है कि वह सीता की सुरक्षा से हट जाये। सीता मारीच

की मृत्यु की विवशता को राम की मृत्यु की (इसी लिये सिद्ध हुआ कि राम एक साधारण मनुज बनकर पैदा हुये थे।) विवशता समझ बैठती हैं और लक्ष्मण को विवश करती है कि वह राम की सहायता के लिये जायें। लक्ष्मण अपने युग का एक विचित्र पात्र है! वह इस तरह हठात् विवश होकर सीता को विवश करता है कि कहीं वह भी अधीर होकर बनों में न भाग आये, उसे अपनी लक्ष्मण-रेखा में बंदी रहने के लिये विवश करता है। उसके जाते ही रावण अपने असली रूपको छिपाने के लिये अपने को विवश करता है और अपना रूप भिखारी का बना लेता है और उस हालत में वह सीताको विवश करता है कि लक्ष्मण-रेखा के बाहर आ कर उसे भिक्षा दे और बस तत्काल ही सीता महारानी को अपनी महारानी बनाने के लिये वह उसका अपहरण कर ले जाता है। या, वह सीता को विवश करता है कि वह उसके पुष्पक-विमान में बैठ कर लंका की ओर महायात्रा करे और वह विवशता भी बलात् शारीरिक शक्ति के जरिये आयोजित की गई। इस तरह शुरू से ही शारीरिक शक्ति मानसिक कुबुद्धि के आदेश पर पराभूत कर दी गई।

आपने देखा कि रामायण का यह एकांकी नाटक विवशता का निगूढ़ महाबोधि वृक्ष है!

अब इस कहानी का सटीक भाषा-अर्थ समझ लीजिये :—

रावण राक्षस नहीं था। वह महापंडित ज्ञानी था। दसों वेदों का पाठी और ज्ञाता था और उस ने अमृत की सिद्धि की हुई थी। समस्त भारत की पूंजी भी उसके सामने तुच्छ थी। वह समस्त एशिया महाखंड का लक्षाधिपति करोड़पति था। और इसके लिये, पूंजी-गत न्याय (जिसका आज भी खुला बोलबाला है।) कहता था कि वह अगर सीता को अपहरण कर ले आता है तो अधर्म नहीं है। हमारा इंडियन पैनल कोड भी कुछ इसी तरह की पूंजी-गत न्याय की परिधिके अंदर चोरी औरलों

के संकुचित अविकसित पैरों की तरह रह गया है। या इसे ऐसी लक्ष्मण-रेखा के अन्दर अवस्थित कर दिया गया है।

ऐसा सर्वगुण सम्पन्न रावण अपने युग का सबसे श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक भी था। और उसका मनोवैज्ञानिक संबल ही था कि वह सीता का अपहरण कर सकने में समर्थ हो सका। रामायण कहती है कि सीता अंत तक रावण के पाप से वंचित रही। ऐसा लगता है कि जैसे कोई निर्बुद्धि मूर्ख अपनी सफाई पेश कर रहा है। रावण को सीता के साथ सहवास करने के लोभ का संवरण करना ही कहाँ पड़ा। उसने जब सीता को लक्ष्मण-रेखा से बाहर आते ही अपनी बाहुओं में बद्ध कर अपने पुष्पक-विमान में अपनी गोदी में बैठा कर लंका तक की यात्रा की है, वही उसके लिये अत्यधिक थी। रावण एक मनः सौंदर्य का कलाकार था। भोग तो उसने जीवन में काफी कर लिया था। और इतनी उच्च कलाओं के विज्ञ होने के पश्चात् वह कभी भी सीता के साथ अपनी पशु-वासना करने की ग्लानि मन में ला ही नहीं सकता था।

इस स्थल पर आप तुलसीदास जी और बाल्मीकि जी क्या कहते हैं, यह भूल जायें। यह लक्ष्मण-रेखा पूरी रामायण का केन्द्र-स्थल है। और राम की कुटिया केन्द्रबिंदु, जहाँ पर उस युग का मर्यादा-पुरुष समाज से बहिष्कृत होकर पड़ाव डाले हुये था। इसी बिंदु पर उस युग की प्रतीकिनी नारी अपने पति के संग जीवन-यापन कर रही है। और इसी स्थल पर मानवी गुणों का एक अद्भुत अवतारी इंसान (मैं अवतार का अर्थ फटे चिथड़ों से बने हुए ताजा कागज को मानता हूँ, या फिर वे गंदे सड़े हुये समुद्री पानी से ऊपर उठे हुए पानी भरे बादलों के अतिरिक्त कुछ नहीं होते।) लक्ष्मण रहता है। वह अपनी बड़ी भाभी को माता मानता है और अपने बड़े भाई को अपना परम देवता। लेकिन इस रूप में तो लक्ष्मण कुछ भी सर्वोपरि नहीं है। दस्युओं तक में हर छोटे भाई की मनः स्थिति यही रही होगी। लक्ष्मण अपूर्व पुरुष वहाँ पर है, जहाँ वह सीता के

यह आपत्ति करने पर कि कहीं वह राम की वास्तविक मृत्यु के बाद उसके साथ विवाह करने का हठ न पकड़ बैठे, अपनी लक्ष्मण-रेखा खींच देता है कि इस तरह जो भी इसके अंदर घुसेगा, वह भस्मीसात् हो जायेगा। आप को तुलसीदास जी ने यह कहाँ बताया कि वास्तव में लक्ष्मण-रेखा लक्ष्मणने सीता की इसी आपत्ति को संतुष्ट करने के लिये खींची थी कि स्वयं भी यदि इस रेखा के अन्दर आयेगा तो वह भी भस्मीसात् हो जायेगा ?

आप लक्ष्मण-रेखा का अर्थ क्या देंगे ? कि जैसे लक्ष्मण जी मंत्रों से पूजित एक कल्पित ताला-चाभी मार कर बंद कर गये थे। जी नहीं, ऐसा सोचना तो रामायण को तोता-मैना का किस्सा बना देगा। लक्ष्मण-रेखा सीता नाम्नी नारीके चहुँ ओर मंडित की गई थी। किसी भी युग में पुरुष ने पुरुष-वर्ग के इर्दगिर्द लक्ष्मण-रेखायें कभी नहीं खींची हैं। क्योंकि सीता राम की अनुपस्थिति में अयोध्या में स्वतः ही नहीं रही थी, इसलिये यह आवश्यक था कि राम की आशंकामयी अनुपस्थिति में लक्ष्मण-रेखा खींच कर अपनी और सीता की मर्यादा-रक्षा लक्ष्मण न्याय-भाव में कर सकें। राक्षसों से बचने की बात को मैं ज्यादा महत्व इसलिये नहीं दे रहा हूँ क्योंकि वह भी इसी मर्यादा-रक्षा के अन्तर्गत हो आ जाती है। समाज बीहड़ वन की बीहड़ पगडंडियों से नहीं बना है। न जाने किस-किस महा मानव ने समाज की निश्चित उपत्यकायें, निश्चित् परिधियाँ, निश्चित् सुरक्षित मार्ग, निश्चित् दुर्ग और निश्चित् दुर्ग-रेखायें और उस के महाद्वार और परकोटे निर्मित किये होंगे। लक्ष्मण ने अपने युगमें सबसे बड़ा एक ही काम किया है कि वह सीता के चारों तरफ एक लक्ष्मण-रेखा खींचता है। इस तरह भविष्य के मनुजों को सामाजिक लक्ष्मण-रेखाओं का भवितव्य-मंत्र एक महा गुरु की तरह वह दे गया था।

हिन्दू-संस्कृति और लक्ष्मण-रेखा

जब मनुष्य मर जाता है तो उस की त्वचा और उस की पेशियाँ और उस की शिरा धमनियाँ गल सड़ जाती हैं, परन्तु उसकी हड्डियाँ कुछ काल

तक पूर्ववत् बनी रहती हैं। इसी तरह काल के भूत-गह्वर में पारसी मुरदे की तरह इतिहास को जब बैठा दिया जाता है, तो उस की सभ्यता के सब अंग सड़ जाते हैं। और उसकी संस्कृति शेष रह जाती है। आज जब भी हम प्राचीन इतिहास पढ़ते हैं तो वह उस युग की संस्कृति का ही इतिहास रहता है, उस काल की सभ्यता को बस हम कल्पना के डैनों पर बैठ कर ही धुँधले रूप में देख सकते हैं।

इस हिंदू संस्कृति के इतिहास में आप एक महा-द्रष्टा की तरह पन्नों को उलट जाइये। और आज की तिथि तक का सब लेखा-जोखा एक कंजूस और निर्दयी महाजन की तरह देख जाइये। आपको इस कठिन श्रम में एक ही तथ्य पल्ले पड़ेगा। कि हिंदू संस्कृति मंत्रों और श्लोकों से बनी हुई लक्ष्मण-रेखाओं का ही झीना ताना-बाना है। यह दूसरी बात है कि किसी समय ये ताने-बाने स्वर्ण-तारों के और रौप्य-तारों के बने हुए थे। और आज उन पर जमाने की कालिख चिपक गई है।

जितनी भी स्मृतियाँ हैं, जितनी भी संहितायें हैं, जितनी भी व्याकरणें (सिर्फ भाषा व्याकरण ही नहीं, अपितु सामाजिक व्याकरणें भी। यह एक महा खेद और महा शर्म की बात है कि विवाह-मंडप के नीचे ताजा वर-वधू को सिर्फ सामाजिक-व्याकरण की अ आ इ ई ही सिखाई जाती है और उसे पूरी बाराखड़ी तक भी कंठस्थ नहीं कराई जाती।) हैं, जितने भी उपनिषद् हैं, जितनी भी ऋचायें हैं और जितनी भी अन्य सामाजिक पाठ्य-पुस्तकें हैं, वे इन्हीं गुरु-मंत्रों से वेष्ठित लक्ष्मण-रेखाओं के गुप्त रहस्य से ओत-प्रोत हैं और महा भारत-कालीन एक लक्ष्मण-रेखा बनी हुई हैं! महाभारत-कालीन लक्ष्मण-रेखायें तो अकेले दुर्योधन की वे दुष्ट योजनायें थीं, और वे व्यूह-चक्र भी थे, जो नित्य ही कौरवों की ओर से रचे जाते थे। कृष्ण ने कौरवों को समूल नाश करने के लिये जो उच्च स्तरीय और सुदर्शन चक्र के दम पर राजनीतिक कुचक्र (एक हम यह विस्मयाजनक तथा बुद्धि की मर्यादातीत बात है कि सुदर्शन-चक्र वहीं पर चलता था, जब कि कृष्ण

के कुचक्रों के विफल होने की दयनीय संभावना उपस्थित हो जाया करती थी) आयोजित किये थे, वे भी इस काल की वृहत्तर लक्ष्मण-रेखा के अंगांग थे। सीता के चारों ओर खींची गई लक्ष्मण-रेखा ने लंका का रोमांचक राम-रावण युद्ध कराया। धर्मराज युधिष्ठिर की ओर अपने युग के अवतारी पुरुष कृष्ण की लक्ष्मण-रेखाओं ने विश्व का नहीं, तो एशिया महाखंड का प्रथम महायुद्ध आयोजित कर डाला था। तब, यह सहज ही सोचा जा सकता है, कल्पना भी सुगमतया की जा सकती है कि हिंदू संस्कृति के हजारों सालों के इतिहास में समस्त उपनिषदी, ऋचागत् व्याकरण-रूप लक्ष्मण-रेखाओं ने अगर हर युग के सामाजिक महाभारत नहीं रचे हैं, तो कम-से-कम घर-घर के राम-रावण युद्ध अवश्य रचा डाले हैं। इन लक्ष्मण-रेखाओंकी महा ज्वालाओं में हमारी यशस्वी हिंदू संस्कृति कठोर और मर्यादा-पुरुषोत्तमी समाज शासकों और पंचों की निर्मम मुद्रा के सम्मुख अबला सीता की तरह (जिसे न रावण ने अपनी लिप्सित और इप्सित बुद्धि से न्याय दिया, और न मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपनी युगीन बुद्धि से न्याय दिया) धधकती रही है और जल-जल कर अपनी पवित्रता का स्वाँग रचाती हुई अग्नि-परीक्षा देती रही है। किस को देती रही है, यह क्या कहा जा सकता है ? राम ने अपने महामानवी हृदयको सीता की महान इतिहासिक परीक्षा से कहाँ आश्वस्त कर लिया था, क्यों कि सीता की अग्नि-परीक्षार्थ जलाई गई चिता (क्यों, उस अग्नि-समारोह का और क्या नाम होना चाहिए ?) की बची-खुची अग्नि राम के हृदय में उठ कर चली आई थी और हल्के-हल्के सुलगती रही थी और वे शायद यही सोचते रहे थे कि इस साधारण-अग्नि से तो सीता बेदाग रह गई है, फिर भी दिल को तसल्ली नहीं हो पाती कि वह सर्वथा पवित्र ही है ! शायद यही कारण है कि वेश्या अग्नि में भी जल कर और मर कर वेश्या ही रह जाती है !! और यही कारण था कि निर्बुद्धिशील और साधारण सामाजिक चेतना से रहित एक धोबीकी जरासी उत्तेजनासे ही राम सीता

को राजभवन से बाहर निकाल देते हैं। आश्चर्य होता है कि जिस राम को तुलसीदास ने कोटि-कोटि युगों का मर्यादा-पुरुषोत्तम घोषित किया है, उसी राम ने क्षण-भर को भी लक्ष्मण की उस मंत्र-मंडित और मंत्र-पूजित और मंत्र-प्रतिष्ठित लक्ष्मण-रेखा की मर्यादा का जरा भी न तो पालन किया और न उसे जरा भी लोक-भान दिया कि यह सीता किस तरह अपवित्र हो सकती है, जब कि इसके चारों ओर लक्ष्मण-रेखा का कठोर नियमन सर्प-फूत्कार-सा प्रतिक्षण पहरा देता रहा है। और, फिर उस लक्ष्मण की थी यह लक्ष्मण-रेखा, जो अपना समस्त राजसी ऐश्वर्य त्याग कर राम की मात्र अनन्य भक्ति करने के लिये नहीं, अपितु उनकी गोरखपंथियों से भी कठोर सेवा करने के लिये बनवास यात्रा में चला आया था।

आखिर लक्ष्मण-रेखा के अर्थ क्या ?

भारतीय संस्कृति के महादीर्घ जीवन-क्रम में आज तक आप को दो बातें एक महादीर्घ तारतम्य के रूप में मिलेंगी : कट्टर पंथियों और उदार-पंथियों के बीच शाश्वत मूल्यों को लेकर शाश्वत् तनाव। और एकांगी सद्गति व सद्सत् तथा सामाजिक सद्गति व सद्सत्-शील चरम विलास के बीच किस की प्रधान स्वीकृति और किस का त्याग ? इन दो प्रश्नों को लेकर हिंदू संस्कृति किन-किन भयंकर लहरों में डूब-उतर न चुकी है। लेकिन आज तक इनका न तो निर्णय हो सका है और न फलाफल का सामूहिक प्रतिष्ठान।

सब से रुचिकर और सब से आनन्ददायक वस्तुस्थिति यह है कि हम देखते हैं कि उक्त दोनों प्रश्नों के कठमुल्लाओं (!) ने लक्ष्मण-रेखा को अपना-अपना ध्वज जरा से हेर-फेर से बना लिया है और इस रेखा के सब नियम-उपनियमों का पालन प्रथम कोटि की साधना के बल पर करते आ रहे हैं।

आप लक्ष्मण-रेखा का अर्थ विशुद्ध मर्यादा भी कह सकते हैं। आप इसका मायना बृहत् सामाजिक मनु-स्मृति भी करार दे सकते हैं। आप इसके मीनिंग व्यक्ति के निजी निग्रह और अनुग्रह भी बता सकते हैं। लेकिन, मैं तो साफ शब्दों में और बिना लाग लपेट के कहना चाहूँगा कि लक्ष्मण-रेखा आद्योपांत लक्ष्मण के कठोर जीवन की उच्छ्‌वास थी और उसे ही उन्होंने स्वतः सीता के सामने मूर्त कर दिया था। वे राम को अपना ईष्ट देवता मानते थे और सीता को माता के सदृश देखते थे। फिर भी उन पर सीता ने संदेह की अतिशयता में अतिशय हो कर अतिशय पाप की अतिशय भावना का आरोप लगाया था। लक्ष्मण ने उन की उस अतिशयता का उत्तर अपनी अतिशय साधना के बल पर अतिशय मौन बन कर और अतिशय शाँत होकर दिया था। सच है, व्यक्ति को इस पृथ्वी पर किसी भी जाने-अनजाने व्यक्ति से व्यवहार करते हुए अतिशय साधना के बल पर और अतिशय मौन होकर ही व्यवहार करना चाहिये। लक्ष्मण-रेखा बन में बसायें गये, उस युग के मर्यादा-पुरुषोत्तम, राम के संक्षिप्त परिवार के चारों ओर खिंच गई थी। कालांतरमें उसके नियम और उसकी कठोर आज्ञायें सामाजिक परिवारों पर और सामाजिक व्यक्तियों पर आसीन कर दीं गई थीं। यद्यपि उस समय राम का परिवार बनवासी था और वे बन-वासियोंसा ही जीवन व्यतीत कर रहे थे और शायद इसी भावना का प्रतिनिधित्व करने के लिये गुसाईं तुलसी-दासजी ने (आजकल कितने हिंदी के साहित्यिक गुसाईंका पद प्राप्त कर आते हैं लेखक बननेसे पहले या इसके ग्रहण करनेकी चेष्टा करते हैं ?) सीता के बनवासी हृदय में यह आशंका उत्पन्न कर दी थी, हो सकता है कि एक लम्बे जीवन तक बनवास करते हुए कहीं लक्ष्मणके मनमें बनवासी लिप्सा कदंय बन कर उद्दीप्त न होने लगी हो! देश भर के समाजों ने जब लक्ष्मण-रेखा का आवरण अपने ऊपर चढ़ा लिया तो इसीलिये कि कहीं उनके सामाजिक अंगों पर भी बनवासी लक्ष्मण के मन वाली (जिस की

सिर्फ सीता को ही आशंका थी) वनवासी लिप्सामयी कदर्य-भावना न उद्दीप्त होने लगे। सरल शब्दों में, वे संस्कृत समाज पर बर्बरता के आघात से भय खाते थे।

व्यक्ति और समाज का पारस्परिक संबंध शुरू-शुरू में अलिखित था। ग्रेट ब्रिटेन का कॉन्स्टीच्यूशन तो सत्रहवीं सदी तक काफी अंशों में अलिखित रहा है। ईसवी-पूर्व के प्राप्त इतिहास में सर्वप्रथम लक्ष्मण ने इन संबंधों को शब्दहीन रूप में अपनी एक गोलाकार रेखा से रचित कर दिया था और जैसे उसी में सब-कुछ लिख भी दिया था। बाद में हमारे ऋषि-मुनियों ने उस को शब्दबद्ध कर दिया।

लक्ष्मण-रेखा के विकृत अर्थ

जैसे-जैसे समाज का अधिकार पुरुष के हाथों में अतिशय आता गया, उस ने लक्ष्मण-रेखा का अर्थ विकृत करना शुरू कर दिया और वह खुलेआम यह घोषित करने लगा कि लक्ष्मण-रेखा तो सिर्फ स्त्रियों के चारों ओर ही खींची जानी चाहिये। सीता जैसी विदूषी और सर्वश्रेष्ठ प्रतीकमयी नारी के इर्द-गिर्द जब लक्ष्मण-रेखा खींचने की आवश्यकता आ सकती है तो समाज की साधारण और शत-प्रतिशत मूर्खा नारियों के चारों ओर लक्ष्मण-रेखा खींचा जाना तो और भी निहायत जरूरी है। यही तर्क हिंदू समाज का अकाट्य तर्क है!

हम अपने इतिहास के हर पृष्ठ पर देखते हैं कि पुरुष समाज की बृहत्तर लक्ष्मण-रेखाओंको भी शनैः शनैः स्त्रीगत् ही मानने लगते हैं और उन्हीं में वे स्त्रियोंको एक तरहसे बंदी बना कर या तिजोरी में बंद सम्पत्ति की तरह से बंदिनी रखने लगते हैं। इसके विपरीत, लक्ष्मण ने यह रेखा सीता को बृहत्तर आश्वासन और स्थायी सुरक्षा देने के लिये खींची थी।

आज लक्ष्मण-रेखायें उल्लंघनीय और अतिक्रमित क्यों?

प्रश्न अपने आप में अधिक उलझा हुआ नहीं है। लेकिन इस बात का उत्तर तो उसी क्षण की घटना में मिल सकता है कि जब लक्ष्मण ने यह रेखा प्रथम बार खींची थी। हमें याद होना चाहिये कि लक्ष्मण के जाते ही रावण ने अपने वाग्जाल के चातुर्य से उस लक्ष्मण-रेखा का व्यूहचक्र खंडित और भग्न कर दिया था। यही कारण है कि आज भी समाज की समस्त लक्ष्मण-रेखाओं को वाक्पटु और वाग्जाल-दक्ष पुरुष हर क्षण अतिक्रमित करते रहते हैं और उन्हें उसका उल्लंघन करने में तनिक भी भय नहीं लगता है।

हमारा भारतीय दाम्पत्य और लक्ष्मण-रेखायें

विवाह की परिभाषा मनु ने क्या दी है और शास्त्र क्या कहते हैं, यह तो वे पंडित जानें जो कि विवाह का कर्म-कांड करते हैं, सर्टिफिकेट दिया करते हैं। किन्तु जीवन में किन दुर्गम मार्गों से होकर विवाह अपना प्रवास करता हुआ शिथिल गति चलता है, जो यह जानता है, वह विवाह की परिभाषा हृदय की अनुभूतियों की भाषा में देगा। प्राचीन अनुभूतियाँ विवाह को रसमय जीवनकी व्याप्ति में प्रवेश कराती थीं। आजका क्लेशमय जीवन विवाह को दुहरी जिम्मेदारियाँ कन्धे पर लाद कर आज्ञा देता है कि "बढ़ो, रुको मत, बच्चे भी पैदा करो, अपढ़ पत्नी है तो रहे, कमाओ और पत्नी के सुख की कीमत पर बच्चों का लष्ठम-पष्ठम भविष्य उनकी आँखों के सामने खड़ा कर अपने बुढ़ापे की फिकर करो। पत्नी तो जबरदस्ती जीवित रहती जायेगी। वह तो आँगन की घास की तरह है जो सूख कर भी, जरा सा पानी मिलने पर फिर बेहयाई से उग आती है।" इस तरह विवाह की परिभाषा आज यही हो गई है: "आत्मा-रहित मानवी नर और मादा का आकस्मिक संयोग, जो सामाजिक अपराध बनकर

उन्हें पति और पत्नी नहीं बनने देता, बनने देता है बासी जीवन का बासी भोजन।"

मैं आप से निवेदन करूँगा कि इस परिभाषा को पढ़ कर अपवाद पेश करने की शीघ्रता न करेंगे। यह परिभाषा आज के ९९ प्रतिशत विवाहों पर लागू होती है अक्षरशः !

बासी जीवन का बासी भोजन। माता-पिताओं और रूढ़ संस्कारों से पोषित अभिभावकों की लक्ष्मण-रेखाओं से निकलकर, कहें अपहरित किये जाकर (और इन क्षणों में माता-पिता हजार रावणों के एक रावण बन जाते हैं।) युवक और युवतियाँ जब पति और पत्नी बनते है तो वे अपनी नई लक्ष्मण-रेखाओं में प्रविष्ट होकर नहीं जान पाते कि पति पत्नी की लक्ष्मण-रेखा का अतिक्रमण कौनसे मंत्र से करते रहें। वह पत्नी तो इसी में त्रस्त रहती है कि उसके पति की लक्ष्मण-रेखा में वह अधिक आनन्द से रह सकेगी, या वह अपनी ही लक्ष्मणरेखा में कृत्रिम संतोष की साँस लेती रहे? यह सत्य है कि आज का विवाह एक पति और पत्नी को संयुक्त लक्ष्मण-रेखा में आश्वस्त नहीं करता। आज की सब से बड़ी दुर्घटना यही है कि वह उन्हें दो पहलवानों की गुत्थम-गुत्थी सी उलझी हुई दो लक्ष्मण-रेखाओं में धकेल कर विभाजित विश्वासों के खंडहरों में जीवित रहने के लिए बाध्य करता है। पति का युवक-धर्म उसकी मुख्य लक्ष्मण-रेखा है। पत्नी की पति-भक्ति नारीगत लक्ष्मण-रेखा है। और ये रेखायें अपनी-अपनी परीधियोंको एक दूसरे पर काट करती हुई अपना वृत्त पूरा करती रहती हैं।

और इस तरह हमारा भारतीय दाम्पत्य सुख से बहुत दूर है, भग्न खंडहर-नुमा जीवन की गहरली सुनसानी साँय साँय के निकट ही अधिक है। जो दाम्पत्य जीवन की विभीषिकाओं से और विडंबनाओं से लोहा लेने में विश्वास करते हैं वे अपना 'न्यारा बंगला' बनाने में जब सफलता पा लेते हैं, तो उन पर रश्क होने लगता है। वे ही मानवी दाम्पत्य का ध्वज

ऊँचा उठाये रखने में समर्थ हो पाते है, इसीलिये उनको जितना भी अधिक अभिवादन मिले, कम है ।

देश के इस कोने से लेकर उस कोने तक, इस दिशा से लेकर उस दिशा तक, इस व्यवस्था से लेकर उस व्यवस्था तक, इस वर्ग से लेकर उस वर्ग तक, इस राजनीति से लेकर उस राजनीति तक, इस धर्म से लेकर उस धर्म तक, इस समाज से लेकर उस समाज तक सभी में उदासीन गिरिस्तीपना भरपूर है, पति-पत्नीका विलास अत्यधिक कम है । इसका एकमात्र कारण यही है कि जो लक्ष्मण-रेखायें इन परिवारों और दाम्पत्यों के निमित्त निर्मित की जा रही हैं या की जा चुकी है, उनकी आधार-भूमिका में निहित विश्वास खटमलों की तरह से सबको काटते है, रक्त चूसते हैं, और सुख की नींद भी नहीं सोने देते !

दाम्पत्य के विश्वास : ध्वस्त और पुराने

अँखिया निहार के, पगधूरि झार के ।

पत्नी के प्रति पति का प्रति-निवेदन और पति के प्रति पत्नी का दीर्घ आत्मदान । इस प्रति-निवेदन और इस आत्मदान की वसंत-ऋतु हमारे देश में नियमित समय पर पुष्पवती और फलवती क्यों नहीं हो रही है ? प्रति वर्ष सारे देशमें यही एक सहस्त्र पाणिग्रहण पूरी धूमधाम और गाजे-बाजे और शहनाई की मादक रागिनी की ज्योतित चहल-पहल में सम्पन्न होते रहते हैं, लेकिन दम्पतियों का उद्यान तो जैसे पतझड़के सनातन अभि-शापसे सूखा ठूँठ बना हुआ है—यह कल्मष क्या अपना गाढ़ा कीचड़ नये युग की गृहस्थियोंको भी अपने इन्द्रजाल में समेट कर पंगु बनाने का उपक्रम उपस्थित न कर देगा ?

पत्नी पति के लिये जीवन का पहला विश्वास है । पति पत्नी के लिये जीवन का सर्वोच्च विश्वास है । यदि दम्पतियों का उद्यान अपनी भूमि को ही बंजर बनाता जा रहा है और उस का अस्तित्व विवश होकर किसी

रेगिस्तान की अंतिम याचना करने लगा है, तो इसका स्पष्ट अर्थ यह नहीं है कि पति और पत्नी के पारस्परिक विश्वासों का बादल भी सूखा रह गया है और किसी स्नेह और आद्रता की टोह में विरही युग-पुरुष की तरह भटक रहा है, मचल रहा है, तरस रहा है, बिलख रहा है, कलप रहा है, सिसक रहा है, दुखी भाव से क्षयी बन रहा है.............

मेरे जैसे साहित्य-सारथी के लिये यह विश्वास करना कठिन है कि सुबह-शाम नियमित समय घर के आँगनों से चूल्हों का धुँवा उठने-फैलने की तरह जो विश्वास दूर-पास के पड़ोस में खुलेआम सुलगते-जलते रहते हैं उनकी आँच और उनकी तपिश पर किन्हीं नये विश्वासों को पकाया जा रहा है, उनका 'स्टील' तैयार किया जा रहा है। आज हमारा यह दुर्भाग्य है कि सामूहिक विश्वासों का 'आवा' तैयार नहीं किया जाता। स्टील जैसी सख्त किस्म की धातुवत् आत्मा का संस्कार पाये बिना सभी विश्वास बच्चों के रंगीन गुब्बारों-से हवा में ही उड़ते रहते हैं और उनमें या तो सुबह से शाम तक स्वतः ही हवा निकल जाती है और वह, मुसीतुसी मटमैले रंग की रबर की अशक्त नाली के मानिन्द, बच्चों तक के लिये उस दयनीय हालत में अनाकर्षक वस्तु बन जाते हैं। अन्यथा यह होता है कि किसी बच्चे की अँगुलियों का असावधानी से जरा सा स्पर्श लगते ही फटाक से फूट कर फट जाते हैं। उन रंगीन गुब्बारों का हतभाग्य तो देखिये, वे इस तरह फटते हैं कि उन फूटे हुए गुब्बारों की किसी भी हालत में मरम्मत संभव नहीं है!

इसी तरह अधपके विश्वासों का भाग्य सतर्क प्रहरियों के खेत में टिड्डी दल की तरह से सामूहिक मौत मरता है।

इसी तरह कमजोर विश्वासों की नींव पर भारीभरकम छत का बोझ जब नीचे धँसने लगता है तो कोई उपाय है ?

इस तरह जलभुन कर राख हो चुके हैं जो विश्वास, उनकी राख में, किसी चमत्कारी साधु के हाथों दी जानेवाली राख की चुटकी की मानिन्द,

नई पीढ़ी को भविष्य का बल देने की, धुंध धुँआ से पूरित भविष्य के प्रति विश्वास जगाने की भारी क्षमता कहाँ है ?

पुराने विश्वास और चूल्हे की धूँवा

जब विज्ञान के इस मांगलिक युग में चूल्हे का स्थान हीटर ने ले लिया है और नये युग की सद्गृहिणी को शालीन सम्मानीय सुख देना शुरू कर दिया है, वहाँ ९९ प्रतिशत घरों में चूल्हे का वह दमघोंटू, छत-कजराऊ, आदिम जमाने की कालिमा का बर्बर-रूप धुँवा जर्जर प्राणहीन विश्वासों के साथ नई रौशनी की दृढ़ भावनाओं को भी क्यों काला--चिक्कट बनाने की जिद्द थामे बैठा है ? इस चूल्हे के धुँये में इस नये युग की कामिनी षोड़शी वधु भी जब प्रवेश करती है तो शीघ्र ही उसकी नेत्र-ज्योति भ्रमित हो जाती है। इतनी, कि उसका नये युगों का आभास तक स्पंदन-रहित और ठस्स हो जाता है। वह स्वयं पहचान से परे हो जाती है।

आप किसी भी शहर में रहते हों, सायंकालीन घड़ियों के बीतने के समय अपने मुहल्ले में, पड़ोस के मुहल्ले में, दूरके मुहल्लेमें जरूर गये होंगे। वहाँ चारों ओर के घरों से उठनेवाला कड़वा नेत्रदाहक धुँवा आपको अंगूठा दिखाता हुआ तो मिला होगा ही ? उस परिव्याप्त धुँये में आपकी आँखें दुख आई होंगी ? गला रुँध गया होगा ? और वहाँ से जल्दी भागने के लिये आप व्याकुल हो उठे होंगे ? लेकिन, अगर आपके मुहल्ले में ही यह क्लेशदायिनी विकृति बनी रहती है तो भागने का सवाल कहाँ है। वहाँ तो आपको रहना ही है। क्या कभी इस वातावरण को आमूल-चूल बदलने का सरदर्द आपको हुआ है ? आपके मुहल्ले में इस संबंध में सामूहिक स्वर उठा है ?

मुझे लगा, और जो कई वर्षों से देखता चला आ रहा था, उसी की स्पष्ट प्रतीत हुई कि जिस गिरिस्तीके चूल्हे से जितना ही अधिक धुँआ निकलता है, वहाँ उतने ही जीर्ण विश्वासों का अभिशाप अपनी कटुता की

धौंकनी से उस धुँवा को दमघोंटू बनाता रहता है। आज, कलकत्ता में पाँच वर्ष पूरे होने जा रहे हैं और मैं निरा साहित्य-सारथी (साहित्य का चाबुकमार ताँगेवाला) ही बना रहा हूँ। वे मुहल्ले (या स्ट्रीट) जो कलकत्ता महानगरी की महानता से और उसकी आधुनिकता के पुण्य से प्राणवान नहीं बन सके हैं, उनमें जब शाम को घूमता हूँ तो मेरे मानसिक काँटे की टीस तीव्र होने लगती है। मुसलमानी मुहल्लों में और खपरैलों व कच्चे छप्परों वाले अछूतों के घरों से यह धुँवा कितनी अतिशय मात्रा में निकलता होता है, उसका वजन किस प्रकार से समझाऊँ? कहने दीजिए, वहाँ उतना धुँवा होता है जितना कि श्मशान की दस नई चिताओं की फूत्कार के समय निकलता है। आशय यही है मेरी इस स्फूर्त अभिव्यक्ति का, कि अभावों की चिता में झुलसते हुए इन मुहल्लों और झोंपड़ियों के व्यक्ति अपने हीन भद्दे-मैले मैलखोर विश्वासों को लेकर प्राणों की घुटन और इस घुटन से स्रवित निकृष्टता को निकृष्टतम जुम्बिश चहुँ ओर क्यों न फैलायेंगे? मेरे लिए हर परिवार का एक चूल्हा उसके हार्दिक विश्वासों की संकीर्णता का तापमान प्रकट कर देता है। उस चूल्हे से जितना धुँवा निकलता है, उसे देख कर मैं उस दीवार के अंदर बंदी परिवार के ह्रास और रुदन का थरमामीटर पढ़ लिया करता हूँ।

नये विश्वास और गत्यवरोध

हठात् एक कवि-सम्मेलनमें एक कालेज-छात्रा मुझसे प्रश्न कर बैठी, "नया युग क्या है?"

प्रश्न छोटा सा था। उचित लगा कि उत्तर भी छोटा सा दिया जाये। ऐसा कि इस १७ वर्षीया जिज्ञासु छात्रा को बुद्धि का नया प्रकाश मिले। उससे हल्के मन कहा, "नया युग? तुम स्वयं नया युग हो। जो भी अविवाहित है, नया युग है!"

सकुचा कर भी वह सलज्जा गर्व से भर गई थी।

नये युग की बात साहित्य में तो चलती ही है, राजनीति में सबसे ज्यादा चलती है। धर्म के क्षेत्र में ही इसका प्रचलन अत्यधिक नियंत्रणों को लेकर है। अधिकांश यही समझते हैं कि जो हवा हम श्वास-प्रश्वासके रूप में व्यवहृत करते हैं, वह स्वयं ही जमाने की हवा है और एक नई ताजगी लेकर आ गई है। क्योंकि प्रकृति में एक परिवर्त्तन आ गया है। कुछ यह समझते हैं कि नये विचारों का और नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों का युग होने से यह नया ज़माना है। जहाँ सत्य खंड-सत्य से भी परे, हिले हुए कैमरे से उतारी गई फोटो के मानिन्द 'ब्लर्ड' हुआ-हुआ हो, वहाँ उस नये युग के विश्वास तो और भी उलझे हुए रहेंगे ही।

नया युग नये व्यक्ति के साथ है कम, उसके नये विश्वासों के साथ अधिक है। नया युग पारिवारिक क्षेत्र में सर्वाधिक सत्य है। समाज के जर्जर विश्वासों से नई उमर में जब अरुचि, ग्लानि उत्पन्न हो और उनको स्थानान्तरित करने की व्यापक लहर प्रवेग से उठने लगे, वही नये युग की हवा है। विवाह करने के बाद तो हम बीत रहे युग के साथी हो जाते हैं। नया युग का संदेश तो हमारी नई संतति लेकर आई है। हमारा नए युग का विश्वास इस रूप में कार्यान्वित हो कि हम अपनी नई संततिके नव-स्वप्नों को साकार बनाने में अपना वरदहस्त बिना शर्तों के दे दें।

वन-महोत्सव हमारे देश की अतिशय राजनीति की अतिशयता थी। परिवारों में जहाँ ऊजाड़ वाटिकाएँ अधिक हैं, सूखे ठूँठ खूब हैं, जहाँ की ज़मीन इतनी सख्त है कि कुदाली भी चलाना असंभव हो जाये, उन परिवारों में नया युग लाना हो तो वहाँ वसंतोत्सव, वन-महोत्सव का संदेश क्यों न पहुँचाया गया? उसकी तैयारी क्यों न की गई? नई संतति अपने अनियमित तरीके से नया समाज स्थापित कर रही है। उसमें हर्ष अधिक है। पर उसमें नए विचारों का गत्यवरोध भी उतना ही अधिक है। जिस तरह हर नगर में जो नया निर्माण हो रहा है और पुरानी दिल्ली व

नई दिल्ली की तरह दो नई-पुरानी अवस्थायें अलग-अलग अंगूठा दिखलाती हुई खड़ी होने लगी हैं, उससे हर परिवार में और हर घरमें ही नहीं, अनुपात में अधिकांशतः हर पति-पत्नीके बीच भी यही गत्यवरोध एक बड़ा प्रश्न बनकर रुका हुआ है !

यह गत्यवरोध विश्वासों का है, इन विश्वासों के प्रति दिलजमई का है, इनकी पक्की नींव का है। फिर भी जहाँ नया युग एक नए विश्वास की दुंदुभी बजाने लगा है, वहाँ का वातावरण अभिनंदनीय है, अनुकरणीय है, प्रातः स्मरणीय है।

अन्तिम बात : दुःशासन का चीरहरण

द्रौपदी का चीर हरण करने वाला दुःशासन अपने युग का दानव-आलोचक था। उसकी बुद्धि दानवी थी। पाँच पाँडवों द्वारा शोषिता इकली पत्नी की रक्तहीन देह को नग्न दिखाने के सिवाय उसे कौन सा अन्य उपाय अधिक प्रामाणिक हो सकता था ? उसने चीर हरण कर समाज को चुनौती दी थी कि पाण्डवों का पहला सामाजिक अपराध यह है कि वे नियमित समय पर द्रौपदी को दुहने जो बैठते हैं, सो कितना अमानवीय है। क्या एक नारी ऐसी ही पशु है ? किंतु आज इस १९५४ के अंतिम दिनों में किसी का चीरहरण न तो प्रेषणीय है, न उपादेय ही है। कृष्ण ने द्रौपदी के चीर को मीलों लंबा कर समूचे समाज की कदर्यता को अपना वरद्‌हस्त सौंप दिया था। पर मैं क्या कृष्ण हूँ ? मैं कृष्ण इसलिये नहीं हूँ कि मैं केवल समाज के पाँच विशिष्ट भाग्य-निर्णायकों का सारथी नहीं हूँ ! मैं तो साहित्य के रथ में बैठने वाली मेरे देश की कोटि जनता का सार्थवाह हूँ ! मैं चीरहरण से अधिक जर्जरता के ध्वंस में विश्वास करता हूँ ! परदा एक घिसा हुआ शब्द है। चिलमनों के उठाने में मैं रुचि रखता हूँ : ऐसे गोपन-स्थलों की, जो आत्महत्या की भावना में जिद्द किये बैठे हैं।

बुद्धि की अतीन्द्रीयता से जो पीड़ित है उन्होंने अपनी बात बड़ी कुशलता से कूटनीति की आड़ में कही है : "सभी पुराना अच्छा नहीं है, सभी नया भी अच्छा नही है।" किंतु जहाँ नया विवाह-मंडप रचाया गया है, जहां नई सुहाग-शैया सजाई गई है, जहाँ नई मांग में सिंदूर रचा जा रहा है, जहाँ नई वधु की गांधर्व-गंध दूर-पड़ोस तक में व्याप्त हो गई है, जहाँ नव-पति का मानस एक नई ताजगी हरिया उठा है, जहां नए प्रसव की थाली ठनकाई जा रही है, जहां नया पालना दो सुकुमार हाथों के मृदु स्पर्श से हिलोरे ले रहा है और जहाँ नया दाम्पत्य एक गहरी स्फूर्णा से खिल खिला रहा है— वहाँ मैं अपनी वंदना पहुँचाता हूँ। हमारे दम्पति चिरजीवी हों। नवपति के प्रति नववधू की निष्ठा चिरजीवी हो। नव वधू के प्रति नवपति की हार्दिकता चिरजीवी हो और उनके नव दाम्पत्य की नव कोंपलें चिरजीवी हों।

मेरी यह शुभकामना भी चिरजीवी हो !!

दीपमालोत्सव १९५४
कमरा नं० १२१, माधो भवन
११६:१:१, हरिसन रोड,
कलकत्ता-७.

—बरुआ

——:०:——

अभिवादन

श्रीमती ललिता भाभी
श्रीमती सावित्री भाभी
श्रीमती मीनो भाभी
श्रीमती विमला भाभी
श्रीमती शारदा भाभी
श्रीमती चित्रे भाभी
श्रीमती दीपक भाभी
श्रीमती मालवीय भाभी
श्रीमती माया भाभी
श्रीमती सरला भाभी
श्रीमती पोद्दार भाभी
श्रीमती दिनेश भाभी
श्रीमती प्रेम भाभी
श्रीमती श्रीराम भाभी
श्रीमती जैना भाभी
श्रीमती सरकार भाभी
और अन्य वे ३४ भाभियाँ

जिनके नाम यहाँ देने का संकोच इसलिए है, क्योंकि मन ने कभी नाम जानने का आग्रह किया ही नहीं था तूफानी वेग से चलनेवाले दीर्घ प्रवास-काल में !

इन भाभियों ने मेरी आर्थिकहीनता को, दरिद्रता को, अभावग्रस्त फटेहाल दीवानगी को, शुष्कता-रूक्षता और चिड़चिड़ाहट को, मेरी अना-कर्षक निरंकुशता और मजनूई स्वप्नावस्था को सदा गौण माना और मेरी

साहित्यिक साधना को प्रधानता व मान्यता देते हुए रसगुल्ले, गुलाबजामुन, हलुवा, खीर, पूरी, मिठाई, गरम नमकीन, समोसे, चाय और काफी और गरमागरम घी से तर फुलके जैसे श्रेष्ठ व्यंजन और खाद्य से मुझ अभागे का आतिथ्य किया और मन की सरसता को खर्व होने से बचाया।

बम शंकर ने अपने कंठ में विष धारण कर लिया था तो कौनसा आश्चर्य कर दिया था। उससे तो वे नीलकंठ बन गए थे। मेरी चिंतनीय स्थिति तो देखिये, एक या दस बूंदें जो इन भाभियों से स्नेह की मिली हैं, वे मेरे जैसे कृपण ने कहाँ पीं ? गले में ही उन्हें अक्षुण्ण अवस्था में रख लिया। शीघ्र ही वे गले में वीणावादिनी की अमर रागिनी अंकुल कर मुझे दाम्पत्य का महामंत्र दे गईं। वह महामंत्र भी मेरे जैसे भाव-विह्वल व्यक्ति के लिए ऐसा है कि पूरी तरह से उसका रहस्योद्घाटन करने की क्षमता मैं नहीं संजो पाया हूँ।

इस कृति के प्रकाशन की शुभ घड़ियों में इन आदरणीया भाभियों को मेरा अभिवादन !

अश्रुओं की गंगा का अवतरण

इस समय उसी के घर का धुँवा उसी के कमरे में भरता हुआ उसे अंगूठा दिखा कर चिढ़ा रहा है। बाहर बहुयें हँस रही हैं सस्वर; अन्दर दुलारी अब सुबकियों में चुप है! (पृष्ठ ४८)

दुनिया रसातल में धँसती जा रही है। पतन किस शीघ्र गति से हो रहा है, देख कर भय लगता है। सर्वनाश की हद है यह, फिर भी न जाने अभी क्या-क्या देखना बाकी है ? ससुरी इतनी धुँआ का गुब्बार भरने से ही हमारे कमरे में, भला चैन क्यों लेते हो ? आग लगा दो न इस कमरे की चारों दीवारों को, चलो छुट्टी हुई। जो भस्म होना हो, वह परसों तक क्यों हो, आज ही न हो जाये ? सुबह तो सुबह जी की साँसत। शाम तो शाम, यही गरम-गरम धुँवा के पैने तकुवे आँखों में और गलों में घुसते हैं और ऐसा रुला कर छोड़ते हैं कि कहाँ जाकर मर जायें या कौन से पाताल में जा घुसें, अक्ल कुंठित हुई जा रही है।

यूँ रोना तो बहुत सी बातों का हो गया है, जब से हलदातबान कर मैं कलमुँही पत्नी बन गई हूँ। पर पास-पड़ोस की इन अंगीठियों ने और चूल्हों ने नाकमें दम ठूँस रखा है। पाँच सौ बार कह दिया, भाई-चारे से समझा दिया कि अरी नवाबजादिनों, धूँआ ही करना है तो खूब करो। पर अपने कमरों में करो न। अपना मुँह काला करो अपने चूल्हे के धुँवे से। क्यों उसे हमारे कमरे की तरफ आने देती हो ? ऐसी भी क्या हैवानियत !

न पास-पड़ोस का धर्म, न दिली मुरौवत। हम हमजोई बढ़ाते-बढ़ाते तंग आ गई हैं, पर हमारे मुँह में और हमारी आँखों में कड़वा-कड़वा घुंवा भरते इनका जी ही जैसे अभी नहीं भरा है। एक दिन ये हमारे रोम-रोम में (लाश में भूसा भरने के मानिन्द) जब तक भरपूर धुंआ न भर लेंगे, तब तक इनका राम खुश थोड़े ही होगा। अब तक की इतनी उमर बिता दी, कभी आँखों में आँसू आये हों तो कोई याद दिलाये ? अजी, कभी निकाले ही नहीं। क्यों निकालें आँसू, निकालें हमारे दुश्मन।

पर पूर्व जनम के दुश्मन तो ये मिले हैं पहली बार इस जिन्दगी के, कि रोज रुलाते हैं। और अब तो खुद भी जी चाहता है कि फूट कर रो लिया जाये इकट्ठा ही। पहली बार पति के घर आई हूँ तो जब तक अपनी छाती को दहलाकर न रो लूँगी, दिल को ठंडक कैसे पहुँचेगी ?

कलकत्ता में आये नौटियाल की बीबी को आज तक यही सात महीने पूरे होने आये हैं। अपनी रसोईका काम वह बिजलीके हीटर से चलाती है। उसी पर चाय बनाती है, उसी पर खाना पका लेती है। न फेफड़ों को धौंकनी बनाकर चूल्हे में फूंकने की जरूरत, न कमरे और बरामदे में कुम्हार के भट्ठे के जलाने का नाटक। तुरत-फुरत पकाया, सेका और चल छुट्टी हुई। घर का घर चाँदी की चमक सा चमके, हथेलियों में राख की कालोंस अलभ्य मेंहदी की तरह लगने के लिये ललचाती रहे। ऐसी बात भी नहीं कि एक हीटर सौ-दो सौ का आता हो। यही छः रुपयों का। हद दस रुपयों का। और फिर दस रुपयों में जिंदगी भर के लिये निश्चित। यूँ दस रुपयों का जूता साल भर से ज्यादा नहीं चलता।

पर नहीं, हीटर नहीं खरीदा जाता किसी से। खरीदते सबकी जान निकलती है। यूँ सबके कमरों में बिजली है। कमबख्तों को बिजली का वरदान भोगे नहीं बनता। भोग तो वह करे जिसे भोग का रसास्वादन करना आता हो। जलायेंगे अंगीठियाँ और चूल्हे, और सो भी पक्के कोयले से और उसमें पहले नारियल की मूँज या चीड़ की लकड़ी की खपच्चियाँ ठूँस कर या कंडों का छोटा-मोटा आवा दहका कर। अपने कमरे और बरामदे तो सबने काले-स्याह कर रखे हैं ही, मानो काजल बनाने के कारखाने हों। तुले बैठे हैं कि हमारा यह नया कली-कराया धूला-पुता कमरा भी भटियारखाना बना दें। हलवाईखाना बना दें। मेरा यह बारांडा तो फिर से जर्द रंगका हो ही चला है। साथ ही घर की सब निकल-प्लेटेड चीजोंपर और कालोस बैठती जा रही है। वह

चाँदी का सेट तो अभी हमारी भाभी जी ने खरीद कर दिलवाया था। मुश्किल से यही दो बार उसमें चाय पी है। लेकिन लग रहा है कि जैसे सैकंडहैंड खरीदा हो !

क्या इस पड़ोस से इन्हीं बातों से तंग आकर कहीं और चल कर बसा जाये ? भूल से एक दिन इसी कमरे में नई साढ़े चार सौ की सिंगर मशीन खुली छोड़ दी थी। भैया ने मेरे ना-ना करते भी खरिदवा दी थी। बस, दूसरे दिन जो रेशमी रूमाल से उस पर एक हाथ फेरा तो हाय, वह, वह रेशमी रूमाल चमचमाती सिंगर मशीनसे रगड़ पाकर कालोंस खा गया। पौने तीन रुपयों के उस रूमाल का मठ मर गया और नौटियाल की बीबी को इस घटना से जो ठेस लगी......उसकी साँस ही क्षण-भर के लिए रुक गई। नजर पथरा गई। मूर्त्तिवत् किंकर्त्तव्यमूढ़ अवस्था में बैठी हुई जब उसने अपनी नग्न बहियों पर नजर डाली तो उसका जी धक्क से रह गया। इस ब्लाउजकी बाहें इन बहियोंपर किस तरह कसी हुई चढ़ती थीं। ओह, यह कितना ढीला हो गया है। तो मैं इतनी दुबली हो गई हूं ? और यह पड़ोसके चूल्हों का काला धुंआ मेरे शरीरपर भी चिपकटाने लगा है ? उसकी एक सखी ने अभी इलाहाबाद में त्रिवेणी-स्नान के समय कहा था, यही यहाँ आने से पाँच रोज पहले—"री निगोड़ी, तेरा रंग ऐसा सूखी केशरिया बरफी सा है कि पाँच सौ गोरी लड़कियों में भी तू अलग पहचान ली जाय।" हाय, हाय, अच्छा कलकत्ता आना हुआ। पति-गृह में प्रथम प्रवेश का यही परिणाम निकला है कि मेरा रंग भी धुँआ में मिल रहा है।

झपट कर उसने अपना चेहरा शीशे में देखा, अगल से देखा, बगल से देखा, सामने से देखा, अपने चाँदसे मुखड़े की मोहिनी चिबुक को उठा कर देखा, पलकों को एकदम वक्ष में सटा कर देखा। उसे वहम हो ही तो आया। शीशा तो रोज देखती है दिन में बीस बार। पर आज

उसने गौर से देखा है अपने को। ओह! उसका चेहरा भी काला पड़ना शुरू हो गया है। इस बार वह सचमुच रो पड़ी।

नौटियाल यहाँ कलकत्ता में पिछले दो साल से रहता है। पर उसकी यह काश्मीरी रंग की बीबी अभी जैसे कल आई थी। नाम है शशिछाई दुलारी। इसके साथ जब नौटियाल उलझ जाता है और यह विवाद का उत्तर न देकर, तुनकने लगती है तो अपने गदराये बदन को बल खिला कर ठमक पड़ती है और इसके कपोलों में एक गहरी गुदगुदी का गड्ढा पड़ जाता है। और उस क्षण यह अत्यन्त सौंदर्यवती हो जाती है। नौटियाल उस समय स्वयं भी तुनकना पसंद करता है और मुँह फुला कर कहता है, "भई, देखो, झगड़ा पत्नी से नहीं हुआ करता। झगड़ा साली-सलज्ज से ही मीठा होता है!" और लीजिये, अपनी बहनों-भाभियों का जिक्र आते ही शशिछाई दुलारी का रोष उसके अधरों की मरोड़ में बल खाकर जो प्लेटिनम तार की तरह (दीवाली के दिन) जला तो उसमें गहरी ज्योति प्रस्फुटित हुई....और शशिछाई सहसा ही फूटकर हँस पड़ती है। कहने लगती है, "बहनों और भाभियों का भाग्य था जो मौज करती हैं। तुम्हारे संग तो मेरा भी भाग्य........।" लेकिन अब नौटियाल इतने जोर से हँसता है कि उसकी बात जबान पर ही मीठी चाक्लेट-सी गल जाती है।

जिस फ्लैट में उसका कमरा है, उसे कहते हैं तीन तल्ला। कुल मिला कर इस मकान में २०० कमरे हैं। पूरी एक छोटी दुनिया है। चार दिशाओं में चार-चार फ्लैट हर तल्ले में बनाये गये हैं। रसोई की तरफ उसके सामनेवाले फ्लैट में पाँच कमरे हैं सामने के द्वार के सामने पाँच कमरे हैं। बाँई बगल में एक कमरा और दाई बगल में चार कमरे हैं। इस बाड़ी में अधिकांश निम्न मध्यवर्गीय परिवार हैं। इलाहाबाद में वह एक बंगाली सखी के साथ चालू बँगला बोलना सीख चुकी है। यहाँ आते ही उसने सबसे पहला काम यह किया कि सब पड़ोसिनों से हमजोली

बढ़ाई और सबकी प्यार भरी गलबहियाँ प्राप्त कीं। शशिछाई दुलारी का कंठ-स्वर ही ऐसा था कि उसकी प्रत्यंचा पर जो भी जान-बूझ कर बैठ जाता था, जानता था कि ऐसा तीर बन जायेगा कि नृत्यशील भंगिमा की तरह तीव्र कटाक्ष-सा ! विषबुझे तीर की बात बहुत सुनी है। पर प्रत्यंचा पर बैठ कर कोई भी नृत्यशील तीर बन जाये, शशिछाई के निकट इसका सबूत प्रत्यक्ष मिल सकता था। यूँ शशिछाई दुलारी ने अपनी प्रत्यंचा की टंकार मात्र से कई बार नौटियाल को आहत और मूर्छित कर दिया है। उसकी रूप-चंद्रिका के ज्योतिसत मंडल की रश्मियों के चारों तरफ काली, गहरी श्यामवर्णी, पीली, अधगोरी बंग-कन्याओं और पड़ोसिनों की पंक्ति इस तरह जुड़ गई है कि लगता है शशिछाई दुलारी इन्हीं के परिवारोंकी कोई बहू हो।

कलकत्ता में जब पहले दिन की शाम आई थी तो उसने हीटर पर चाय चढ़ाई। पति के दफ्तर से आने का समय हुआ। पर उनकी जगह कमरे में सामने के दरवाजे से, ऊपर के झरोखे से, रसोई वाले दरवाजों से और कटघरे के नीचे से, बरांडे के विशिष्ट हवादार दरवाजे से धुँये के काले-भरे गुब्बारे इस तरह बिना बुलाये अतिथि की तरह आने लगे कि दुलारी उनके बीच घिर गई और उनके थपेड़ों से त्रस्त खों-खों करने लगी। कंठ और नेत्रों में वह धुँवा देखते-देखते समाहित हो गया। जब तक कि वह दरवाजा बंद करे, उसका सारा कमरा धुँये से भर गया और दूसरे ही क्षण वह कमरे के बाहर खड़ी थी और धुँए ने अपने बाहुबल से कमरे पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। पर बाहर बरांडे में धुँए की अपनी सशक्त सेना छाए हुए थी........

लग गये दो घंटे उस धुँवा को बाहर निकालने के लिये और कमरेमें ताजी हवा से स्वस्थ होने के लिए। लेकिन दो घंटे क्या, रात को आठ बजे तक वह इधर से धुँवा निकला तो उधर के दरवाजे से हवा का मुड़ाव खाकर इसी कमरे में आदतन या जिद्दतन घुस आया। दर-

वाजा बन्द करती है तो गरमी की हुमस में घुटती है। और फिर बन्द कमरे में यह पिल्ले का बच्चा धुँवा और भी हाऊँ-हाऊँ करेगा। बंगाल की हुमस ऐसी कि प्राणों तक का गला घोंटने की दुष्टता से बाज नहीं आती। दरवाजा खुला छोड़ती है तो फिर किसी अंगीठी की कड़वी जहरीली धुंवा उससे रस्साकसी करने के लिये अन्दर दौड़ आती है। गुस्से से उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं। मुट्ठियोंसे उसने अपनी ही दोनों आँखें धुननी शुरू कर दीं। आँसू ढुल-ढुल पड़ते हैं और त्रास खाती हुई अँखियन को धुनती जा रही है। थोड़ी ही देर में उसकी दोनों आँखें सुर्ख हो गईं। उनमें जलन व्याप्त हो गई। अब उससे न रहा गया। फफक कर रो उठी। फुफुकार कर उठी, इसी क्षण सब पड़ोसिनों को खरी-खोटी सुना कर आये और उन्हें उनकी बदतमीजियों का एहसास करा आये। पर सँभली और रुकी। संयत भाव से बाहर कदम रखे और देखा कि किस कमरे से धुंवा निकल रहा है। साड़ी के पल्ले से माथे का पसीना पोंछा और उसी कमरे के सामने जा कर आवाज दी, "दीदी।"

दीदी बाहर निकली। उसके माथे पर धुँवे की कोई शिकन नहीं है। उस धुँवा के बीच में वह इस परितोष के साथ है कि जैसे वह उसके जीवन का एक स्थायी अनिवार्य अंग है। दीदी समझी कि नई बहू कुछ माँगने आई है। शशिछाई दुलारी ने उस धुँवे से फिर नये सिरे से आहत होकर अपनी आँखें पल्ले से ढाँप लीं। आँसुओं को सुखाया। जिस तरह दुखी हुई आँखों के रोगी किसी से बात करते समय अपनी आँखों को मिचमिचा कर खोला करते हैं, उसने गीली पलकों को खोलते-बन्द करते कहा, "दीदी, इस धुँवे को बन्द करो न।"

दीदी हँस पड़ी। बस, इतनी सी बात? बोली, "दीदी, यह धुँवा तो ऐसा ही रहता है। चूल्हे से धुँवा पैदा न होगा तो क्या हूरपरी पैदा होगा। इस पर हमारा क्या बस है? साला चीड़ का लकड़ी ही ऐसा भगवान ने बनाया है कि यह बेशी धुँवा देता है। अभी तो रुक जायेगा।

अरे बाप रे, आप का आँख तो पके कटहल सा सुर्ख हो गया है। अरेरे, दीदी, तुम्हारा पीहर में क्या चूल्हा नहीं है? क्या आप लोग होटल में खाना खाता था?"

दुलारी न हंस सकी, न कड़ा उत्तर दे सकी। दीदी का तर्क उसकी वक्ष में ऐसा समा गया कि जबान पर रखी हुई असह्य कड़वी कुनीन की टिकिया गले में सरक कर एक चिंतनीय सुख दे गई हो। अब क्या करे? लौट आई। और तकिये में सिर खोंस कर लेट गई। शैया पर रो रही है और सिर धुन रही है और अपने भाग्य पर तरस खा रही है कि यही कलकत्ता है? यहीं पर लोग शान से रहते हैं? येही चिट्ठी में लिखा करते थे कि कलकत्ता में रहने के लिये लोग तरसा करते हैं। कलकत्ता महानगरी कैसी, यह तो चूल्हे और अंगीठियों के धुँवे की नरक-नगरी है। भाड़ में जाय यह कलकत्ता!

साढ़े आठ बजे नौटियाल आया। बड़े साहब का लड़का कहीं घुमाने ले गया था। घर में अब भी धुँवे के शेष रेशे बल खा-खाकर इठला कर छत पर लटके हुए हैं। अटके हुए हैं। पत्नी सुबक-सुबक कर रो रही है। और कोप-भवन के नाटक में अभिनय किये लेटी हुई है। पहले ही दिन यह क्या हुआ? किस कारण, इस अशुभ ने इस पहली ही रात यूँ पत्नी को खारी बना दिया है? वह खूब जानता है, उसे एक मित्र ने बताया था, कि जब पत्नी रात में खारी होती है तो उसके सामने साँभर की नमक झील भी तुच्छ हो जाती है। हीटर ठंडा पड़ा हुआ है। रसोई बनी नहीं है। पूछा, "किसी से झगड़ा हो गया पहले ही दिन?"

दुलारी चुप। वह आज की पहली रातवाली गाड़ी से ही इलाहाबाद लौट जाने का इरादा घोषित कर देना चाहती है। लेकिन जबरदस्त घोषणा के लिये जबरदस्त दिल चाहिये। विवाह से लेकर आज तक नौटियाल से कुल मिला कर उसने यही चालीस-पचास घंटे बातचीत की है।

सब बताने के बाद भी नौटियाल सिर्फ मुस्कराता रहा, तो वह इलाहाबाद जाने की बात न कह सकी ।

सब-कुछ सुनकर नौटियाल आखिर हँस पड़ा । शशिछाई इस हँसी से कुढ़ गई, लेकिन अपने को उसने सँभाला । वह बोला,—"अरी, दोनों दरवाजे बन्द कर लिया करो । इसमें झगड़ा थोड़े ही मोल लिया जायगा । शाम को तो सारे कलकत्ता में ऐसा ही होता है । एक इस धुँवा को, दूसरे मछलियों की बदबू को सहन करना सीख लो, तभी इस कलकत्ता का मजा लेना आयेगा तुम्हें । अभी हम इस योग्य कहाँ हैं कि हिन्दुस्तान-पार्क में जा रहें । हल्का सा इलाज है कि दरवाजा अपना बन्द रहे, उसमें दो घंटे की गरमी सही । बन्द दरवाजे के बाहर लोग भड़भूजे का भाड़ सुलगायें तो सुलगाने दो न ।"

उस समय दुलारी ने उठकर खाना बना लिया । पर उसे शक लगा रहा कि अभी नये सिरे से और पास के दसों कमरों से अंगीठियाँ और चूल्हे धुँवा का लावा उगलने वाले हैं ।

एक सप्ताह के दौरान में उसने महसूस किया कि उधर चार कमरों में लकड़ी के कोयले की अंगीठियाँ सुलगती हैं । बाकी सात कमरों में पक्के भट्टीदार चूल्हे में पत्थर के कोयले सुलगते हैं और उन्हीं से धुँवा अधिक फूटता है । अब उसने अपना सोने का समय बदल दिया । छ: बजे की बजाय अब सुबह आठ बजे उठने लगी । तब तक कमरा बन्द रहता । खाट के पास हीटर रख कर बैड-टी तैयार कर लेती और फिर दुबारा दो घंटे गुदगुदे गद्दे पर करवटें लेती हुई उपन्यास के पन्ने पलटती रहती । नौटियाल सब समझ कर चुप है । उसे यह अफीमचीपना नहीं सुहाता । खाने में इतना विलंब होता है, आठ बजे खाना बनाना शुरू करने से भी गरम फुलके नसीब नहीं होते, टिफिन में रख कर आफिस को दौड़ना पड़ता है । पत्नी घरमें मौजूद रहे और गरम फुलके न मिलें ? नौटियाल

झुंझला कर भी इस नव-वधु से कुछ नहीं कह पाता। यह बासी रोटियाँ खिलायेगी तो भी वह खायेगा।

दुपहर में शशिछाई दुलारी ने अपने कमरे में अतिरिक्त चाय बनाई और कस्तूर की माँ, बाबू की माँ, छोबी की माँ और भंडी की माँ को अपने कमरे में बुलाया। रात जिस दीदी से उसने धुँवे की शिकायत की थी, उस दीदी को भी बुलाया। चाय पी चुके तो सबसे उसने बिजली के खास फायदों की चर्चा करते हुए भूमिका-स्वरूप कहना शुरू किया कि बिजली एक ईश्वरीय देन है और सब हीटर पर खाना बनायें तो उससे अमुक-अमुक लाभ हैं। हीटर नहीं, तो लकड़ी के कोयले की अंगीठी तो रहनी ही चाहिए। चीड़ की लकड़ी, नारियल की मूंज और पत्थर के कोयले की धुँवा इस मानवी शरीर के लिये कितनी घातक है, सो फलाँ-फलाँ डाक्टर ने क्या नहीं लिखा है।

शशिजी का भाषण समाप्त हुआ। सब बच्चों की माएँ इस नई बहू का मुंह तकने लगीं। यह उत्तर-भारत की तरुणी कैसी मेम साहब है? बाबू की माँ ने अपने ओठों की तहें करते हुए कहा, "कैसे चलेगा आप की राय हम लोगों के घर में। हम लोग गरीब हैं। आठ रुपया मन का कोयला जलायेंगे तो खायेंगे क्या? हीटर की बिजली का दस रुपयों का बिल देंगे तो कर्ज कहाँ से मिलेगा? यह सब कैसे पोसायेगा? आप का क्या है। आपका बाबू मालदार आदमी है। आपका पीहर का लोग मालदार है। आप लोग तो नाहक यहाँ घर में खाना बनाता है। होटल से खाना मंगाकर आप क्यों नहीं खाता?"

जैसे तो क्लास रूम में सहसा ही एक कठिन प्रश्न पूछ लिया गया हो और मालूम होते हुए भी अध्यापिका को कुछ संशय के वश चुप रह जाना पड़ा हो। सुन कर शशि का साहस ठंडा पड़ गया। वरना उसका इरादा तो यह था कि धुँवे के अवगुणों पर एक लम्बा लेक्चर देकर वह जैसे-तैसे सब को तैयार कर लेगी कि लोग सिर्फ हीटर पर ही खाना बनाया करें।

लेकिन अब तो वह तुरंत ही बात बदल कर बंगाली विवाहों में क्या लेन-देन होता है, इस विषय की विवेचना करने लगी। जब सब चली गईं तो उसका मन आग्रह करने लगा कि कलकत्ता उनको मुबारक हो जो गरीब हैं और गरीबी की मार से अपना विवेक खो चुके हैं। कहते हैं, यहाँ करोड़-पति और लखपति बहुत हैं। पर वे भी किसी न किसी बात में दरिद्र जरूर हैं, जो इस कलकत्ता में रहते हैं। अपना इलाहाबाद अच्छा।

शाम तक उसने यह पता और चला लिया कि इस फ्लैट में ही नहीं, सारी बाड़ी में लोग लकड़ी का कोयला जलाते थे और उससे इतनी धुँवा नहीं निकलती थी। सस्ती चीड़ की लकड़ी से चूल्हा तैयार करने की बात पहले किसी ने नहीं सुनी थी। पत्थर के कोयले से रोटियाँ बनाना छोटे लोगों का काम समझा जाता था। यह पक्का विश्वास था कि पत्थर के कोयले की रोटियाँ हाजमे को सुखा डालती हैं। लेकिन लड़ाई आई...लकड़ी का कोयला शुद्ध घी के मोल बिकने लगा। एक रुपया मन का कोयला दस रुपया मन तक बिका। लाचारी में मान लिया लोगों ने कि अगर वेजीटेबल घी खाकर हम नहीं मर रहे तो पत्थर का कोयला भी एक दम तो मारने से रहा। अब यह हालत है कि लकड़ी का कोयला खरीदा जाना एक गृहिणी की ऐयाशी बन गई है और मानी भी जाती है।

हर शाम शशिछाई दुलारी अपने कमरे के दरवाजे बन्द कर इस तरह गुमसुम बैठती कि जैसे किसी राक्षस का हमला होने वाला हो। इन तीन घंटों में प्रति दिन उसका दम घुट-घुट जाता। कलकत्ता का मौसम राम का मारा, हुमस-प्रधान जो है। पसीने से उसके अंग-अंग और उसका ब्लाउज तरबतर हो-हो जाते हैं, पर वह भी बरबस अभ्यस्त होती जा रही है कि यह गरमी तो बरदाश्त कर लूँगी, धूँवा से निकाह (!) मुझे नहीं करना। जब रात के आठ बजे गाड़ी में धुँए का प्रकोप शांत होता तो वह अपना हीटर जलाती और आतुरता से ताजी हवा का रस पान करती।

यही एक महीना गुजरा कि जो कमरे लकड़ी का कोयला जलाते थे,

उन्होंने भी पत्थर का कोयला चीड़ की लकड़ियों के योगदान से जलाना शुरू कर दिया। ये उसके निकटतम कमरे थे। इनकी अंगीठियां जलाने के क्षणों में उसके दरवाजे के पास ही रख दी जातीं। वे उसके दरवाजे के आगे अपना भुतही नाच नाचना शुरू करतीं तो दुलारी का रहा-सहा धैर्य भी समाप्त हो जाता। उसे लगा, अब उसका हीटर इन अंगीठियों में सुरक्षित न रह सकेगा....

उसे मालूम हुआ कि निकट के कमरे के बाबुओं ने अपनी गृहिणियों से कहा है कि हमें अपने खर्चो में कमी करनी होगी। कम से कम चार रुपये की बचत होती है, चीड़ की लकड़ियोंके सहारे पत्थर के कोयले की अंगीठी जलाने से। सुन कर दुलारी ने मन ही मन सब बाबुओं की बुद्धि को डट कर कोसा और मानता की कि जल्दी सबको हनुमानजी महाराज टी० बी० कर दें तो इन कमअक्लों को पत्थर की अंगीठी जलाने का मजा आ जाये!

अब दिन में वह सिर्फ पाँच घंटे अपना कमरा खोलकर रहती है। बाकी समय वह दरवाजा बन्द रखती है। पड़ोसिनों से बात करने में भी उसे ग्लानि है। लगता है, ये साक्षात् धुंवे का अवतार धारण कर आई हैं। बन्द कमरा जो कोप-भवन बन जाता है, वही अब उसे अंगीकार है। नौटियाल से वह दो-तीन बार कह चुकी है कि कहीं और कमरा देखो न। वह हंस कर कह देता है कि पगली, कलकत्ता में सब कुछ-एक रात के लिये किराये पर मिल सकता है। पर कमरा पाने के लिये पूरी तपस्या करनी पड़ती है। तभी किसी बाड़ीवाले का इंद्रासन डोलता है। सुन कर वह मुंह फुला लेती है। और अपने पति की बुद्धि पर तरस खाकर रह जाती है।

उसका सारा संगीत का प्रोग्राम और उसका सारा औपन्यासिक अध्ययन यहाँ आकर इन अंगीठियों के मारे, और इस कमरे की विडंबना-पूर्ण स्थिति के मारे स्थगित हो गया है। अभी पर्स में इतनी गुंजाइश नहीं

है कि एक बिजली का पंखा खरीद लिया जाय। पिताजी पहले तो चिट्ठी की चिट्ठी हफ्तेवार दे दिया करते थे। पर जिस दिन से उसने एक बिजली के पंखे को किसी आते-जाते के हाथ भिजवा देने की फरमाइश लिख भेजी है, चिट्ठी का जवाब आना निकट भविष्य में प्रलय होने की बात जैसी बन गई है। राम करे कि आग लगे इस कलकत्ता को। अब तो सामने के फ्लैट में भी शेष कमरे चीड़ की लकड़ियों से पत्थर का कोयला लकड़ी के कोयलों की जगह जलाने के लिये बाध्य हो गये हैं। सस्ता जो पड़ता है। और, फिर काम वही सोहाता है जो कि दुनियादारी को देखते हुए किया जाय। गरीबों की दुनिया में जो अमीरी का प्रदर्शन करे, वही इस दुनिया का महान बुद्धिहीन पशु। भला कोई क्यों करे और किस हित करे? चार रुपये एक महीने में बचते हैं। अजी साहब, साल के पचास हो गये। क्या कम हैं? इतने में तो बच्चों के दस जोड़े सिलें और बीबी की दो साड़ियाँ भी आयें। लगता है, यह पत्थर का कोयला गृहस्थियों में नये जमाने का नया देवता शीघ्र ही बन लेगा?

लेकिन शशिछाई दुलारी को यह सब तर्क एकदम भोंडे लगते हैं। अक्सर वह शाम के चार बजे देखती है कि पहले आखिरी कमरे से तीसरे तल्ले में धुँवे की एक लट उठती है। वह कवियत्री है। धुंवे की यह लट उसकी अनुभूतियों को कुछ क्षण के लिये सरस बना देती है। लेकिन क्षण बीतने भी नहीं पाता कि वह धुँवे की लट शशिछाई की भावुकता से आकृष्ट होकर इधर उसके कमरे में ही घुमेरखाकर दौड़ आती है और मोटे भारी-भरकम जेवड़े का रस्सा बन कर एक सांस उसके कमरे में किसी लंबी कविता के दीर्घ छन्दों की तरह घुसती रहती है। इतने में पास के कमरे की धुँवा अपना इन्द्रजालिक रूप धारण कर उसकी नब्ज टटोलना चाहता है। इतने में नीचे एक तल्ले से, दूसरे तल्ले से और सामने के फ्लैट के कई कमरों से एक-साथ धुँवा जो उठता है तो लगता है, बस, कलकत्ता की सोलह आने सचाई यही है। इस धुँवे में कलकत्ता महानगरी की आत्मा

का साक्षात्कार किया जा सकता है। पक्का विश्वास उसे हो गया है, यहाँ सिर्फ एक चीज धुंवा ही है। जो धूमधाम से यहाँ कार्य होता है, व्यापार होता है, आंदोलन होते हैं, सृजन होता है, वह धुँवे के उबाल के अतिरिक्त कुछ नहीं है...उसके कमरे के चारों ओर जब धुँवा कौवों की भीड़-सा उड़ने लगता है तो मन ही मन वह बड़बड़ाती है कि इन सब अंगीठियों की लाशों का धुँवा मेरे कमरे के चारों ओर ही क्यों एकत्र हो गया है ? हे भगवान, यह किस अशुभ की सूचना है ?

और, अब उसीके तल्ले के कई कमरों में से भी धुँवा आने लगता है। सारा व्योम धुँवे के पीछे छिप जाता है। इसी समय बाहर शाम के चार बजे सूर्य तेज चमकता होता है, लेकिन उसके लिए तो यही समय देर शाम का है। सूर्य का प्रकाश इस धुवें से छनकर आना अभाग्य की बात हो गई है। इस समय सामने के बरामदे का यह हाल कि जैसे वहाँ कई सौ साधुओं ने अपनी धूनी रमा दी हो। लेकिन साधुओं ने नहीं, शशिछाई सोचती है, कुछ पिशाचों ने !

ओः ये अंगीठियाँ उसे एक दिन आराम से जला क्यों नहीं देतीं ?

कल शाम को नौटियाल जल्दी ही आया। बिजली का बिल चुका कर आया था और वेतन में से क्या बचा है, इसकी जोड़-बाकी कर रहा था। एक पेशेवर क्लर्क के लिए जोड़-बाकी भी कहाँ बदी है। उसके भाग्य में तो बाकी ही बाकी है, घटा-घटा कर देखता है कि अब इन रुपयों में से और क्या घटाया जाना बाकी है ? यह दिलजमई होते हुये कि उसमें शेष कुछ भी नहीं रहना है। जोड़ के अलावा गुणा-भाग का तो भाग्य कुछ खास चुनिंदा लोगों के लिये बचा कर रखा गया है। लेकिन नौटियाल कुछ गुणा-भाग करने लगा और बड़बड़ाता रहा। कि चुपके से बिना उसे देखे कुछ सुस्त-सा बोला, "भई, यह तो बड़ा कष्ट बढ़ता जा रहा है। दो महीनों में इधर हीटर का बिल बीस रुपये बढ़कर पैंतीस रुपये का हो गया है। इसका मतलब तो सालाना क्या होने वाला है, जरा जोड़ कर

देखो। कलसे तुम भी पत्थरके कोयलेकी अंगीठी जलाना शुरू कर दो। अपनी क्या अमीरी है? यहाँ सब ही तो जलाते हैं। यहीं के रंग में रंग जाओ तुम भी, इसी में सुख है, इसी में मौज है, इसी में सुखद भविष्य है।" और उसने अपनी प्यारी रानी को एक मधुर कटाक्ष देकर सरस बनाना चाहा। अपने मधुर कटाक्ष से उसे अपने संदेहास्पद प्रस्ताव के प्रति आश्वस्त करना चाहा। पर दुलारी जड़ होकर एकटक पति को घूरती ही रह गई।

आज सुबह उसने नई अंगीठी को स्पर्श किया तो लगा, जो अशुभ आना था वह इसी अंगीठी में, सदेह, दुर्दैव बनकर आ गया है। उधर रसोईके कोनेमें मनभर पत्थरके कोयलेका ढेर पड़ा है, जो उसे घूर रहा है कि कहो जी, परास्त हो गई बहूरानी! अरी, यह पिता का घर नहीं है, पिया का घर है। मैं ही तुम्हारी कसौटी बनने आया हूँ! बोलो अब, कुछ कहना है? पर क्या कहना है?

अंगीठी जलाने वह बैठी। पर मुई जलती कहाँ है। पाँच-छः अखबार फुंक गए, सारा कमरा और सारा फ्लैट धुँवे से भर गया। पर मरी की मारी अंगीठी न जली। चीड़ की लकड़ियों की खपच्चियां धूधू कर हँस-हँस कर झटपट जल गईं पर पत्थर के कोयले ने आँच न पकड़ी। पड़ोस की बहुएँ जरा सा झाँक कर उसका कमरा देख जाती हैं, जो धुँए से भर गया है। जहाँ शशिछाई दुलारी आज धुँवे से संधि करने बैठी है और अपनी पराजय पर रो रही है, गरम कड़वे आँसुओं से आँखें सुजा रही है। आखिर पड़ोस की एक बहू ने हँस-हँस कर अखबारों की जलन कूड़े में फेंकी, नये सिरे से चीड़ की लकड़ियाँ यूँ प्यार से सजाईं कि कोई अपनी सुहाग-पिटारी सजाती है। और तब पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े उन खपच्चियों पर सज्जित करती हुई यों बोली, "दीदी, यह पत्थर का कोयला दिल का अरमान माँगता है। अपने बाबू को प्यार देते समय थोड़ा बचा लिया करो और इस पत्थर के कोयले को दिया करो!" और यूँ दस मिंट में

वह अंगीठी जल गई मानो, किसी अनुष्ठान में कोई अग्नि की देवी वरदान देने के लिये खिलखिलाती हुई प्रकट हो गई हो।

सारी बाड़ी में यह गरम खबर आग की तरह फैल गई कि आज इलाहाबाद वाली नई बहू ने भी पत्थर के कोयलों की अंगीठी जलाई है। जलाई क्या है, उसे कहाँ जलाना आता है, उसे जला कर दी गई है। और यह चर्चा बड़े जोर-शोर से होती रही कि ये उत्तर-भारतीय बहुयें यहाँ कलकत्ता में भला क्यों आती हैं अपने कमसिनी हावभाव नाज-नखरे लेकर ?

इस समय शाम के पाँच बजे हैं। दिन भर दुलारी अपने बिस्तर पर आहत सिपाही की मानिन्द करवटें लेती रही है। मन में मांग करती रही है कि उसे यहाँ कलकत्ता से कोई स्ट्रेचर में उठा कर ले जाय सीधा इलाहाबाद।

दुपहर में वह पत्थर के कोयले तोड़ चुकी है। उसकी मुलायम अंगुलियोंमें और दांई गुलाबी हथेलीमें कई छाले पड़ चुके हैं और वे फफोले फूटकर जलन कर रहे हैं। इतनी जलन तो उसे इन पति की यादमें नहीं हुई थी, जो पूरे पाँच साल बाद उसे बुला कर लाये थे, भाँवरें पड़ने के बाद से। आँखें उसकी जार-जार रोना चाहती हैं। पर सिर झुकायें, उन सब बहुओं की हँसी पर गुस्सा न करते हुए घुटने तोड़े बैठी है कि यह हीटर उसकी असली शान नहीं थी। सचाई तो यह अंगीठी थी और यहाँ कलकत्ता में पति के संग रहने का सुख भोगना है तो यह धुँवा ही उसका निस्तार करेगा। आज वह हीटर के फायदों के स्थान पर इन बहुओं से पत्थर के कोयले की अंगीठी के फायदे पर सद्उपदेश चाहती है ? इस क्षण वह मुर्दे-से हाथों से अंगीठी जलाने का उपक्रम कर रही है। चीड़ की लकड़ियाँ दो मिनट जल कर ढेर सा धुँवा देकर बुझ जाती हैं। फिर वह अखबार झोंक देती है और वह भी जल कर खाक हो जाता है और उसके मुँह की फूंक से जले हुए कागज के जले हुए टुकड़े उसके सिर पर चढ़ जाते हैं। पर पत्थर के कोयले आग न पकड़ने की जिद्द पकड़े बैठे हैं। गोया उसे

चिढ़ा रहे हैं : बहू रानी , कहो, माफी माँगो हम से तो जलें । बहुत अपमान कर चुकी हो हमारा.........!

सुबह वाली बहू दुबारा आती है तो अंगीठी उसके हाथों से जलने लगती है । और वह हँसती हुई लौट जाती है । अब वह देख रही है कि उसकी अंगीठी का धुँवा पड़ोस के कमरों में घुसने लगा है । उसका अपना कमरा तो पहले ही भर चुका है । उसे भय लग रहा है कि उसे ठोसा दिखाने के मिस ही कहीं कोई बंगाली पड़ोसिन आकर न कहने लगे, 'दीदी यह धुँवा बन्द करो न ।' इस समय उसी के घर का धुँवा उसी के कमरे में भरता हुआ उसे अंगूठा दिखाकर चिढ़ा रहा है और भरे बादलों सा गरज रहा है । हाय, शशिछाई दुलारी, तू इस धुँवे की दुनिया में आबाद होने आई थी, कि कलकत्ता में मौज लेने आई थी ?

और वह वहाँ से उठकर दरवाजा बन्द कर लेती है और धड़ाम् से विस्तर पर गिर कर सस्वर रोने लगती है ।.....कमरेगें धुँवा जो भर चुका है । वह इस समय गीत गाता हुआ लग रहा है :'लाड़ी, री गोरी, खसम का चूल्हा करेगा जोरा-जोरी, अँखियन से भरोरी......।'

बाहर बहुएँ हँस रही हैं, सस्वर; अंदर दुलारी अब सुबकियों में चुप है !!

नव-दाम्पत्य के शिला-खंड जब उखड़ने लगते हैं तो अश्रुओं की गंगा फूट निकलती है । गंगोत्तरी से प्रवाहित होने वाली गंगा एक संकरी गली से बहनेवाली सूक्ष्म धारा सी गोचर होती है, जब मैं शशिछाई दुलारीके नैनोंकी गंगोत्ररीसे स्त्रवित होनेवाली अश्रुओं की गंगा की बात सोचता हूँ । हिमालय से उतर कर वह गंगा उत्तर प्रदेश की गलियों से निकल कर विहार की नालियों में बहती हुई, बंगालकी खटालों के बगल से निकल कर, समुद्र में जा मिलती

है। लेकिन शशिछाई दुलारी के अश्रुओं की गंगा तो सारे देश में व्याप्त होकर सैकड़ों ही त्रिवेणी-संगम चर्चित करती हुई सैकड़ों ही छोटी-मोटी अश्रुओं की जमुनाओं से मिलकर, गलबहियाँ लेकर इतनी विशाल गंगा बन जाती है कि आज तक उसका लेखा-जोखा, लेने लंबाई और गहराई नापने की जोखिम किसने उठाई है। मैं आज यह जोखिम लेने बैठा हूँ तो इसका लोक-कल्याण किस रूप में प्रस्फुटित होगा, मैं नहीं जानता। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक आसाम में महानद ब्रह्मपुत्र अपने भयंकर प्रवेग से सर्वनाश-लीला में उद्यत बना हुआ डिब्रूगढ़ को अपने विकराल जबड़ों में समेटे जा रहा है। लेकिन इन अश्रुओं की गंगा और जमुनाओं में क्या बाढ़ प्रति वर्ष नहीं आती है? क्या उस बाढ़ से सहस्त्रों ही नारियाँ आप्लावित नहीं हो जाती हैं? सैकड़ों ही गृहस्थियाँ जलमग्न नहीं हो जाती हैं?

शशिछाई दुलारी आधुनिक युग की कन्या है। वह भी इतनी जल्दी अश्रु बहाती है अपने पति के गृह में स्थापित होते ही, तो इसका एक मतलब यही हुआ कि यह युग भी हमारी नव-संतति को दुखदायी रहेगा। दूसरा मतलब यह हुआ कि पुरानी पीढ़ी की औरतें जो रोती हैं, वे रोने के लिये ही पैदा नहीं हुई थीं, उन्हें जीवित ही इसलिये रखा गया था, ताकि वे अपने युग के पूरे अश्रु बहाकर जीयें! क्या दुलारी यूँ ही जीवित रहेगी?

जबकि शशिछाई दुलारी फूट कर रो रही है, अन्य बंग-युवतियाँ क्यों हँस रही हैं सस्वर? कई वर्ष हुये, एक रिकार्ड हर चौराहे पर खूब सुना करता था: 'हंसना भी रोने का बहाना है.....।' निश्चय ही वे बंग-युवतियाँ जब पहिली बार अपनी माताओं के वरद् डैनों के नीचे से पति के घर का चुग्गा चुनने चूजों की सी सुकुमार हालत में आई होंगी तो यों ही रोई होंगी। किन्तु जब कि हमारी गृहिणी को

अपना अखिल जीवन अश्रुओं की गंगा में ही तैरते हुए बिताना पड़े, वहाँ वह रोना हृदय की परिवर्तित स्वरलहरी का रूप धारण करते हुआ हँसने का अभिनय करने लगता है। जहाँ गहन रूदन दीमक की तरह गृहस्थी के कोने-कोने में छा गया है, वहाँ मैंने न सिर्फ मुस्कराहट, हँसी और हास्य की स्फुराहट ही सुनी है, वहाँ अट्टहास भी सुना है। लेकिन मेरी आँखें उन दीवारों में रूदन की दीमकों की अदृश्य बांबी को देखने से कहाँ चूकी हैं ?

आइए, एक दूसरी गृहस्थी में ऐसा ही बांबियों का ताना-बाना दिखाऊँ, जहाँ अश्रुओं की जमुनायें और नर्मदाएँ अपने-अपने किनारों को तोड़ कर बाढ़ का दृश्य उपस्थित करने के लिये गुस्सैल सी बनी बैठी हैं :

[२]

तिब्बिया कालेज, दिल्ली के, आऊट-डोर हास्पिटल में एक दुखी, क्लांत और बेचैन आदमी ने मुझ से हमारे वार्डन का अता-पता पूछा। वे उधर कोने में खड़े थे, उन्हें इधर ही बुला लिया। आगंतुक हम कई छात्रों को देख कर अपनेपन की बात कहने में हिचक रहा था। पर निःसंकोच रहने का आश्वासन पाकर वह बात कहने से ही पहले फूट कर रो पड़ा।

हम सब स्तब्ध। वार्डन की आँखों में इसके विपरीत एक हँसी की बदली के रेशे तैर आये।

आखिर उसने कहा, "डाक्टर साहब आज तीन साल हो गये हैं, मेरी रातें दिल्ली स्टेशन पर खड़े हुए गाड़ियों के खाली डिब्बों में कटती हैं। मैं शहादरा में रहता हूँ और मेरी घरवाली है और चार बच्चे हैं। कम्बख्खत औरत से मुझे दहशत लगती है। जाने कौन-सी गंगा की तराई जैसी कोख लेकर आई है कि उसके पास मैं गया नहीं और वहाँ एक नया

बीज पैदा हुआ नहीं । डाक्टर साहब, सात महीने से यही रेल के डिब्बों में रात काट रहा था । कि एक दिन घर की हालत देखने, बच्चों से मिलने चला गया । और इसी रात पाँचवाँ बच्चा भी उसके पेट में आ गया । डाक्टर साहब यह मेरी मौत है और इन चारों बच्चों की मौत है । मैं गरीब आदमी हूँ । अब हम छः प्राणी भरपेट भोजन नहीं कर पाते । अब वह कम्बख्त सातवाँ मेहमान कहाँ से दूध पायेगा और रोटियाँ तो उसके लिए एक भी नहीं हैं । आप ऐसी तरकीब करें कि वह सातवाँ मेहमान इस पृथ्वी पर आ ही न सके ।" और हिचकियाँ लेते हुए उसने अपनी हथेलियाँ डाक्टर साहब के सामने पसार दीं ।

मैं उसकी हिचकियों में ही उसकी पत्नी की हिचकियों की भी प्रतिध्वनि सुन रहा था । और उस पत्नी की कोख में अप्रस्फुटित सातवें अतिथि की चीख भी सुन रहा था, जिसकी अग्रिम हत्या की तैयारी करने के लिये यह बाप हमारे वार्डन साहब के पास आया है............।

[३]

माथुर ने सिर्फ इतना कहा, "तो मैं अपनी ओर से छुट्टियाँ घोषित करता हूँ" और थोड़ा खिन्न, हँसकर बोला, "क्षमा करना, स्कूल का चपरासी तो यहां नहीं है और न घंटा है जिसे बजाकर वह छुट्टियां घोषित कर सके ।"

पास-पड़ोस की अशिक्षित, मूर्खा, ढीठ बहुओं की तरह और लड़कियों की तरह कान्ति भी बराबर अनर्गल तर्क करने की जिद् पकड़े बैठी थी । वह तैश में थी और इस बार माथुर के चुप होते ही जोर से चीख कर कहना चाहती थी, 'तो क्यूं अंधे होकर उस दिन माथे पर सेहरा सजाये मेरे द्वारे बैठक में पहुँच गये थे......।' पर माथुर तुरन्त ही अपनी बात कह कर तैश में लौट गया ।

तो कान्ति ने भी पति से खाली कमरे में प्रकाश बुझा दिया और धम्म् से कमरे में जमीन पर ही पसर गई । छुट्टियों की बात सुन कर वह निरीह

सी रह गई। क्रोध के स्थान पर वह झुंझला आई........छलछला आई.....
हिचकिचा कर रह गई। ये क्या मुझे हमेशा छात्रा ही समझते रहेंगे।
जहाँ इनका तर्क नहीं चलता, वहाँ उसी क्षण कहने लगेंगे, "तुम
बच्ची तो हो नहीं, जो तुम्हारी मरम्मत कर तुम्हें कुछ रटा सकूँ।" या
बोलेंगे, "देखो, बच्चियों को एक चपत लगाकर उन्हें सीधा किया जा
सकता है।" या चीखेंगे, "छात्रा होती तुम, तो तुम्हें जुर्माना कर देता
और इतनी एक्सरसाइजें घर पर हल करने के लिये देता कि या तो अच्छी-
नेक छात्रा बन जाती या मेरा स्कूल ही छोड़ने के लिये बाध्य हो जाती।"

कान्ति बिलख उठना चाहती है, 'ये मुझसे अपना स्कूल छुड़वाना चाहते
हैं? इस 'स्कूल' की 'छुट्टियाँ' कर देना चाहते हैं? भला क्यूँ?
ताकि संयोग की घड़ियाँ स्थगित की जा सकें?'

स्कूल! यह ससुराल कान्तिका स्कूल है? पति का घर 'स्कूल
की चहारदीवारी वाली कैद' होती है? छुट्टियाँ होने से क्या उसे सदा
के लिये अपने पीहर चले जाना होगा?' यही तो मतलब है इनका, कि
मैं घर लौट जाऊँ? स्कूल की छुट्टी के बाद छात्रायें अपने घर जो
जाती हैं........

गुस्सा उसमें उफनना चाहता है, पर नीचे से आग के हटाते ही दूध
का उबाल जैसे तत्क्षण बैठने लगता है, सो पति के बैठक में जाते ही कान्ति
हठात् अपने गुस्सेसे निरस्त्र होने लगी---पिया-संयोग की घड़ियाँ जो
स्थगित की जा रही हैं। मुझे अपने क्रोध का बन्दी भी बनाया जा रहा है
ओर पति-गृह से दूर कालेपानी भी भेजा जा रहा है। विवाहिता स्त्री
का पीहर लम्बे पिया-वियोग से 'कालापानी' बन जाता है, इसमें शक
की गुंजाइश नहीं है।' ओः वह कराह उठी। मैं यहीं पतिगृह में कैदी
भली। सीता को राम के साथ बनवास अतीव सुखद हो गया था।
मैं इनकी 'छात्रा' यहाँ ही कठोर, सख्ती के आदेशों का पालन करती
रहूँगी.....!

बात क्या थी ? छोटी सी थी। पर छोटी सी माचिस के सुलगते ही सारा मकान जल उठा हो जैसे। सिनेमा जाना था मैटिनी। उसकी छोटी भाभी ने अपने प्रथम पुत्र के प्रसव पर माथे का एक टीका दिया था उसे। साड़ी तो कान्ति ने पति की बताई पहनी, पर टीका उस ने अपनी इच्छा से सजा लिया माथे पर। शीशे में अपने गोरे मुखड़े पर चिलचिलाते टीके को देख कर वह झूम उठी थी। अपने रूप पर मुग्ध होकर अपनी सुधि तक बिसार बैठी थी। कि पीछे से उन्होंने चुपके से आकर कहा, "यह टीका पहनने की जरूरत नहीं है।"

"जरूरत क्यों नहीं है ? औरतों का शृंगार है। सिगरेट पुरुषों का शृंगार है।" कान्ति ने आज बहुत दिनों के बाद पति से चुहल-भरी चुटकी ली।

"बहस न करो। इसे उतारो और रखो। चलो। देर होती है।" माथुर ने उसी स्वर में चुपके से कहा पीठ पीछे से।

कान्ति ने अब भी पीठ इधर न घुमाई। शीशे में से उनकी छवि दीख रही है, पर उन्हें शीशे में भी न देखा। नजरें नीची ही रहीं। बोली, "देर हुआ करे। टीका मैं पहनूँगी।"

"नहीं, तुम नहीं पहनोगी।"

"क्यों नहीं पहनूँगी ? आपने तो एक जेवर भी बनवाकर नहीं दिया पिछले चार सालों में। जो मेरे घर का है, मेरी भाभी का दिया है, उससे भी क्यों चिढ़ है आपको।"——कह कर कान्ति की इच्छा हुई, इनके गले में झूल जाये। आज उसे प्रेम उमड़ा पड़ रहा है।

"मुझे तुम्हारे पीहर के और तुम्हारी भाभी के दिये जेवरों से चिढ़ नहीं है। असली बात यह है कि जेवर से तुम्हारा रूप मटियाला हो जाता है"——और वे कुछ मुस्कराये थे।

कान्ति भी मुस्कराई थी। बोली, "अच्छा, मटियाला होने दो। इससे आपको क्या ?"

"क्या ? क्यों, कैसे नहीं ? तुम अपना शृंगार मुझे खुश करने के लिये पहनती हो या दुनिया को दिखाने के लिये ?" और माथुर ने तरेर कर शीशे में कान्ति को देखा था ।

कान्ति इनके स्वभाव को जानती है । इनके गुस्से से पूरित रूखे स्वभाव को इतना पी चुकी है कि जैसे किसी खारे कुंए का पानी ही बराबर पीने को मिलता रहा है । शीशे में से स्वयं स्निग्ध बनी रही । अपनी गहन स्निग्धता से ही वह इनके संग जीवन की साधना संभव कर पाई है । बोली, "आप क्यों बहस किया करते हैं इस तरह की । चलिये बाहर । सिनेमा को देर हो रही है ।"—और कान्ति ने अपने माथे के टीके पर साड़ी का पल्ला इस तरह आगे सरकाया कि वह अपूर्व मनः हारिणी बन गई । माथुर ने उसे कई निमेष अपलक देखा ।

बोला, "मुझे सिनेमा नहीं जाना । तुम चाहो तो यह टीका पहनकर अकेले सिनेमा जा सकती हो ।"

"मेरी खुशी से आपको खुशी नहीं हो सकती ? मैं आपकी खुशी के लिये तो अपना शरीर दिन-रात होमा करती हूँ ।" और कान्ति का गला भर आया था ।

"खुशी का सवाल क्या है । शादी के वक्त तो तुम घाघरा पहने आयी थी । वही थी न तुम्हारी खुशी ? और इन साड़ियों को धारण करने में तुमने कितना क्लेश नहीं किया था मुझसे ? लेकिन आज से ये साड़ियाँ ही तुम्हारी खुशी हो गई हैं ! मैं चाहूँगा तो भी तुम वापस घाघरा पहनना पसंद न करोगी ।" माथुर की आवाज में सान पर धरी ताजा धार की तराश आ गई थी ।

तुनक कर कान्ति ने टीका माथे से खींच कर उधर जूतों में फेंक दिया । रेशमी साड़ी उतार कर फेंकी और पेटीकोट पहने ही खिड़की से बाहर देखने लगी । अभी तक उसने पीठ घुमाकर माथुर को सीधी आँखों

न देखा था। क्या देखे, जब आँखों की हया परस्पर में अपना चुंबकत्व खत्म कर चुकी है।

शीशे में कान्ति का मुखड़ा माथुर को अब भी दीख रहा था। उसी निश्चित् स्वर में बोला, "अब देखो शीशा। निहायत रूपवती लग रही हो तुम।"

अब कान्ति पीठ घुमा कर इधर हुई। पति को सीधी नजर देखा और सप्तम स्वर में चीखी, "अपमान न करो मेरा।"

तो वे बोले,, "मास्टर छात्रा को धमकाता है तो उसका अपमान नहीं करता। यह मालूम है तुम्हें?"

"मैं कहती हूँ जो बातें आपको मालूम नहीं हैं, वे क्यों नहीं सीखते आप? पति बने हो, पत्नी को पलकों पर एक भी दिन रखा है?" कान्ति का चेहरा तमतमा रहा था।

माथुर ने और शांत हो कर कहा, "छात्राओं को ऐसी बातें कहना शोभा नहीं देता।"

ऐसे समय कान्ति को हमेशा लगता है कि जैसे ये उसका गला घोंट रहे हैं। अरे, पहलवानी में दाँव का जवाव दांव से दिया जाये तो कुश्ती का मजा आता है। न कि दाँव का जवाब वह पेट में मुक्का मार कर दे। ठीक इसी तरह ये जब भी बातें करेंगे, यथोचित बात का जवाब मेरा गला घोंटने से देंगे। इस हालत में होता है यह, कि वह मन की पूरी बात कह पाती है नहीं। उसका दम अन्दर घुट जाता है और वह तड़फती रह जाती है। आज, आखिर, उसने आँसुओं को छलछला कर कहा, "गलत है यह। न मैं छात्रा हूँ और न आप मास्टर हैं। मैं यहाँ गृह-स्वामिनी बन कर आई हूँ। यहाँ मेरा ही हुक्म चलेगा। आप को मेरा हुक्म मानना ही होगा, अन्यथा.....।"

माथुर ने एकदम क्रुद्ध हेडमास्टर का रूप धारण कर लिया। बोला उससे भी कड़कादार आवाज में, "यह तुम्हारी दूसरी गलती है। ऐसे

सड़े दिमाग से तुम क्या खाक मेरे सिखाये सबक सीखोगी ? यूँ तुम कभी परीक्षा में पास नहीं हो सकती। नामुमकिन।"

ओ: तिलमिलाकर वह रह गई। पति के कठिन और सख्त आलिगन की बातें उसनें खूब सुनी हैं। ऐसे आलिगन, जिनमें पत्नी की हड्डियाँ कड़क जायें और जान गले में आकर अटक जाये ! पर पति के दिमागी सीखचों में बन्द रहना कब तक संभव हो सकेगा ? वह जवाब देना चाहती थी, 'आप को मालूम क्या है परीक्षा लेना पत्नी की ? महसूस कर लो तो चैन मिले आप को भी और मुझे भी; आप एक असफल पति हैं।"

अव माथुर ने अपनी बैठक से कहा, "देखो, मैं चाय नहीं पीयूँगा।"

सशंक कान्ति तड़प उठी एकदम। क्या ये मुझे मेरे पीहर पहुँचाने का प्रबंध करने जा रहे हैं ? पर उसे लगा कि जैसे वे उसे इस बहाने वहाँ बैठक में बुला रहे हैं। अवश्य वह चाय की बात सुन कर और रो उठी। ये घायल भी करते जा रहे हैं और अपने अस्त्र को भी मुझ घायल को सौंपते जाते हैं। मुझे पीहर जाने की छुट्टी भी दे रहे हैं और अपनी चाय भी छोड़ रहे हैं, जिस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये मैं अनिवार्य रूप से यहाँ रहती हूँ और जिस चाय के बिना ये दो दिन में ही ज्वर से पीड़ित हो जाते हैं और अपना दिमाग खो बैठते हैं।

तुरन्त सब आँसुओं को शीघ्र-शीघ्र ढुलका कर उसनें अपना मुंह धोया और बैठक के द्वार पर वैसे ही पेटीकोट पहनें जा खड़ी हुई। अब शाम के छ: बज चुके हैं। इस व्यर्थके क्लेशमें दो घंटे बीत गये। रोजाना तो साढ़े पाँच तक चाय पी चुके होते हैं। सो बेचैन हैं। चाय की एक मिनटकी देरी इन्हें प्राण-विसर्जन सी लगती है। 'चाय नहीं पीयूँगा', कह तो चुके हैं, लेकिन बिना चायके माथेमें त्यौरियां इकट्ठी हो चली हैं। हाथमें सिगरेटें हैं। रह-रह कर चिंतन कर रहे हैं कि पीयें कि नहीं।

कान्ति ने अपने दीन, आहत, आर्त स्वर को खांस कर झटक दिया। बोली, "तो, अब स्कूल की वैसे छुट्टी तो हो ही चुकी है। इसीलिए स्कूल का रेस्तराँ भी क्या बन्द हो जायेगा? लेकिन एक रेस्तराँ के बंद होने से लोग चाय पीना तो बन्द नहीं किया करते।"

माथुर निश्चिन्त बैठा रहा। सिगरेट से हाथ उठा लिया कि नहीं ही पीयेगा। यह सुना, तो उसने आश्चर्यसे मुड़कर एक विस्मयकी निगाह से कान्ति को देखा। जान लिया कि रोकर आई है। अँधेरे में वह इतना ही जान सका। उसे कान्ति पर तरस आया कि रो-रुआ कर आत्म-हत्या कर आई है और पुनः पति के संग जीवित रहना चाहती है। व्यंग भी करती है तो तीव्र कटुतम भावना के साथ....।

कि दोनों का ध्यान उसी क्षण खिड़की से बाहर की ओर बँट गया। वह खिड़की की राह बाहर देखने लगा, खूब धूमधाम के साथ बाजों-गाजों की धूम और गूँज गुंजाई जा रही है और पीछे-पीछे शायद लड़की वाले लड़के वाले को न्योतने जा रहे हैं कि अपने लाड़ले बेटे को भेजो सेहरा बाँध कर 'म्हारी लाड़ली नें ब्याहने'। माथुर ने सोचा, 'हम दीन हैं, दरिद्र हैं। परन्तु अपने समाज के निर्जीव रक्त को स्पन्दन पहुँचाते हैं तो तूती-नफीरी की उत्तेजना के साथ! हमारे आज के विवाहों की धूमधाम समाज के निर्जीव रक्त का क्षणिक स्पन्दन भर ही तो है। अन्यथा हमारा समाज प्रतिक्षण प्रतिपल मूक रोदन करता रहता है और अपनी क्षयी नपुंसकता पर ठंडी सिसकियाँ भरता रहता है।'

कान्ति ने भी बाजे देखे। उन बाजों के पीछे देखा, रेशमी रूमालों से ढके हुए अनेकों चांदी के थाल कुछ नौकरों की हथेलियों पर सँवरे हुए विराजमान, लड़कीवाले के यहाँ से लड़केवाले के यहाँ कितनी शीघ्र चाल से चले जा रहे हैं। एक दिन मेरे घर से भी इसी प्रकार चाँदी के थाल सज कर इनके यहाँ निमंत्रण देने आये थे कि आकर कान्ति देवी

को अपने घर ले जाओ। वह आपके अधिकार में वहीं आजीवन (अपनी मौत तक ?) रहेगी !

बाजे बहुत दूर निकल गये। उन बाजों की प्रतिध्वनियाँ माथुर की बैठक के एकाँत में गूंज रही थीं और उसी ताजा झंकृति के साथ माथुर और कान्ति के मन में अनेक विगत स्मृतियाँ मुखरित होने लगी थीं। कि सहसा ही वे शांत हो गईं। केवल संध्या का भ्रान्तिदायक अंधेरा बैठकमें अपना मकड़ी का सा जाला बुनता रहा। कान्ति चुपके-चुपके पुनः अपने आँसू ढुलकाने लगी।

सहसा ही पड़ोस से एक चीत्कार उठी। कोई रो रही है। अच्छा ! चौधरी जी की नव-विवाहिता पुत्री अपनी ससुराल जा रही है। अब बिदाई के समय अपनी माँ के कंधों-कंधों मिल कर फूट-फूट रो रही है। स्टेशन तक सुबकियाँ भरती जायेगी। अरे, सुबकियाँ भरती हुई क्या जायेगी, पुकार करती हुई जायेगी कि अब मैं माँ से बिदा हो रही हूँ और पिया के घर जा रही हूँ। माथुर ने अब आगे सोचा, 'हम दीन हैं, दरिद्र हैं और कितने संस्कार-पराधीन भी हैं। अपने समाज के निर्जीव रक्त को क्षणिक स्पन्दन पहुँचा कर, बस कर, रह जाते हैं और सदैव रो-रोकर उस समाज को ही नहीं, उसका मांस-स्वेद भी जलाते रहते हैं, सुखाते रहते हैं।' माथुर को याद आया कि बिदा के समय कान्ति भी इसी तरह रोई थी और आज भी यह रोई है। रोई है....क्यों कि अपने अपराधी समाज के पापों का प्रायश्चित यह अपने आँसुओं से करना चाहती है।

वह अक्सर देखता है कि ईसाई और अँग्रेज दम्पत्ति चर्च में पाणिग्रहण करते ही कैसे खुश-खुश बाहर निकलते हैं। और सुहागरात मनाने के लिये सुन्दर प्राकृतिक स्थान की दिशा में उसी समय आगे बढ़ जाते हैं।

माथुर ने सोचा, 'जानें' रोकर घोषणा करने की रीति का अवसान भारत में कब होगा और हम अपने दुख-दैन्य या हर्ष का सामना या उसकी घोषणा छाती फुला कर कब किया करेंगे ? यह कान्ति अपने वर्त-

मान दाम्पत्य में आज भी मेरी साधारण आर्थिक अवस्था से आश्वस्त नहीं हुई है और निरन्तर उस दयनीयता को अपने जेवरों की पिपासा से चुनौती दिया करती है।

माथुर अपनी इस मौन आत्म-घोषणा से स्वस्थ हुआ। उसकी आँखों की अन्तर्दग्ध ज्योति पिछले तीन घंटे के क्लेश से धुंध होती जा रही थी, सो बलात् स्निग्ध हो आई। हृदय उसका हर्ष से भर गया। माचिस सुलगा कर कमरे में भरे हुए घने अंधकार को उसने धक्का देकर एक ओर किया और देखा, कान्ति की आँखें सूज आई हैं और वह लगातार रो रही है हौले-हौले। खड़े हो, उसे संभाल कर मूढ़े पर बैठाया। स्विच 'आन' कर बैठक में तीव्र प्रकाश कर दिया। बोला, "इधर देखो।"

कान्ति मूर्छित-सी भ्रांति में डूब रही थी। पति की संगति से उसके ज्ञान-तंतु जरा झंकृत हुए। बड़ी कठिनाई से उसने देखा, खिड़की से दीख रहा है, अब थियेटरों के इश्तिहार वाले गैस-रोशनी के साथ नगारों को बजा रहे हैं कि इस थियेटर में लैला-मजनूँ होगा और इसमें शीरीं-फरहाद। माथुर ने कान्ति की दृष्टि के समानान्तर ही देखते हुए कहा, "वैसे तो इन इश्तिहारों को देखने से पता चलता है कि लैला-मजनूँ और शीरीं-फरहाद का प्रेम ही इस दुनिया में जो रचा जा चुका सो रचा जा चुका। दरअसल में ये इश्तिहार यह बोल रहे हैं कि अपने प्रेम के दौरान में कौन अधिक रोया, फरहाद, मजनूँ या लैला या शीरीं, यह आकर आप थियेटर के हाल में देखें।"

कान्ति ने उमड़ कर कहा, "हाँ, आप जायें और देख आयें कि लैला और शीरीं मुझसे भी ज्यादा रोती हैं या नहीं।"

माथुर ने कठोर होकर कहा, "कान्ति, तुम गलत बात कह रही हो। तुमसे एक ही बात की आशा मैं करता हूँ कि तुम व्यर्थ की स्त्री नहीं हो और कम से कम एक 'भविष्यवाणी' हो।"

कान्ति ने उफन कर कहा, "लेकिन आप....।"

माथुर ने उसे रोक दिया, "कान्ति, भविष्यवाणियाँ 'लेकिन' के रोने नहीं रोया करती ! भविष्यवाणियाँ जीवन की प्रभात रागिनियाँ हैं।"

कान्ति ने खौलते हुए पानी की तरह कहा, "आप....।"

माथुर ने खड़े होकर उसे रोका। आंसू उसके अब भी वह रहे हैं। अपने रुमाल से वे पोंछें। उसे उठाया और शयनकक्ष में ले चला। वहां उसे पलंग पर लिटा दिया। हल्की सी चादर ऊपर उढ़ा दी। स्वयं सिरहाने बैठ गया। उसकी आँखें फिर भीग आई। वे सोखीं दुबारा। हल्के-हल्के उसका माथा दबाने लगा।

रात्रि बेसबरी की नाई दौड़ी चली आ रही थी। बार-बार कान्ति बोलने को हुई, माथुर उसे रोकता रहा। अब वह उसके माथे पर पेन-बाम लगाने बैठा। कान्ति ने सिर हिला कर खूब मना किया कि उसके सिर में दर्द नहीं है, पर वह लगाने लगा। उसकी आँखें थोड़ी सी जो भीग चलीं थीं, सो सोख डालीं।

दीवार की घड़ी घंटे बजाने लगी। माथुर ने जोर-जोर से गिने, "नौ।"

कान्ति जबरदस्ती लेटी न रही। हाथ झटका देकर हटा दिया और उठ बैठी। माथुर ने देखा, इस क्षण वह अतीव सुन्दरी लग रही है। बाहर का स्ट्रीट-लैम्प कमरे में मनपसंदगी का प्रकाश दे रहा है। वह पलंग से उतरी और रसोई में चली गई। यही बीस मिनट बाद लौटी। तो उसके हाथ में चाय की 'ट्रे' थी। माथुर ने खुशी की टंकार करते हुए कहा, "क्या रेस्तराँ बन्द नहीं हुआ है ?"

कान्ति कठिन होकर नहीं मुस्कराई। उसने दो कप चाय बनाये। कुछ नाश्ता साथ लाई थी। उसे पति की ओर बढ़ा दिया। माथुर ने लपक कर उधर से टीका उठाया और मना करते-करते भी कान्ति के माथे पर झुमा दिया। कुछ बिस्कुट अपने मुंह में डालते हुए माथुर ने तसल्ली

से कहा, "सभी छात्रायें इम्तहान से कितनी भयभीत रहती हैं ? और इम्तहानों के पहले जो छुट्टियाँ होती हैं वे उन्हें जैसे खाने दौड़ती हैं ।" कहकर कान्ति को सीधे देखा । पूछा, "भला पीहर जाते हुए तुम क्यों भयभीत हो जाती हो ? पीहर का एकान्त पत्नियों की कड़ी परीक्षा लेता है, इसलिये ?"

कान्ति चाय की चुस्कियाँ नहीं लेती । वह उसे एकदम पीती है । कहती है, जहाँ जिस ने चाय की चुस्कियाँ लेकर चाय पीना शुरू किया कि वह जीवन की गंभीरता नाम की कटखनी साँपनी की दुम पकड़ने में कभी कामयाब नहीं हो सकता । पलँग पर चढ़ कर बैठी और चाय का कप एकदम सुटक कर उत्तर देने लगी, "यह गलत बात है कि मैं छात्रा हूं और आप मेरे मास्टर हैं । मैं नहीं सुनना चाहती ये सब बेमतलब की बातें । मैं छात्रा नहीं हूँ । और हमारा यह छोटा-सा बँगला स्कूल नहीं है । इस बँगले में मैं और आप किसी स्वर्ण-नक्षत्र के स्वर्णिम जीव हैं और अपना स्वर्ण यहाँ पृथ्वी पर पुष्प-वर्षा की तरह बिखरने आये हैं ।"

माथुर चाय पी रहा था । उसकी चाय का स्वाद एकदम बदल गया । उसे लगा, वह सोमरस पी रहा है........कि पड़ोस की मुन्नी ने द्वार खटखटाया और आर्त पुकार करती हुई बोली, "भाभी ।"

द्वार खुलते ही वह अपनी भाभी की गोदी में जा छिपी । उसका गुलाब-सा मुखड़ा सफेद हो रहा है । वह अपने विषाद की घोषणा नहीं कर पा रही है । जैसे-तैसे उस चार वर्षीया बालिका ने बताया, "पिताजी अम्मी को पीट रहे हैं ।"

सुनते ही कान्ति उठ बैठी । बड़बड़ाई, "जाने कौन-सी तिथि को ये पति अपनी पत्नी की पिटाई को त्याज्य और हेय मानेंगे । इसकी अक्ल उन्हें कब आयेगी कि पत्नी को पीटना अपने नपुंसक पतीत्व को ही पीटना है, सो इसे छोड़ देंगे ।" और पलँग से उतर कर उसने जल्दी से साड़ी समेटी । और चप्पलें पहन कर वह माथुर को देखने लगी ।

मुन्नीको माथुर ने अपनी गोद में दबोच लिया। उसने स्पष्ट देखा कि कान्ति मुन्नी के घर जाने से पहले उत्तर की अपेक्षा रख रही है। तो वह मुन्नी के दुलार से आन्दोलित होकर बोला "देखो, फिर तुम गलत तरीके से सोच रही हो। तुम्हारा प्रश्न जहाँ तक मैं समझता हूँ यह है कि कौन सी तिथि को पति अपनी पत्नियों के प्रेम की खरीदारी साम-दाम-दंड-भेद से करना बन्द कर देंगे ?"

कान्ति पति के इस सोल्लास उत्तर से उत्साहित हो गई। लपक कर मुन्नी के घर पहुँची। पड़ोस की बहू को देखते ही मुन्नी के पिताजी अपनी निर्दयता से विचलित हो गये। क्रूरतापूर्वक एक तीन हाथ लंबे डंडे से उस १८ वर्षीया पत्नी को पीट रहे थे। वह गुम-सुम बैठी आह तक नहीं ले रही है। वे उधर हट गये मजबूरी से, तो कान्ति ने सखि को उठाया। उधर के कमरे में पलँग पर जा लिटाया। ऊपर से कम्बल लपेट कर सखी का अंग-अंग वह दबाने बैठी। सखी ने अब आत्मीयता से आश्वस्त होकर आँखें खोलीं। उसके सलोने गौर वर्ण पर अभी मलीनता नहीं छा पाई है। बवंडर-उपरांत की शांति है। सखि ने लज्जा से अपना मुखड़ा उसकी वक्ष में छिपा लिया।

यूँ ही कुछ देर बीती। मुन्नी के पिता जी भारी-भरकम पदचाप के साथ बाहर आँगन में चहलकदमी कर रहे हैं। उन्हें कान्ति का इस तरह अनाधिकार दखल देना ठीक नहीं लगा। वे आज इस निर्बुद्धि पत्नी को जरा जम कर पीट लेना चाहते थे। कई महीनों से हाथ में पिटाई करने की खुजली चल रही थी। अभी तो यही दस डंडे मारे थे ! कम से कम पत्नी की पिटाई करे, पाँच सौ एक डंडे तो मारे कि मानिनी को पता चले, हाँ, पति के हाथों पिटाई हुई......

सखि को इस क्षण सहानुभूति ही अनिवार्य थी। दे चुकी तो पूछा, "कैसी हो ?"

सखि धीरे से मुस्कराई। उल्टे पूछने लगी, "कभी आपकी भी मरम्मत की है हमारे जीजाजी ने? सो भी डंडों से?"

कान्ति को जरा जोर से हँसना पड़ा। पूछा, कि बात क्या थी?

सखी ने बतलाया, "ये मुझे बाटिका-जैसी समझते हैं। आज इसलिये मुझ से क्रुद्ध हो रहे थे कि मुझमें पतझड़ क्यों नहीं आया एक लम्बे समय से, सो खुद ही जबरदस्ती अंग-अंग तोड़ रहे थे ताकि पतझड़ के बाद मुझमें नई वसंत आ सके।"

कान्तिके साथ वह भी जोरों खिलखिला पड़ी। अब उठ कर देखा कि डंडे की मार कहीं हड्डियों के लिये सुजाऊ तो नहीं हो जायेगी। सखि बोली कि पति के डंडे की मार हड्डियों पर चोट नहीं करती। वह तो दिल के खून को ही मथती है खून का मक्खन निकालने के लिये!!

उत्तर से विह्वल होकर कान्ति ने सखि को उठाया और उसे बढ़िया साड़ी पहनाई। कंघा कर उसके माथे पर अपना टीका सजाया। उसके चेहरे पर पाउडर की फुरेरी घुमाई और उधर की खिड़की खोल कर, जहाँ बरांडा था और पति महोदय चहलकदमी कर रहे थे हाथ में डंडा लिये, सामने कुर्सी रखी और सखि को बेठा दिया ताकि वह अपने पति को रति के स्वरूप-शीलवाले परिधान में संवरी हुई दिखाई दे। कमरे के बाहर आकर उसने दरवाजा बन्द किया। ताला लगा कर उसकी चाभी अपनी मुट्ठी में दबाई और बाहर आ गई। आने से पहले कमरे की विद्युत-रोशनी सखि के मुखड़े पर फोकस कर आई।

बाहर आकर देखा, मुन्नी के पिताजी चहलकदमी रोक चुके हैं। ठिठके-से खुली खिड़की के आगे खड़े हुए अपनी पत्नीका रति-स्वरूप निहार रहे हैं। लज्जा में गड़ी हुई वह नीची नजरें किये बैठी है। उन्होंने स्पष्ट देख लिया है कि कमरे के बाहर ताला बन्द कर दिया है पड़ोस की बहू ने। वे कान्ति को घूर-घूर कर देखने लगे......

कान्ति सड़क पर आ गई। इधर सड़क के नीचे वट-वृक्षके पास

टेलीग्राफ-पोस्ट है। इस क्षण एक युवक और एक युवति वहाँ फैले हुए अँधियारे में खड़े हैं। कान्ति ने खंखारा तो वे अँधेरे में अदृष्ट हो गये। कान्ति टेलीग्राफ-पोस्टके निकट आकर रुक गई। रात्रि की

बाहर आकर देखा कान्ति ने, मुन्नी के पिताजी चहलकदमी रोक चुके हैं। ठिठके से खुली खिड़की के आगे अपनी पत्नी का रति स्वरूप निहार रहे हैं कि पड़ोस की बहू ने कमरे के बाहर ताला बन्द कर दिया है......

निस्तब्धता में टेलीग्राफ-पोस्ट से चिर-परिचित मधुर झंकृति निःसृत हो रही है और इस क्षण जन-कोलाहल से दूर लंबी अलाप सी लग रही है।

विवाह से पूर्व कान्ति इसी पोस्ट के पास रात के नौ बजे बाद आकर माथुर से मिला करती थी। कान्ति नहीं जानती कि उसने कौन-सी घोषणायें स्वीकार कर माथुर से विवाह किया था। पर उस समय वे उसे छात्रा नहीं मानते थे। उस समय तो उन्हें उसके चुम्बन लेनेमें ही अधिक विश्वास था। ऐसे चुम्बन, जो तीनों लोकों को शेषनाग-वत् अपने मस्तक पर उठाये हुए हैं......

लेकिन आज, वे माथुर पति-रूप में उसकी पहुँच से बाहर हो गये हैं। उसकी सखि मुन्नी के पिताजी की पहुँच से बाहर है। मुन्नी के पिताजी अपनी पत्नी की पहुँच से बाहर हैं। यह कैसी पौध हमारे समाज में उग आई है ?

टेलीग्राफ-पोस्ट से निःसृत होती हुई ध्वनि वह सुनती रही। यहाँ से वहाँ तक टेलीग्राफ-पोस्टों की लंबी पंक्ति गड़ी हुई है। और इनके तारों से जाने कौन-कौनसे संवाद प्रवाहित होते रहते हैं प्रति क्षण। लेकिन सिवाय इस झंकृति के और क्या-कुछ समझ में आता है ?

कान्ति ने अपना दिल टटोला। पति के साथ इतना क्लेश होने के बावजूद वह शांत है। आखिर क्यूँ ?

उसे लगा—वह, उसकी सखि, मुन्नी के पिताजी, माथुर—हम-सभी इस सृष्टि में टेलीग्राफ-पोस्ट (तार के खंबे) भर हैं। और जाने सृष्टि का कौन सा अविरल संवाद हम सबमें प्रवाहित होता रहता है। किन्तु हम सब कहाँ एक-दूसरे की बात समझ पाते हैं ? 'वे' मेरी बात नहीं समझेंगे। मैं उन की 'छात्रा वाली थ्योरी समझने' से इंकार करती हूँ। मुन्नी के पिता जी अपनी पत्नी के हृदय की बात समझने से इंकार करते हैं। मुन्नी की माता जी अपने पति की बात हृदयंगम् करने से इंकार करती है। लेकिन ये सृष्टि के संवाद ही तो हैं जो हम आपस में समझ नहीं पाते।

केवल इस झंकृति-सा स्वर हम सुन भर लेते हैं और जैसे इसे बिना अर्थ की, व्यर्थ ध्वनि मानते हैं, उसी तरह दूसरे के हृदय की जो बात हमें नहीं सुहाती, उसे व्यर्थ की बकवास मानते रहते हैं।

कान्ति हल्के-से बड़बड़ाई, "मैं उनको यह गुप्त मंत्र जरूर बताऊँगी।" और वह माथुर के अंक में छिप जाने के लिये दौड़ पड़ी।

[४]

विश्व के साहित्य में नारी की एक परिभाषा आज तक विश्व-साहित्यकारों ने जान-बूझ कर नहीं की। उसका कारण यह है कि वे नारी को क्षितिज पर चिलक रही दूरस्थ-जलकी मरीचिका के रूप में देखन का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। यदि वे उसे हहराकर आई हुई आँधी के आलिंगन में बद्ध गर्दो-गुब्बार और झाड़-झंकार के रूप में देख सके होते और महसूस करते कि जब तक आँधी किसी मकान का छप्पर नहीं उड़ा ले जाती, उसे शान्ति नहीं होती, तो वे महसूस करते कि आँधी की बुभुक्षा विस्तृत मैदानों में उछृंखल दौड़ लगाने की नहीं है। न यह आँधी बकवास करने आती है। यह आँधी तो महज उस मादा मत्सय की तरह पागल सी घूम रही है जो किसी हनुमानजी के पसीनें की एक बूँद भर की भूखी है। यूँहीं-यूँहीं यह नारी मन और हृदय-मानस और अंग-अंग में जब बवंडर का प्रवेग भर कर चतुर्दिक व्यवधान के रिक्त आकाश में रेत के बादल उड़ाये सरपट दौड़ने की युगों से छिपाये हबिश की पूर्ति चाहती है, उस समय वह क्या सर्वनाश चाहती है? नहीं, उस समय वह अपने ही माथे की पसीने की बूँदें किसी पुरुष को स्वाँति-बूँद की नाई पिलाने के लिए इतनी उतावली हो उठती है कि अपनी अंधी व्यग्रता में टपकती हुई उन बूँदों को वह स्वयं ही चूसने का स्वाद लेने में व्यस्त हो जाती है। नारी का यही शाश्वत रूप है। जिस गृहस्थी में नारी अपने इसी शाश्वत रूप को लिये

जीवित है, तो वह गृहस्थी अकाल मृत्यु में भी एक अमर रागिनी का वरदान पास-पड़ोस में किसी नये वट-वृक्ष सा रोप कर ही अपना अवसान करती है।

टेलीग्राफ-पोस्ट की लंबी पंक्ति के बीच एक मधुर झंकृति निःसृत होती रहती है, लेकिन उन टेलीग्राफ के तारों से कौन सा संवाद प्रवाहित हो रहा है, यह हम उस झंकृति से कहाँ ग्रहण कर पाते हैं ? ऐसी अवस्था में हम क्रोध कर उन टेलीग्राफ के पोस्टों को उखाड़ने बैठ जायें कि यह झंकृति का आलाप व्यर्थ है, तो क्या हम उस झंकृति को विनष्ठ करने का सौभाग्य अर्जित करते हुए अपने लिये एक अभाग्य का निमंत्रण नहीं दे रहे हैं ? यह टेलीग्राफ समस्त मानवता के लिये कितना लाभ लेकर आया है, यह कौन कैसे समझाये ?

सक्सेना बाबू की ताईका यही अभाग्य दुमकटी छिपकली सा किस तरह तिलमिला रहा है, यह दिखाने की अनुमति आप से लेता हूँ :

गत वर्ष की बात है। सक्सेना बाबू की ८०) रु० तन्खाह में ५) रु० की वृद्धि हुई थी। उसकी ताई समझती थी कि उसने इस वृद्धि की मनौती की थी और एक सत्यनारायण की कथा बोली थी। लेकिन इन ५) रुपयों की वृद्धि का अर्थ सक्सेना की गृहस्थी में धुँवे से काली-चिट्टी दीवार पर फेरी गई कली की कूँची से जैसा अन्तर भी नहीं ला पाया। घर पर यही पौने दो सौ रुपयों का ऋण था। इधर पाँच रुपयों की वेतन में वृद्धि हुई। उधर सक्सेना को सिगरेट का चस्का लगा। सिगरेटें क्योंकि ऊँची दुकान पर चढ़ कर खाने की चीज हैं, इसलिये बीड़ियों से ही अपने मन का नया असंतोष पीने लगा। और ये नये पाँच रुपये इन महामयी बीड़ी अधीश्वरी के शीश पर पुष्प-भेंट से चढ़ने लगे। लेकिन ताई जी ने सत्यनारायण की कथा जो बोल रखी थी, सो भगवान

से की हुई शर्त्त निभानी थी। यह वेतन-वृद्धि तो सामयिक कारण भर था, ताई जी ने यही आठ वर्ष पहले निश्चय किया था कि वह भी सत्यनारायण की कथा करायेंगी। लेकिन इस डर से कि उसका निश्चय पूरा न हो, उसने मानता नहीं की थी। इस बार वह पुरानी एहसान-बकाई भी बेबाक कर देनी थी।

सक्सेना के ताऊ जी ने सत्यनारायण की कथा बँचवाने का विरोध किया था। उनका कहना था कि अभी कथा के आयोजन में बिना ऋण लिये काम चलेगा नहीं। पहले हम पुराना ऋण चुका दें, तो नया बही-खाता खुलवायें। ताई की जिद्द रही कि नहीं, भगवान के लिये क्या ऋण, उसके लिये तो मन में लाई गई भावनाएँ ईमानदारी से निभाने की बात ही असली है। कई दिन तक ताई जी और ताऊ जी में बहस चलती रही। और यह बहस क्षणिक भूकम्प-सी पति-पत्नी के ऊपर की छत में दरारें डाल गई, जिसमें होकर तिरस्कार की वर्षा दोनों के बीच में बरसने लगी।

ताई जी ने ताऊ जी को आखिर भ्रष्टबुद्धि और नास्तिक करार दे दिया। ताऊ जी अपने ही घर में इस तरह की बात सुनें? वे अपने आफिस में हैड-क्लर्क थे। सारा आफिस उनसे थर्राता था। उन्होंने कड़क कर ताई जी को सूअरनी की औलाद कहा और कहा कि अपने पीहर में जाकर यह सब अनुष्ठान कराओ। मैं लिख देता हूँ, तुम्हारे भैया आकर तुम्हें लिवा ले जायेंगे।

ताईजी इस समय ३५ वर्षीया आयु की बैल-गाड़ी के बैलों को अरई लगाती हुई आगे बढ़ रही हैं। शादी आठ वर्ष की आयु में हुई थी। गौना दस वर्ष की आयु में हुआ। पहला बच्चा ग्यारह साल की अवस्था में पेड़ पर उल्टी गिलहरी-सा नीचे टपका और तत्क्षण मर गया। दूसरा बच्चा पन्द्रह साल में हुआ: इस बार वह जेठ में पड़े हुए ओलों की तरह से जमीन पर पहुँचने से पहले ही पानी-पानी हो गया। तीसरी लड़की हुई। वह हुई उस आयु में जब कि एक लड़की होश संभाल कर चिड़ी

की तरह से किसी चिरौटे के साथ उड़ने में विश्वास करती है। अर्थात् १९ वर्ष की आयु में। और इस बार सावन-भादों के बादलों की तरह बादल ऐसे छाए कि सूरज नहीं निकला कई रोज और गीले कंडों में जैसे कीड़े पड़ गये। वह लड़की सात मास की सूखिया रोग से चल बसी। बाईस वर्ष में एक स्त्री अपने भूत काल की जोड़-बाकी करने की अक्ल पा जाती है। इसलिये ताईजी ने देखा कि गिरिस्ती की आय से तो सन्तान के खाते में सब शून्य है, इसलिये शहर से बीस मील दूर पीरजी के तिबारे पर रेवड़ी बाँटने की, हनुमानजी के चोला चढ़ाने की, साधुओं की धूनि को पेड़ों के साथ खाने की और पुजारियों को अमावस के दिन खीर की कटोरी खिलाने की मनौतियाँ शुरू हुईं। लोग एकमुश्त कमाई करने के लिए सट्टा खेलते हैं। हमारी अपढ़ औरतें अपनी कोखका सट्टा खेलनेमें विश्वास करती हैं! इस बार जो कई संड-मुसंड साधु-महात्माओं के यहाँ पुजापा और सीधा चढ़ाया तो एक पुत्र इस बार गोदीमें ऐसे आया, गोया कि आँगन में शादी का शामियाना तन गया हो, लेकिन कोई बिजली का करंट ऐसा लीक हुआ कि पलक झपकते वह शामियाना जलकर राख हो गया। वह पुत्र एक साल बादही जिगर बढ़नेकी बीमारीमें चल बसा। और बस, ताईजी का दाम्पत्य जैसे किसी रेगिस्तानके टीलोंमें प्यासे ऊँट-सा भागता रहा........

ताऊजी इस क्षण ४८ वर्षीय आयु की पुरानी छत पर खुले आकाश के नीचे रैन-बसेरा किए हुए हैं। छत पर काई जमी हुई है और सीलन से दुर्बल होकर किसी भी दिन नीचे फिच्च सी ध्वनि के साथ वह जा गिरेगी। पैदल चलो तो इसी छत पर अब फिसल कर चारों खाने चित्त गिरने का अंदेशा लगा रहता है। संभल कर रहते हैं और संभल कर बरसात, गरमी, ठिठुरन से कशमकश करते हुए अपनी इस छत पर खड़े रहने की जिद्द थामे हुए हैं। लेकिन आज से ३० वर्ष पहले ताऊ जी एक छैल-छबीले नौज-वान थे। आँखों में सुरमा लगाते, कानों में इत्र की फरेरी टांकते, चमकदार पेटेंट लेदर के फुलस्लीपर पम्प शू पहनते, जबड़ों में मगही पान के बीड़े यों

दबाते गोया कि वे किसी की मीठी याद का सुरूर बनकर मोहिनी-मंत्र बने हुए हों। शिक्षा सिर्फ मैट्रिक तक हुई और शादी जो वार्षिक परीक्षा के पहले हुई तो *आप परीक्षा के स्थान पर अपनी नववधु के समक्ष हृदय* की उफनती भावुकता की परीक्षा देना पहला जरूरी धंधा समझ बैठे। गनीमत हुई कि परीक्षा में थर्ड डिवीजन में पास हो गये। ससुराल वालों की कुछ धौंस जिले के कलक्टर के यहाँ थी, सो चालीस रुपये के डिस्पैच-क्लर्क नियुक्त हो गए। उन चालीस रुपयों पर आपकी हृदयेश्वरी ने अपना इतना अधिकार जताया कि पिताजी रोते-रोते हाँफते रहे, पर आप एक ही शहर में अलग मकान लेकर रहने लगे। दो वर्ष दाम्पत्य के सुख में बीते, मान-मनुहार में कटे, किस्सा तोता-मैना का अध्ययन करने में गुजरे! छोटी सी गोद में बैठाने लायक पत्नी के लिये जेवरों की फरमाइश पूरी करने में कौन सा वर्ष पीठ पीछे गया, ध्यान तक न रहा। अपने पिता की इकलौती पुत्री ताऊ जी की अर्धांगिनी बनकर बिछियों की झूम-झनन पर इतरा कर चलने वाली मानिनी ही अधिक रही, गृहिणी वह न बन सकी। नित्यप्रति नई से नई चीजों की माँग करते रहना ही प्रेम का, और फरमाबरदार प्रेयसी बने रहने के लिए, उसने सफल नुस्खा बना लिया, मान लिया। ताऊजी दो संतानों के निधन के बाद पत्नी की मनपुरसी से अधिक, अपने एकांत में सिर्फ विचारों और स्मृतियों की *जुगाली करने में व्यस्त रहने लगे। पत्नी की सेवकाई से उनको* ग्लानि उत्पन्न हो गई।

पति की उदासीनता ने ताई जी की सक्रियता को एक नई दिशा में मोड़ दिया। गंडे-ताबीज-टोटके और सयानियों की राय से वे अब पति के मान को खंड-खंड करने में अथक परिश्रम करने लगीं। पर परिणाम यह निकला कि रोते रहने के सिवाय उनके पास कुछ चारा शेष न बचा। झींकना भी अधिक सहायता न कर सका। और इस तरह ताऊजी की गिरिस्ती में ताई जी, आँगन का वह नीम का पेड़ बन गई

जिसकी छांह घनी तो न थी, लेकिन साल में कुछ दिन कड़वी-मिट्ठी निबोलयां पका कर आँगन में टपका दिया करता था और वह भी अनावश्यक कूड़े के रूप में।

पति को खुश करने के लिये उन्हीं की राय पर अमल करते हुए आखिर ताई जी ने अपने देवर के छोटे पुत्र को गोद ले लिया और उसकी सेवा में जिंदगी की साध, पुराने अखबारों को पढ़ने के मानिन्द, समय काटने का बहाना बन गई ? चौबीस घंटों में एक-दो बार चुपके से रो लेना ताई जी को अधिक बल देने लगा और वे धर्म-निष्टा के अधिक निकट आश्वस्त रहने लगीं।

ताई जी पति से अधिक गोरी थीं। आज कोई क्या कह दे कि वे अभी अठारह से ज्यादा की हैं ? लेकिन प्रौढ़ावस्था की चादर में शैशव छिप कर भी अपनी कराहट को मुस्कान के रिक्त अभिधान से किस उपाय के बल पर बंचित करे ? वह आज भी अपने पिता की इकलौती पुत्री अधिक थी, अपनी पति की इकलौती पत्नी सर्वाधिक कम !! छरहरे बदन पर मांस की आधी तह ने ताई जी के सौन्दर्य को नगाड़े का घोष प्रदान कर दिया था, लेकिन पति की उदासीनता ने इस सौंदर्य को रुआँसा बना दिया। कानों में ईयरिंग और नाक में धूपछाँही नग की कील के साथ पैरों में दिल्ली-फैशन की बारीक पायजेब कजरौटी के बिछियों पर श्रृंगार कम थी, ताईजी का अभिमान अधिक थीं। पहले तीन रंगों के जोड़े की चूड़ियाँ हाथ की कलाइयों में हर दूसरे महीने नई बदल ली जातीं। लेकिन अब सोने की पहुँची के साथ दो चूड़ियाँ बेमन पिरी रहतीं। जहाँ दिन में बार-बार केश-विन्यास होता, अब महीने में एक बार सिर-धुलाई होती। अब तो किसी पड़ोसिन की बूढ़ी के गोड़ों के पास ताईजी जितना रो लेतीं, वह ही जी को तसल्ली देता, धैर्य बँधाता। जीवन में आशायें कम से कम थीं, लेकिन जीवन से दुर्द्धर्ष युद्ध करने की तमन्ना सर्वोच्च थी !

ताऊजी ने पीहर जब कड़ी मनाही और मर जाने की कसम दिलाने के बावजूद लिख ही दिया तो ताईजी ने सत्यनारायण की कथा के मामले में एक फैसला किया। कथा यहीं की जायगी और उसके बाद ताईजी पीहर इकट्ठी दो सालके लिये चली जायेंगी। उत्तर में, ताऊजीने कहा कि कथा कहीं भी बँचवाओ, उसका खर्च मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। मेरे शरीरमें सड़ा हुआ खून नहीं है कि तुम्हारे धर्म के ठेकेदारों को जोंकों की तरह अपने से चिपटा लूँ ; तुम्हारा क्या है, तुम्हारा शरीर और तुम्हारा दिमाग सड़ चुका है। अच्छा है, खूब चुसवाओ अपना सड़ा हुआ खून और बचा हुआ जो भी ठीक खून बचा है सब चुसवा लो। मैं कहता हूँ, निकलो न इस घर से और जा बसो हरिद्वार में : जहाँ रोज सत्य-नारायण की कथा बँचवाना और बाँचना। भूखे पेट, कर्ज लेकर सत्य-नारायण की कथा बँचवाना सिर्फ तुम्हारे ही शास्त्र में लिखा है। दुनिया की किसी धर्म-पुस्तक में वह नहीं है।

ताईजी ने उस शाम चूल्हा नहीं जलाया। अपने गोद-पुत्र को खूब धिक्कारा कि जिस दिन से तुम इस घर में आये हो, यह घर भूतों का अड्डा बनता जा रहा है। और अपने अभाग्य का दोष ताऊजी के साथ विवाह करना तय किया।

सक्सेना ने कहा, "ताईजी, सत्यनारायण की कथा तुम बँचवा लेना, मेरा जिम्मा रहा। लेकिन जिद्द न किया करो। दो महीने बाद मैं इसका बंदोबस्त किये देता हूँ।"

ताईजी ने जैसे मुँह पर, दहकता चूल्हा उठाकर फेंक दिया हो, अपने बालों को झूरती हुई बोली, "बस, मत बात करो मुझसे। अरे, मेरी कोख का जाया ही मेरा निहोरा करने न रहा, मेरा खसम ही मुझे कच्चा चबाना चाहता है, तू किस बित्ते पर अपनी बालिश्त भर की जबान को गज भर की बढ़ा लेगा ?"

उस रात ताईजी छत पर जाकर बिना-बिस्तर पड़ी रही। ऊपर गरम

हवा चल रही थी। पानी की प्यास से उसका कंठ सूख रहा था। और वह विलाप करती हुई एकधार आँसू बहा रही थी। उसकी आत्मा उस धोबी की तरह से काँप रही थी, जिसने अभी अपने एक जजमान का नया कीमती कपड़ा भूल से भट्टी में चढ़ा कर नष्ट कर दिया है। उसका दिल पिंजरे में कैद चूहे की तरह से थरथरा रहा था, जो बार-बार उस पिंजरे की चुनौती को इंकार करता रहा था। उसका मन उस घिसे हुए टायर की तरह से फट पड़ रहा था, जो इस समय फुल-स्पीड सड़क पर एक लंबी दौड़ दौड़ रहा हो......और उसके आँसू इस दम ताई की बरफ-शिला जैसी काया को आज बूँद-बूँद गला कर ही दम लेंगे......

ताई इस क्षण सोच रही थी, "क्या मैंने इनकी इतनी सेवा इसी दिन के लिये की थी ? रात-रात जाग कर इनकी हर करवट को मैंने अपनी पतिभक्ति से तर रखा है। इनका कितना गुस्सा मैंने हँस-हँस कर पीया है। अपनी इतनी औलादें खोती चली गई, पर मैं न रोई, कि ये हैं तो औलादें क्या देवताओं का सुख हमें दे जायेंगी ? शुरू में चार जेवर बनवा दिये थे, उसके बाद न बनवाये तो मैंने कहना ही छोड़ दिया। सोचती रही कि ये हैं तो मेरे पास लाख जेवर हैं। कभी उमंग का नया कपड़ा नहीं पहना। पीहर से जो भूले-भटके साड़ियाँ आ जाती हैं, मेरी नंगी देह को ढंक रही हैं। नहीं, ये मुझे बस, कमर में एक फटा चिथड़ा लपटवा कर रखते। रसोई में जो भी घी रहा, इनकी रोटियों में चुपड़ दिया, अपने रूखी रोटियाँ बची तो खा लीं, नहीं तो निराहार रह लिये। सब्जी इनके खिलाने के बाद बर्तन के पेंदे में दिखाई न दी तो नमक-मिर्च पानी से मिलाकर चटनी बना ली और रोटी पर रख ली। बालों में शुरू में खुशबू का तेल पिलाया करते थे। पर जैसे वह सिर की प्यास सदा के लिये इन्होंने समझ लिया, बन्द हो गई। फिर कड़वा तेल ही मल लिया करती थी। चार साल हो गया, वह भी जैसे इस दुनिया से ही उठ गया। माथे में अधकपारी रहा करती है, दिन-रात दुखा करता है, सिर में चक्कर आया

करते हैं, लेकिन इनका क्या ? इनका हुक्म तो बजना ही चाहिये, इनके लिये रसोई तो बननी ही चाहिये, इनका पानी नहाने के लिये गरम होना ही चाहिये। सुबह-शाम इनके लिये चाय बननी ही चाहिये। सोते समय इनके लिये आध सेर गरम दूध होना ही चाहिये। इनके लिये हुक्के का पान रात सोते समय भरा रहना ही चाहिये। इनके आफिस के बाबू कभी छुट्टी-बुट्टी के दिन आ जायें तो उनके लिये स्पेशल चीनी मँगाकर स्पेशल चाय बने और पान भी आवें ही। इनके लिये हर हफ्ते धोबी आना ही चाहिये। एक मैं हूँ कि हो गये बीस साल, धोबी की धुली धोती और धोबी का धुला जम्पर पहनना जैसे गुनाह किया हो। पैरों की बिवाई फटती रहती है हर मौसम में, पर फटे गरम मोजों के नीचे एक जोड़ी खड़ाऊँ भला ये क्यों ला देंगे ? पन्द्रह साल होने आये, पीहर जाने का नाम लेती हूँ तो किनारा इनका डूबने लगता है। बोलें किस मुँह से ? अरे, पीहर जाऊँगी तो क्या चार जोड़ी अच्छे कपड़े खरीदने न पड़ जायेंगे ? और आज ये मुझे पीहर भेजेंगे कि वहाँ अपने खर्चे से सत्यनारायण की कथा बँचवा कर आऊँ ? पत्थर पर पत्थर पड़ेगा तो आँच ही निकलेगी न ? इनकी अक्ल पर जो पत्थर गिरेगा तो अक्ल का कचूमर ही तो बनेगा। तभी तो सोचा तक नहीं कि मैं जो सत्यनारायण की कथा बँचवा रही हूँ, वह अपने जाये के लिये नहीं, गोदी लिये हुये जाये की पगार में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है उस मानता को पूरी करने के लिये। इनका क्या है, लाल-पीले हो लिये, दो चार खरी-खोटी बे-लगाम की कतरनी सी जीभ से उल्टी-सुल्टी सुना दी। पर देवताओं से की गई शर्तबंदी मैं आज पूरी न करूँगी तो कल जो तबाही घर पर आयेगी, उस समय मैं क्या मुँह लेकर इन देवताओं के सामने आँचल पसारूँगी ? तबाही तो आ ही रही है इस घर की। दो साल के लिये मैं पीहर चली जाऊँगी। पीछे से इस घर में मेरा भूत नाचेगा। मरना तो है ही। पर मैं भी इनको भूतनी बनकर वह मजा चखाऊँ कि ये याद रखें। समझा

क्या है इन्होंने मुझे; अपने बाप की इकलौती बेटी थी। मेरे नाज-नखरे थे। मेरा अपना गुस्सा था। मेरी अपनी हँसी थी। अरे, मेरा धन तो छीन ही लिया। पीहर से ट्रंक में कुँवारेपने के दो हजार रुपये जोड़-जूट कर लाई थी, वे भी छीन लिये। और फिर छीनने को कुछ न बचा तो मेरा गुस्सा भी छीन लिया, मेरी हँसी भी छीन ली ? अब मेरे पास ये आँसू बच गये है ? उनके बारे में भी इनका तो कहना है कि एक दिन इकट्ठे बैठ कर रो लूं।

ताईजी के चेहरे की विकृति क्रूरतापूर्वक जैसे कोई ऐंठता जा रहा हो। अब वह इतना रो रही हैं कि पास-पड़ोस की औरतें भी सुन्न होकर बैठ गईं हैं। नीचे सक्सेना बैठा रो रहा है। और, अब ताऊजी अपनी रजाई में रोके न पा रहे हैं—दो छलकते आँसू........

अब ताई ने जोर से श्वास फेंकते हुए हिचकियाँ लेते हुए बड़बड़ाना शुरू किया, "हे भगवान, तुमने मुझे किस शैतान की कैद में डाल दिया है ? यह तो राक्षस है, मेरा पति कहाँ है ? यह मेरी पूजा में, मेरे सत्य-निभाव में पिशाच बन कर काँटे बिछाने लगा है, मेरी रक्षा कर इससे। मैं इससे विधवा भली रहती !!" और अब उसने आसमान को टंकारते हुए रोना शुरू कर दिया है। आज वह रोने की तपस्या से ही भगवान को द्रवीभूत कर रहेगी........।

जयचंद की नाई ताईजी ने आज भूतों और भूतनियों की सेना को ताऊजी के घर पर आक्रमण करने के लिय क्यों न्योता दिया है ? क्यों ताईजी स्वयं की मौत के बाद भूतनी बनने की अनुनय भगवान से कर रही हैं ? क्या वह प्रतिशोध में ताऊजी का सर्वनाश चाहती हैं ? नहीं, नहीं, नहीं !

ताऊजी जरा खड़े होकर छत पर चले जायें, जरा भर ताई

को अपने हाथों खड़ा कर, ताई के माथे पर पसीने की जो अमृतधारा बह निकली है उसे अंजुलियों में भर कर चरणामृत की तरह पी लें, बस! ताई इसी समय वही दस वर्षीया वधु बन जायेंगी....यह कितना बड़ा दुराचार है कि ताई अपने स्वेद को और अपनी अँखियन के नीर को स्वयं ही पीने के लिये बाध्य हो। नहीं, ताई के नारीत्व के प्रति ताऊजी को साष्टांग प्रणाम आज नहीं तो कल करना ही होगा, अन्यथा यह गृहस्थी बाहर के थपेड़ों से तो जर्जर हो ही गई है, जो कठिन पलस्तर अन्दर की दीवार पर ताई ने अपने आँसुओं से गाढ़े थाम रखा है, वह भी गिर जायेगा तो वे दीवारें क्यों कर, किस आसरे खड़ी रह सकेंगी ?

[४]

नारी के स्वेद और उसकी अँखियन के नीर की व्यथा भरी कहानी का क्रम इन ताईजी से अलग, उस सिगरेट की तरह भी है जो भूल से किसी ऐंशट्रे में सुलगती हुई रखी रह गई है और जिसका धुँवा एक लीक, एक-वल ऊपर उठ रहा है और जिसकी राखी स्वयमेव बालू की दीवार-सा भ्रम देती हुई गोल बत्ती की बत्ती नीचे झड़ती रहती है। ताईजी के आर्थिक अभाव किसी भी गृहस्थी की बाहरी दीवार को किसी प्राचीन किले की दीवार सा काला स्याह कर सकते हैं। बाहरी आर्थिक अभाव दम्पति के बीच अविश्वासों की काई इस तरह से जमा सकते हैं कि दोनों एक-दूसरे के पास आने में भी हिचकें, और आगे बढ़ें भी तो फिसल कर गिर पड़ें.........उस तरह, कि घुटनों-घिसट कर चलने वाला बालक पानी-लिसे सीमेंट के चिकने पत्थर पर उठने की चेष्टा करता है और फिर उसका गोड़ा ऐसा फिसलता है, कि वह अपने हथेलियों का सहारा भी फिसला बैठता है। दुनिया भर की गृहस्थियों का विवरण देखा-सुना जाये तो मालूम होता है, बाहरी आर्थिक अभाव

दम्पति के लिये सामाजिक क़ैद ही नहीं, उस कैद के अंदरकी कठोर एकान्त-कोठरी तक चिननेकी क्षमता रखते हैं। और इस तरह घर-घर के परिवार अपनी-अपनी बंदी-सी अवस्था में रहते हुए पूरे समाजकी अक्षुण्ण शक्तिको निर्वीर्य तक बनाते रहते है।

किन्तु बाहरी आर्थिक अभाव जहाँ नहीं हैं, वहाॅ भी एक पत्नी के स्वेद और उसकी अॅखियन के नीर की गति जब द्रुत-गति से बह कर एक नया इतिहास लिखती है, उस समय स्पष्ट हो जाता है कि दाम्पत्य का स्रोत तो कहीं और ही है ! वह पति-पत्नी के उस हथेलियों के गुम्फन में है, जो विवाह-मंडप के नीचे, मांगलिक पूजन के समय, पाणिग्रहण संस्कारों को सम्पन्न कराने वाला पंडित अपने आदेश से अपने पीत वस्त्र की ओट में, अपने हाथ से वर का हाथ सुखद क्षणों का स्त्रोत उद्गमित करते हुए वधु की हथेली में थमा देता है। वहीं है वह दाम्पत्य-धर्म का शंख, दाम्पत्य का घड़ियाल, वहीं है दाम्पत्य का मूक संगीत, वहीं है दाम्पत्य का कठिन व्रतधारी शिव, वहीं है दाम्पत्य का मृत्युञ्जय सत्य, वहीं है दाम्पत्य का अक्षय भावी वट-वृक्ष जिसकी छाया में भावी सन्तति आश्रय ले सकेगी; वहीं है दाम्पत्य का जल-पोत जो भवसागर को पार करने की प्रचुर ईंधन-शक्ति से ओत-प्रोत है, वहीं है दाम्पत्य का काम-रति-जनित नैसर्गिक पुष्पोंका खिलखिलाता उद्यान, वही है दाम्पत्यका वह सूक्ष्म छंद जिसके एक कोटि अर्थ हैं। वहीं है दाम्पत्य का कलात्मक भविष्य जिसकी कामनाके स्वागतार्थ विवाह रचे-रचाये जाया करते हैं, वहीं है दाम्पत्य का भौतिक साम्राज्य और वहीं है दाम्पत्यका आत्मिक भोग !! अरे, वहीं है दाम्पत्यका भवितव्य !!!

किन्हीं भी कारणों से यह गुम्फन जब खुल जाता है, अलग दो खंडों-सा बिखर जाता है, या कहें, दाम्पत्य के मस्तिष्क की खोपड़ी की तरह कट कर अलग दो टुकड़ों में जा गिरता है उसी समय

दाम्पत्य का व्योम शून्य दृष्टिगोचर होता है, उसी समय दाम्पत्य एक अभाग्य का दानव बन जाता है, उसी समय गृहस्थी का सीमित व्योम एक गहरी काली निशा से आच्छादित हो जाता है। अरे कहने दीजिये, मत रोकिये मुझे कि उसी समय दाम्पत्य की रति और उसका कामदेव हमारी इसी पृथ्वी पर अपमानित अतिथि की तरह भूलुण्ठित होकर विलाप करने लगते हैं कि हे देव ! इस धूल में करवट लेने को हम कहाँ जन्मे थे.....हम तो वायु-प्रवेग पर आसीन मानस की संगीत-लहरी पर विचरण करने के लिये अवतरित हुए थे। हे देव, भगवान् कैलाशवासी ने अपनी जटाओं में गंगा को धारण किया था। वह अखिल विश्व की कल्याण-भावना बाद में जाकर बनी थी, पहले तो वह उनकी निजी भावना थी। गंगा जैसी विलक्षण स्निग्धता की देवी को प्रलयंकारी मस्तिष्क की शीतलता के लिये सबसे पहली जरूरत शिव जी को थी और उसी स्निग्धता की भूख से वे आश्वस्त होना चाहते थे। ठीक उसी तरह हे देव, पति-पत्नी समाज के लिये पुष्पवत् बाद में जाकर कुसुमित होते हैं, पहले वे स्वयं ही स्वयं के क्षितिज के खिलखिलाते आकाश-कुसुम हैं !

यह प्रणय-ग्रन्थि-रूप गुंफन जरूरी नहीं है कि बाहरी आर्थिक अभाव से बाधित होकर ही खुल पड़ें। इन पंक्तियों के लिखे जाते समय एक करोड़पति का देहान्त हुआ है। वह भरी जवानी में अपनी उसांसों के साथ प्रवंचनाकारी खिलवाड़ कर गया है। इस करोड़-पति के यहाँ आर्थिक अभाव की एक मक्खी तक किसी दिन नहीं भिनभिना पाई। लेकिन जिसकी पत्नी का स्वेद और उसकी अँखियन का नीर भी अपनी उसी धुरी पर घुमड़ता रहा है, बरसता रहा है, जिस पर एक गरीब दरिद्र पत्नी का कड़वा जीवन सड़े हुए दही-सा फफूंदता रहता है।

इस करोड़पति और उसकी विधवा पत्नी का नाम हम सुविधा

के लिय बदल लेते हैं। मान लीजिय कि कैलाश बिहारी और श्रीमती कैलाश बिहारी। लेकिन निम्न करुणा-चित्र पढ़ते समय आप कतई न भूलें कि ये करोड़पति थे।

सेठ कैलाशबिहारी कलकत्ता के करोड़पति थे। जिनकी चार जूट मिलें, कई अंग्रेजी फर्मों में पार्टनर, अनेक कोठियों के मालिक, एक प्रसिद्ध फर्म के अधिपति, सार्वजनिक पुस्तकालय, छात्रों की पाठशाला और विद्यालय तथा दातव्य औषधालय, सार्वजनिक मंदिर आदि प्रवृत्तियों के संचालक होने के कारण सेठ कैलाश बिहारी शेयर बाजार में महाज्योति-ष्कर की भाँति मान्य थे। सुबह से ही उनकी भव्य कोठी में दलालों का आवागमन शुरू हो जाता था। वे इस युवावस्था में भी पूजा-पाठ में विश्वास करते थे। जब कि ३० की रेखा को एक युवक पार कर लेता है, उस समय वह सस्वर सोचने में विश्वास करता है। लेकिन सेठ कैलाश बिहारी दिन भर में शायद गिने-चुने शब्द अपने मुँह से निकालते थे। उनका मुखारविन्द एक आलोक-बिन्दु सदृश्य था। यूरोप और अमरीका के भी प्रसिद्ध एजेंट उनके आफिस के सामने प्रतीक्षा में कुछ देर तो अवश्य ही बैठाये जाते थे। चंदा संचित करने वालों का सिलसिला इस तरह लगा रहता था कि पके आम्र बौर के पेड़ पर मानो जंगली तोतों की भीर उड़ी आ रही हो!

कलकत्ता में कोई भी सांस्कृतिक या राजनीतिक या धार्मिक अनुष्ठान अथवा बृहद् सम्मेलन होनेवाला हो, स्वागत् समिति के अधिष्ठाता आप ही नियुक्त किये जाते थे। प्राय: सभी सार्वजनिक मामलों में आपका मन्तव्य कार्यकर्त्ताओं के लिये पौष्टिक खाद्य की तरह बहुमूल्य था। सिर्फ मेरे दृष्टिकोण से पहले दर्जे की दुखद बात यही थी कि यह नवयुवक सेठ हँसता बहुत कम था। हर व्यक्ति के मामले में चौकसी बरतता था और किसी को अपना विश्वास देना अपने व्यक्तित्व की हीनता मानता था।

लेकिन जैसे तो खुले मैदान में पतंगों के पेंच लड़े जा रहे हों और कटी हुई पतंगों को लूटन के लिय लड़के-बालों की भीड़ जमा हो, उसी तरह आपका विश्वास पाने के लिये आतुर भिन्न वर्गों के लोग आप के इर्द-गिर्द जमा रहते थे। उनकी भीड़ से आपको यही संतोष रहता था कि एक दरबार गद्दी के बाहर लगा है और कलकत्ता के एक करोड़पति के लिये यह भी अनेक शोभनीय बातों में से एक है। मेरा कहना है कि इस विडंबना-दायी शोभनीयता ने ही उनको भरी जवानी में रहस्यमयी ढंग से मार दिया है; उनका स्थान इस दुनिया से रिक्त कर दिया है !

इस समय श्मशान घाट पर सेठ जी का शव चन्दन की चिता पर दहका दिया गया है। घर में सेठजी की तरुणी पत्नी विधवा-रूप में इस तरह रो रही हैं कि बदलियों की लंबी पंक्ति क्रमबार बरस रही हो। सुबह से कितना रो चुकी हैं कि हिया पसीजने लगता है। जितनी ही अधिक मात्रा में दूर-पड़ोस की सखियाँ और प्रौढ़ा महिलायें मातमपुरसी के लिये आती हैं, उतना ही वे फिर नये सिरे से अपने हृदय के उद्वेग को द्रवीभूत कर रोने लगती हैं। अपनी नस-नस को भींचती हुई निचोड़-निचोड़ कर चुआने लगती हैं : रोते-रोते थक चुकी हैं, पर यह तो जीवन-भर का रोना भाग्य में आ गया है। विवाह हुआ था तो सखियों ने कहा था. "लीजिये, भाग्य में अपार सुख विधाता ने दिया है आपको !" आज वह सुख सब किस सुराख से निमेष-भर में रिक्त हो गया है ? अरे, मैं पूछती हूँ, मेरे जीवन की प्रलय आज ही आनी थी ? क्यों नहीं यह प्रलय सारी दुनिया के लिये इकट्ठी आ गई, सभी खत्म हो लेते, रोना तो बाकी न रहता, चैन तो पड़ता.... ।

श्रीमती सेठानी कैलाशबिहारीका घरू नाम राजकुमारी पद्मनी था। पद्मनी जब इस वैभवशाली राजमहल में आई थी तो पूरे एक वर्ष तक उसके स्वागत् में निरंतर स्वागत्-पार्टियाँ आयोजित की जाती रही थीं। उस धूमधाम संगीतमय ऐश्वर्य में आसीन होकर पद्मनी

पृथ्वी से उठी-सी गंधर्व-कन्या के सदृश मात्र विहार किया करती थी और क्रीड़ा ही उसका मुख्य कार्य था, कर्त्तव्य था। दास-दासियों और छोटी-बड़ी सखियों के बीच उमंगवती होकर अपने रूपश्री की स्फटिक-सी स्वच्छता बिखराये रहती थी। ऐसा प्रतीत होता था, पद्मनी रति और काम के गूढ़ रहस्यों को प्रकट करने के लिये अपने मनोहर रूप में यहाँ प्रकट हुई है।

लेकिन दाम्पत्य का डेढ़ वर्ष जीवन पर सीधे राजपथ पर चल भी नहीं पाया था कि सहसा ही, ऐसा एहसास हुआ, वह राजपथ जबरदस्ती किसी नये आशंकाकारी कोण में मोड़ दिया गया है। पर जल्दी ही मालूम हो गया ठीक-ठीक, कि राजपथ तो सीधा चला गया है और पद्मिनी का बलात् अभियान ऊबड़-खाबड़ रास्ते से होने लगा है। सेठ कैलाश-बिहारी पच्चीस वर्ष का वह युवक है, जिसके लिये हर वस्तु की प्राप्ति सुलभ है। क्योंकि वह प्राप्ति पूँजी से सुलभ है और पूँजी इसीलिये सुलभ है, क्योंकि महानगरीका बाजार-नियंत्रण सुलभ है। पच्चीस वर्षकी अवस्थाका युवक सब काम करता है, कर सकता है, एक कार्य नहीं ही कर सकता। तरुणाई के तकाजों की जितनी भी अपेक्षायें हो सकती हैं, उनका कूजन-गुँजन वह बिना सुने नहीं रह सकता। और पच्चीस वर्ष की अवस्था में विवाह सम्पन्न हो चुका है, तो उस युवक को उसकी पत्नी अपने राजप्रासाद के राजकक्ष से कभी भी नीचे उतरने की आज्ञा नहीं दे सकती, क्यों कि यह उसके मान की सीधी अवज्ञा है। राजकुमारी पद्मनी जब सेठानी बन गई और डेढ़ वर्ष बाद ही इस पदवी की स्वर्ण-पालिश हल्की-सी नम हवा के स्पर्श मात्र से उड़ गयी और नीचे से पीतल निकल आया, वह भौंचक्की रह गई। उसका ख्याल था कि मेरे सौंदर्य के तीव्र प्रकाश में वे बिस्तृत दूरी तक सुविधा से आ-जा सकेंगे, लेकिन वास्तव में वह मेरा भ्रम था। उन्होंने अपनी आत्मा का जितना प्रकाश-क्षेत्र मुझे दान में दया-भाव से दे दिया है, वहाँ ही मुझे

जीना होगा, उससे आगे दौड़-भागने की जोखिम यह है कि वहाँ घनघोर अँधियारा है। विवाह के बाद ही पत्नी को अपनी गृहस्थी में थोड़े से प्रकाश के अतिरिक्त घनघोर अँधियारा मिले, समझ लीजिये, वह अँधियारा शनैः-शनैः उस थोड़े से प्रकाश का भी भक्षण शीघ्र ही कर जायगा। प्रकाश कभी अंधियारे को समूचा निगलने की कोशिश नहीं करता। वह उसे चबाना जरूरी समझता है। लेकिन अँधियारा तो प्रकाश को समूचा निगलने में ही विश्वास करता है।

समाज के सभी प्रतिष्ठित घरानों में सेठ कैलाश बिहारी की सद्-गृहस्थी एक आदर्श प्रकाश-स्तम्भ सी मान्य थी। उसकी प्रकाश-लहरी से अन्य परिवारों में स्फूर्णायें ली जाया करती थीं और वृद्धायें कहा करती थीं, बहू तो बाई पद्मनी जैसी !

इसी सद्गृहस्थी के अन्दर पद्मनी दिन बीतनेके साथ महसूस करने लगी कि जिस पीत प्रणय-डोरी का आश्वासन लेकर वह यहाँ आई थी, वह इतनी सुदृढ़ नहीं है कि पूँजी के इस अथाह सागर में डूबने से इसे बचाती रहेगी। यह सद्गृहस्थी भर नहीं है। यहाँ जो पूँजी का उद्धत सागर बुभुक्षी लहरों को भयावह हिलोरों में उफनाता रहता है, उसमें पति के संग हथेलियों की बाँधी गई गुम्फन किसी क्षण भी दुर्बल सिद्ध होगी। उधर कलकत्ते में ही एक दूसरा सेठ अपनी एकमात्र वयस्का कन्या को ऐसी जगह सुरक्षित रखना चाहता है, जहाँ उसकी जिन्दगी-भर की पूरी कमाई की सुरक्षा हो सके। वह अपनी कन्या को नकद पचहत्तर लाख रुपया दहेज में देना चाहता है, जो उसने सच्चाई से कमाया है ! सेठ कैलाश बिहारी इस आधार पर उस वयस्का कन्या का भार लेने के लिये सहमत हो गये हैं कि क्यों कि उनकी पहली पत्नी से एक भी संतान नहीं हुई है। दूसरी से भी संतान न हो तो हानि क्या अधिक रहेगी ? वह पचहत्तर लाख नकद तो है ही, उसके पिता का जमा-जमाया व्यापार और उसमें पाँच करोड़ के शेयर जो लगे हैं, सो भी नकद मुनाफे में रहेंगे।

इससे भी बड़ा दुःख बाई पद्मनी को और खड़ा हो गया था और अपने शयन-कक्ष को बंद कर वह चुपके-चुपके इतना रोई थी कि एक दिन आत्महत्या करने का निश्चय तक उसने कर लिया था।

सेठजी के आफिस में यही कुल मिलाकर पन्द्रह टाइपिस्ट गर्ल है। सब ऐंगलो-क्रिश्चियन हैं। सभी उच्छृंखल श्वेत नील-गाय की तरह से हुमसती रहती है। अपने लुभावने मृदु गात पर अर्द्ध-शोभा पूर्ण-विलास की सज्जा संवार कर आती हैं। न जाने कहाँ तक सच है कि सेठजी की जो पर्सनल स्टैनो है, वह तो इतनी शोख और रूपवती है; इतनी काम-दक्ष है कि उसका कुछ भी हिसाब उंगलियों पर नहीं गिना जा सकता। एक दिन बाई पद्मनी ने घुमा-फिरा कर बात पूछी थी। सेठ कैलाश बिहारी बोले थे, "यों नहीं सोचते हैं। आफिस की बातों का अर्थ दिल में नहीं हुआ करता। वह दिमाग से ताल्लुक रखती है। मिस जैक्सन का ताल्लुक भी मेरे दिमाग से है। मेरे दिमाग में चौदह घंटे की सरदर्दी को मरहम लगाने के लिये एक शीतल पेनबाम की शीशी बगल में रहनी ही चाहिये।"—और उनकी मुस्कराहट के पीछे पति की क्रूरता इस तरह हँसी थी कि वह सहम कर रह गई थी। उसके बाद साहस नहीं हुआ कि इस चर्चा को कुरेद कर देखे कि इस गीली धरती के अंदर कितने केंचुवे किलबिला रहे हैं ?

इसके बाद ही दूसरी दंशनकारी चिंता दिल में घर कर गई। सेठ कैलाश बिहारी ने, यह सच था, नकद एक करोड़ रुपया कहीं बचा रखा था। जब वह वधु बन कर आई थी, उन प्यार के क्षणों में उन्होंने उसे तिजोरी के अन्दर पचास लाख रुपयों के नोटों की गड्डियाँ दिखा कर कहा था, 'ये तुम्हारे ऊपर वारफेर के !' उस दिन वह गर्व से फूल गई थी। उसके बाद उन्होंने ही विश्वास में भर कर बताया था कि अब एक करोड़ हो गया है—अपना निजी नकद रुपया। पर वह कहाँ है, इसे बताने में वे बार-बार एक ही मजाक कर बैठे थे, 'अजी, रानी साहिबा, आपके पास

तो कई करोड़ की पूँजी है । क्यों पगली बनी हो ? करोड़ के लिये ?"

जब कि उसकी देवरानियाँ और जेठानियों के पास अपने निजी कैश बाक्स में दस-दस हजार रुपया रखा रहता है, वहाँ बाई पद्मनी जी अपनी पति की इस तिरस्कारिणी अवज्ञा के प्रति ठूँठ बनती चली गई । और अब उसने महसूस करना शुरू कर दिया कि जिस जमीन पर वह खड़ी हुई है, उसमें जीवनी-शक्ति शेष ही कहाँ रह गई है । सिर्फ यह एक दलदल है और इसीलिए ऊपर से वह ठूँठ बनती गई और अंदर से सड़ती गई ।

सेठ कैलाशबिहारी और श्रीमती कैलाशबिहारी दो खंड-विश्वास थे, जिनका एकीकरण विवाह-मंडप के नीचे हुआ था । प्राचीन में जो भी रूढ़ था, सेठजी उसके हामी थे । लेकिन नवीनता में जो भी पूँजी को द्विगुणित करने के लिये लाभजनक दीखता था, वे उसे भी प्राचीन रूढ़ि के अर्थों में ढाल कर अपना लेने में विश्वास करते थे । उनका विश्वास था, दाम्पत्य धनिया-पोदीना की चटनी नहीं है । न वह जीवन की खाद्य-सामग्री ही है । इसी दाम्पत्य के गढ़में हम जैसे धनपतियों को समूचे जीवन की सैन्य-शक्ति बटोर कर रखनी पड़ेगी, तभी सुरक्षा है, अन्यथा पूँजी तो इत्र की शीशी-भर है : खाली शीशी में बस खुशबू रह जाती है और वह इत्र हवा में उड़ जाता है । दाम्पत्य की परिभाषा करते हुए सेठ कैलाश बिहारी के मन में एक तो यह स्पष्टता रहती थी कि प्रभुत्वशाली सम्राट् की तरह से चार और पाँच विवाह तक आवश्यक हों तो किये जा सकेंगे । दूसरे, दाम्पत्य का अर्थ पत्नी-भक्ति के कुंड में बहते हुए तरुणाई के दरिया को ठहराना भर नहीं है—यह बात वे गंभीरता से कई बार दुहरा चुके थे ।

बाई पद्मनी का विश्वास सेठजी के इन विश्वासों के सामने छुई-मुई सा था, हाथ लगे तो कुम्हला कर रह जाये । यह अबोधा यह विश्वास लेकर पत्नी बनी थी कि वह एक करोड़पति की पत्नी बन कर अपना सुखद संसार पूर्ण वैभव के साथ बसायेगी । पूर्ण वैभव तो सोने

के पिंजरे सा मिला। सुखद संसार की मुक्ति नहीं मिली। सुबह पाँच बजे से लेकर रात के बारह-एक बजे तक सेठ जी अपने नौकरों, पर्सनल टाइपिस्ट, पर्सनल सेक्रेटरी, दलालों और क्लब के मित्रों के बीच ही घिरे रहते थे। वह चौबीस घंटे में सिर्फ आधा या एक घंटे के लिये मनो-विनोद और क्रीड़ा की, आलोकित भोग की सजीव प्रतिमा थी। उस की उमंगों के सभी स्फुलिंग सेठजी ने शनैः शनैः मंद कर दिये थे। गलती इसमें बाई पद्मनीजी की ही थी। अपने भविष्य के लिए वह अलग से कुछ लाख रुपये अपने कैश बाक्स में जमा कर लेना चाहती थी। जमा की हुई पूँजी मिल की चिमनी के मुँह पर एकत्र काजल-सदृश हुआ करती है। उसके इसी काजल के लोभ में सेठ कैलाश बिहारी को संदेह उत्पन्न हो गया था। और जब सेठजी का कुछ मनमुटाव अपने वयस्क सालों से हो गया तो वे और भी कठिन मन के हो गये थे,....पत्थर-दिल पति बन गये थे.........।

अब तो वह पति श्मसान-स्थित चिता की लपटों में स्वयं राख हो रहा था। घर पर वह लखपति की विधवा तरुणी रो-रो कर इस क्षण गश खा चुकी थी और लोग उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये जा रहे थे। लेकिन उसका असंतोष हाहाकार कर रहा है कि अरे, कहाँ है वह नकद एक करोड़ रुपया जो मेरे पति की निजी सम्पत्ति थी? बतलाओ तो कहाँ है ?..........कहाँ है ?

हाय ! हृदय को पति का प्यार भरा कल्प सुगम नहीं हो सका, तो यह अगाध पूँजी की भूख ही तृप्त कर ली जाये ? इति-हास में असंख्य पटरानियाँ, प्रेयसियाँ और रानियाँ अगाध पूँजी के बीच में तिरकर, तैर कर, कल्लोल कर क्या पा सकी थीं ? पूँजी से पत्थर का, लौह का, स्वर्ण का, चाँदी का और रासायनिक वस्तुओं का भव्य निर्माण किया जा सकता है। पूँजी से उस रिक्त दाम्पत्य का क्रन्दन किस भाँति दुलारा जा सकता है ?

बाई पद्मनीजी को जीवन में स्वेद नहीं बहाना पड़ा। सिर्फ अँखियन के नीर की गति ही इसलिये द्रुत रही, क्यों कि उसके विश्वास अपने पति को अपने प्रति आश्वस्त नहीं कर सके। वैभवशाली पत्नियों के इतिहास में बाई पद्मीनी जी ने एक नई बात रह-रहा कर यही जोड़ी है कि दास-दासियों, नौकर-चाकरों, दलालों, टाइपिस्टों और परिवार-जनों के बीच जीवित रहती हुई भी वह जीवित पति की विधवा-सदृश जीवन बिता रही थी और खुश थी! एक कृत्रिम खुशी लिए हुए उसने अपने पत्नीत्व को एक दक्ष ढोलकी की तरह थाप देकर कभी नहीं देखा कि उसका सुर गति-भंग तो नहीं कर रहा है!!

जी हाँ, दाम्पत्य एक वाद्य का सुर कभी नहीं हो सकता। वह तो पूरा आरकेस्ट्रा है : और सब वाद्य-यंत्रों की सामूहिक लय-धुन को लेकर मोहक रागिनी अलापता है.......।

[६]

सिनेमा की बालकनी के एक कोने में बैठे एक धनाढ्य परिवार के दो दम्पति बैठे हैं। शेष अधिकांश सीटें रिक्त हैं। पीछे मैं बैठा हूँ।

खेल के बीच में कुछ रस कम हो चला है, सो चारों में बात चल पड़ी है—आधी अंग्रेजी और आधी हिंदी। एक दम्पति अपनी शिकायतें कुछ चुटकी लेकर दूसरे दम्पति के सामने जरा रस लेते हुए कहने की अच्छी सुविधा पा जाते हैं। ये ऐसे ही क्षण हैं, लेकिन बातें सुनकर मैं इतना दुखी हुआ कि बीच खेल में ही उठकर घर चला आया।

"कहिये मोहिनी जी, कुछ फैसला हुआ हमारे इन भाई साहब से?"

"फैसला? अजी, फैसला तो मेरी मौत ही करेगी।" लड़खड़ाती आवाज से कहा।

"फिर भी सुनें, क्यों इस २३ साल की उम्र में ही मौत की बात घुमड़ने लगी है?"

"ये बैठे हैं न पास में ही। इनसे पूछ कर देखो न। मेरा क्या, ये ही जज हैं, ये ही पब्लिक प्रोजीक्यूटर हैं।"

"नहीं, आप ही खुलासा बतायें।"

"खुलासा बताऊँ? जी, मेरा यह कंचन-सा शरीर आपको कुछ खुलासा नहीं बता पा रहा है? इनके संग जब से आई हूँ, बीस पौंड वजन घट चुका है। खैर, इन बातों में किसी के लिये क्या रखा है? पर आपको भी क्यूँ बताऊँ? आप भी तो पुरुष हैं, और इनके फ्रेंड हैं। मैरिज को हुए छः साल होने आये। क्यों नहीं, व्हाई नॉट, ये मुझे मेरे पीहर भेजते? इनका फाइनल वरडिक्ट है कि जाना है तो जाओ, पर लौटने की जरूरत नहीं है? इनका झगड़ा है मेरे फादर से, तो ये मुझे उनसे फार अवे रखेंगे, उसकी पनिशमेंट और रिवेंज मुझे शिकार बनाकर लेंगे? इनकी यह वैनिटी (दंभ) मनुष्यता का निशान है? अरे, ठीक है, आज ये मेरे पिता से पाँच गुना धनपति हैं, रिच हैं। सोशियली सुपीरियर हैं। पर मेरे फादर ने अपने जिगर के टुकड़े के रूप में मुझे इनकी सेवा करने को भेजा है। जब मौका मिलता है, ये मेरे भाइयों को छोटे शब्द बोलते हैं। उनकी फन बनाते हैं। मेरी बहनों के बारे में इनकी जबान साँप की जबान बन जाती है। मेरे जीजाओं ने इनका क्या बिगाड़ा है? उन्होंने तो इनकी शक्ल तक नहीं देखी। ब्रदर्स और सिस्टर्स को इतनी डिलीवरीज हुईं, इन्होंने एक पैसे की शकुन की चीज नहीं भेजने दी। मुझे घर पर लैटर्स तक लिखने की मनाही है। घर की चिट्ठियाँ आती हैं, मुझे देते तक नहीं, फाड़ कर फेंक देते हैं। काश, पतिभक्त होते हुए भी मैं पिता के अपमान का बदला इनसे ले पाती तो आज ही सुख की मौत मर जाती ....।"

अधिक सुनना मुझे असह्य लगा। मैं विचलित हो गया। उठा और घर चला आया। सामने रजत-पट की सब अभिनय-जनित वास्तविकतायें झूठी दीखने लगी थीं।

[७]

अगाध पूँजी जहाँ मुख्य है, वहा मनुष्य मुख्य कैसे रह सकता है ? और जहाँ अगाध पूँजी से 'ए' ग्रेड का दाम्पत्य भी खरीदा जा सकता हो, वहाँ इस अगाध पूँजी के रूदनकारी दायरे में उन अभागी लड़कियों का क्या हाल रहता होगा, जो दाम्पत्य के किनारे पर इस तरह रह रही हों कि जहाज छूट रहा है, यात्रा करनी है, लेकिन ब्लैक मनी के आधार पर टिकट उन्हीं को मिल रहे हों, जो अधिक से अधिक कीमत दे सके हों और वे अबलायें पूँजीगत मूल्य चुका न सकने के कारण यात्रा से वंचित रह गई हों ?

इस तरह का उदाहरण एक नहीं है। सम्पन्न परिवारों में मैंने कितनी सुशीलायें देखी है, जो अपने मनचीते युवक से विवाह करने के लिये कई सालों से राह देख रही हैं, किन्तु उस विवाह का अधिकतम मूल्य उनके पास नहीं है। मैं ऐसी लड़कियों को भी 'पत्नी' ही करार देता हूँ, लेकिन इनके पहले एक अभागा विशेषण लगा कर अर्थ पूरा करना ही होगा। जीवित पति की विधवायें तो हमारे यहाँ बेशुमार हैं ! जीवित कुंवारे युवकों की 'भावी कुँवारी विधवायें' ही मैं ऐसी कुँवारी लड़कियों को कहने की विनम्र छूट चाहता है !!

कलकत्ता का एक ऐसा ही चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है, जहाँ अगाध पूँजी है, लेकिन उस पूँजी का असंतुलन मधुर स्वप्न देखने वाली भावी पत्नियों को असमय में विवाह से पहले ही 'भावी विधवा' बनाने की निर्ममता रचता रहता है। ऐसी 'भावी-विधवाओं' के अन्तर्मन की कथा न तो करुण ही हो सकेगी, न समाज का आनन्द-मय भार ही बन सकेगी, क्योंकि ये उतनी निश्चेष्ट हैं कि मानो सजीव क्लैव्य की शिलायें हों...

कलकत्ता महानगरी के भिन्न अंगों का उठान और चौड़ान कहीं

तो खूब हुआ है, कहीं इतना रह गया है कि मन कुढ़ कर रह जाता है। महानगरी ऐसी हो कि दृष्टि-स्पर्श जिस अंग को हो जाये, वह अंग ललक कर मुस्करा उठे और दृष्टि उस व्याकुल श्रृंगार के विराट दर्शन में अपनी पुतलियों की प्रणय-रेख की अमिट छाप छोड़ आये। यूँ, मिस अलका चटर्जी का सदा से कहना रहा है : "महानगरी वही जो दिन में नगर-वासियों को कटु जीवन का मधुरतम अभिसार दे और रात्रि में शलभ की यौवन-प्रेरणायें दे।" "लवली", बोलकर इस उक्ति पर मिस विधुशेखरम फुदक कर कहती हैं, "मुझे कहने दीजिये, महानगरी ऐसी तड़पती हुई तरुणी हो जो सबका आलिंगन करे और लोग उसका आलिंगन पाने के लिये तरसा करें!"

मिस विधुशेखरम को एक दिन लंच-अवर में फुडिंग खाने के बाद मिस अलका चटर्जी ने रकाबी में आये हुए बिल के पीछे खड़ी हुई एक नग्न शर्मीली नारी का रेखा-चित्र नाभि तक बना कर कहा कि यह जो नेत्र है, सो समझ लें, कलकत्ता महानगरी का डमडम एयरोड्रोम है। श्याम-बाजार उसकी अधर-रेखा की स्मिति में समा गया है। गर्दन सेंट्रल-एवेन्यू मान लें। यह डेलीशियस बस्ट आइसक्रीम बालस-सा चौरंगी का सुहावना दायरा। पेट और नाभि के अंग भवानीपुर और कालीघाट से मिलकर बनते है। क्योंकि ये ही वे अंग हैं जहाँ कलकत्ता अपनी बंगाली संस्कृति का गर्भ ग्रहण करता है और उसका पोषण करता है! सुन कर मिस विधुशेखरम ने ब्वाय और बैराओं को और पचासों पेयरों तक को चौंकाते हुए इतना बुलंद अट्टहास किया कि लुत्फ आ गया। बोली, "तो इसका मतलब हुआ यह कि हम इस समय प्यार भरी तरुणाई का शॉवर-बाथ ले रहे हैं?" और अब दोनों ने अपने ही यौवन की लहरों पर अपनी हँसी की तरणी तेज गति से बहाव की दिशा में बहने के लिये छोड़ दी।

शाम की चाय दोनों ने एक शानदार होटल में ली। था एक जमाना, जब इस होटल में एक हिंदुस्तानी फैशनेबुल मर्द या औरत बड़ी

मुश्किल से, आँख फाड़ने पर खोजे मिलता था। फैशनेबुल याने सभ्यता की पहाड़ी झील में नाव चलाने की चौड़ी छाती रखने वाला। पर मिस विधु (शेखरम) का तकाजा है कि फैशनेबुल वह, जो खुली सड़क पर अपने मन की रंगीनियों का नगाड़ा बजा सके! दोनों चाय पीती हुईं सामने मैदान का नजारा देखती रहीं। आह: वह भी जमाना था कि इस मैदान में एक भव्यता थी, एक लालित्य था और यहाँ घूमने के बाद एहसास हुआ करता था कि हाँ, कलकत्ता के मैदान की सैर की है। अब तो शाम होते ही फालतू इंसान लावारिस जानवरों की तरह धूल में लोटने या पगुराने के लिये चले आते हैं। जब अँग्रेजों का राज था तो यह फोर्ट एरिया किसी सुर्खी से छलकते नक्षत्र से कम नहीं था। अब उस ठंडी सड़क पर बनिये आते हैं और इस मौजूं एकांत को भी उन्होंने सट्टे की खुली दुकान सा बना दिया है।

चाय खत्म हुई। बैरा को एक सलामी के एवज में चवन्नी टिप की गई। अलका चटर्जी का नाजुक ख्याल रहा है कि भोजन या नाश्ता करने के बाद इन बैरों की सलामी से तबियत को बड़ी मीठी राहत मिलती है। ये याद दिला ही देते हैं कि हम इस समय एक शानदार होटल की रौनक-अफ़जाई कर रहे हैं। नीचे उतरीं, ड्राइवर ने दो-दो बीड़े मगही पान पेश किये। चंचलता मिस विधु की तरुणाई में अधिक है; एक कंपनमयी लहर अलका चटर्जी के लचीले अंगों में क्षण-प्रति क्षण हिलोरें लिया करती है। अलका चटर्जी के ड्राइवर ने एक दिन अपने साथी ड्राइवरों के बीच अपनी मूँछों पर ताव देते हुए कह ही तो दिया था कि हमारी मिस साहब की एक नजाकत पर कम से-कम पाँच हजार रुपये की वारफेरी हो सकती है। अलका चटर्जी स्टीयरिंग पर बैठीं, मिस विधु बगल में, ड्राइवर बैक सीट पर। बातें दोनों की हो रही थीं मिस एंटोइनी पर। वह अलका चटर्जी के बड़े भाई के आफिस में स्टैनो है। उफ! शेर इसलिये खूंखार होता है कि अपने पंजों से छाती चीर

कर वह पहले खून पीता है। मिस एंटोइनी खूंखार इसलिये है कि अपनी नीली मासूम पुतलियों से वह या तो किसी को भी सीधे नहीं देखती है या देख लेती है तो दिल को चाक कर देती है : ऐसा उसके भाई का कहना है। अलका चटर्जी-का कहना यह भी है कि मिस ऐंटोइनी की इन नीली पुतलियों का खूंखारपन उसकी पड़दादी का सीधा असर है जो डेनमार्क की थी और उसका दादा एक सीरियन सैनिक सरदार था। अब उसकी माँ फिलीपिन द्वीपकी हैं और उसका पिता फ्रेंच है। टाइगर किस्म की शिकारी कुतिया की तरह यह मिस एंटोइनी जब चलती है तो सबको सूँघती हुई चलती है। मिस विधु ने अपनी राय दी, "मैंने जितना उसे समझने का हिसाब लगाया है, उसे एक करोड़पति पति चाहिये। वरना वह आजन्म कुँवारी रहेगी। शर्त रही मेरी। क्योंकि वह अपनी आधी तनखाह तो सिर्फ टॉयलेट पर खर्च करती है और एक चौथाई तनखाह हर महीने नई स्कर्ट सिलवाने में और शेष सिगरेट पीने में और इंडियन रसोगोल्ला को निगलने में !"उच्चारण में मिस विधु ने रसोगोल्ला में तीन लओं का प्रयोग किया तो अलका चटर्जी सुर्खी-मंडित अधरों से हँसी का गुलाब-जल झार बैठीं और मिस विधु ने सीट पर उचक कर खिलखिल की फुहार झार दी।

मिस विधु की शिक्षा कन्वेंट में हुई है, अलका चटर्जी ने प्राइवेट तौर पर आइरिश ट्यूटर से शिक्षा प्राप्त की है और बी० ए० की डिग्री सप्तरंगी रिबन की तरह से अपने केशों में बाँध ली है। मिस विधु की मदर क्रिश्चियन हैं। पिता ठेठ ब्राह्मण हैं और प्रायः नौ मास अफगा-निस्तान में रोजगार से रहते हैं और कलकत्ता के एक फर्म के लिये कुछ गुप्त कार्य-व्यापार करते रहते हैं। मिस विधु के एक मामा थे। कई साल तक वे अपने बहनोई की कमाई का रस लेते रहे और आखिर उन्हीं के कारण विधु के पिता ने पत्नी को तलाक दे दिया। अब उसकी माता स्पेन में है और उसने एक बूढ़े स्पेनिश जमींदार से शादी कर

ली है। विधु ने अपनी माता के दो संस्कार पाये हैं। एक गुण है और दूसरा अवगुण है। उसकी माता घर में कम, सोसायटी में अधिक रहा करती और अधिक से अधिक सुरा पान करने की तिकड़म लगाने में व्यस्त रहती। दूसरे वह इस टोह में रहा करती कि कौन कितना कर्जदार है, कितने घाटे में चल रहा है, किसका कितना 'बेक-बैलेंस' है। कम से कम चार मौकों पर उसने इन गुप्त आँकड़ों से चार मुकदमों में यही आठ हजार रुपया गुप्त उपहार के रूप में पाया और एक युवक के साथ तीन मास का प्रवास पैरिस में किया। विधु सोसा-यटी में कम घूमती है। जब से अलका चटर्जी के भइया से मेल हुआ है, अन्य युवकों से कम मिलने में ही सुरक्षा समझती है। पर सुरा पान की मात्रा अपनी माता से अधिक है। यही सबब है कि उसकी अँखियाँ मादक जरूर बन चुकी हैं, पर उसकी आंगिक चौड़ान स्मार्टनेस की परिधि को लांघने की उतावली दिखाने लगी है। किन्तु अवगुण बहुत ही सूक्ष्म रूप में यह आ गया है कि अब भी उसके मन में क्रिश्चियनों के प्रति ममत्व आग्रह करता रहता है। यदि अलका चटर्जी के भइया न बहुत संभाल कर विधु को प्यार की गुम्फी में कस कर न रखा होता, तो वह अब तक भारत से बाहर होती और किसी क्रिश्चियन से विवाह कर चुकी होती! इस बात से वाकिफ, अलका चटर्जी भूल कर भी क्रिश्चियनों की चर्चा नहीं करती।

विधु के मिजाज की पुर्सी के लिये अलका आधा पैग पीने में हानि नहीं समझती। भइया के सुख को अक्षुण रखने के लिये अलका ने विधु की सभी रुचियों को पोषण देने में अपना निजत्व भुला दिया है। विधु को हल्के नीले रंग की साड़ी पर मूँगिया स्पाटेड ब्लाउज पसंद है, तो अलका ने भी नीले रंग के विभिन्न शेड्स पर मैच करते हुये बैलेंस्ड टेस्ट के स्पाटेड डीप और लाइट स्पाटेड मूगिया ब्लाउज तैयार करवा लिये हैं। यूँ अलका नित्य तीन दफे दिन में साड़ियाँ बदलने की हामी है।

पर विधु का कहना है कि भूषा का ध्वज एक स्थायी रंग का हो। दूर से वह पहचाना जा सके कि इस समय किसका ध्वज किस दिशा में फ़हरा रहा है। उसका अपना तर्क यह है कि जो लड़कियाँ हर समय भिन्न फैशनों और भिन्न रंगों के लोभ में फिसलती रहती हैं, करवट लेती रहती हैं वे जीवन में कभी भी स्थायी सुख नहीं पा सकतीं। जबान का स्वाद होता है महीने में बीस बार बदलने के लिये, न कि इस शरीर का रंग तबदील करने के लिये.......नित्य नये रंगों के लिये मचलना अपने ही दिमाग के तंतुओं को भौंडी रस-राग से बजाना है....

शाम की हुमस विक्टोरिया मैमोरियल पर मंडराकर कुछ पस्त हिम्मत हो जाती है। दोनों वहाँ जाकर रुक गई और कार से उतरीं। विधु ने रोजाना की तरह एक भरी नजर विक्टोरिया मैमोरियल को देखा और एक दीर्घ निःश्वास ली। बोली, "काश ! इस मैमोरियल के ऊपर कोई मंजिल होती और उसमें मैं अकेली रहती। तब यह मैमोरियल 'विधु-मैमोरियल' के नाम से जाना जाता। आसमान का यह लंबा-चौड़ा रास्ता परियों और गन्धर्व-कन्याओं के लिये ही बना था। यह स्त्रीत्व मात्र का अपमान है कि वह एक आँख से दूर आसमान का अनन्त पथ निहारे और दूसरी आंख से अपनी गिरिस्ती का रोना रोये।"

अलका विधु की ऐसी शायरी पर मौन स्मिति का संकेत भर देती है और कुछ गुनगुनाने लग जाती है। आज वह सुबह से विभोर है। डैने मिल जायें तो इस कलकत्ता का चक्कर लगा आये और कुछ क्षण साँस लेने के लिये इस मैमोरियल पर बैठी हुई इस परी के सिर पर जा बैठे। विधु की बात सुनकर बोली, "हाँ, ठीक कह रही हैं आप। जमीन पर कैद रहने वाली स्त्री इस पृथ्वी के लिये एक बोझ से अधिक कुछ नहीं है।"

"असल में," बल पाकर विधु ने अपनी मन की बात आज कह ही दी अलका से, "समुद्र में लहरें ही उसका प्राण होती हैं। इस जड़ पृथ्वी

और पत्थर सी छाती वाले पुरुषों के दायरे में औरत ही लहर बनाकर छोड़ी गई थी। धिक्कार है उस औरत को जो लहर-सी न रह कर, दुधारू गाय की मानिन्द सिर्फ गोबर करती है और दूध देती है और बेबस-सी रंभा लेती है।"

अलका ऐसे ही क्षणों में विधु को नम्बर एक की मूर्खा समझने लगती है। भारतीय समाज से परित्यक्त होकर ये एंग्लो-क्रिश्चियन लड़कियाँ शीर्षासन करती हुई-सी जीवन की परिभाषायें बनाया करती हैं। वह एक उच्च कुलीन बंगाली परिवार की सुशील कन्या है। घर की चौखट से बाहर दौड़ कर वह सोसायटी में कुछ घंटे चुहल करने को बुरा नहीं मानती। लेकिन किसी भी क्षण घर न लौटा जाये, इस बात का अर्थ उसे बहुत सोचने पर भी समझ में नहीं आया है। किन्तु इसी क्षण उसने मैमोरियल के सामने रुकी हुई कार से उतरती हुई एक नवांगना को देखा: कितनी स्लिम है। लेकिन हाय, इस मृगनयनी की नाक क्यों बल खा गई है? इस विरूपता में रस लेती हुई अलका ने विधु से कहा, "इस फरकती हुई तितली को ही देखो न। जब तक शादी नहीं हुई है, यूँ घूमकर और मौजें लेकर घर के बाहर खुली हवा में साँसें ले ले। वरना जहाँ एक चूल्हे पर चढ़ी कि कम-से-कम इसका पेंदा तो धुँआ से सदा के लिये काला हो ही जायगा। और ऊपर का हिस्सा रोजाना न माँजा गया तो बस, धुएँ से काली-स्याह पतीली भर ही यह रह जायगी।"

विधु ने हल्की सी फूत्कार छोड़ते हुए कहा, "लेकिन यह कितनी स्टुपिड है। अपनी माँ के पीछे-पीछे चल रही है? गोरू की बछिया, नाँनसेंस।"

अलका हँस दी तो विधु भी खिलखिला पड़ी। दोनों अंदर तलैया के किनारे-किनारे देर तक टहलती रहीं और मौन रहीं। आखिर विधु ने कहा, "डैडी ठीक ही कहते हैं कि यह हिन्दुस्तान मुल्क सचमुच हब्शियों के देश अफ्रीका से भी बदतर और अभागा है। वे जंगली हैं तो विशुद्ध

जंगली हैं। यह न विशुद्ध जंगली हैं, न विशुद्ध आर्य। दूध में जैसे सिंघाड़ा पीस कर मिलाया हुआ हो। इस देश में रहने का मतलब ही अभाग्य को कंधे पर सवार कराये फिरना है।"

विधु के ऐसे डेस्पिरेट मूड की दवा अलका बखूबी जानती है। तरंगायित होकर वह एस्प्लेनेड के क्षितिज पर चमकते-दमकते, आँख-मिचौनी करते स्काय-एडवर्टिजमेंट्स की ओर मुखातिब हुई और चुपके से मुस्करा दी। बोली, "आह! किसी काश्मीरी कवि ने क्या खूब गाया है, 'आकाश से प्रेम रस में डूबी हुई अप्सरायें हमारे आँगन में खेलने को उतरीं, मैंने जवानी की बहार में ज्यों ही पैर रखा, मेरी ससुराल से मुझे लेने आ गये!' लेकिन वह देखिये, यह जो ऊपर-नीचे रंग-बिरंगी बिजली की रेखाओं से बोलते हुए विज्ञापन कुछ कह रहे हैं, ये असल में कुछ और ही हैं। यह अगर हम बारीकी से देख सकें तो हमारी आसमानी सीढ़ियाँ हैं, जहाँ चढ़ कर नई रोशनी की औलाद जीवित रहा करेगी। बात भी सच है। अब इस धरती पर रस रह भी कहाँ गया है कि कोई इस पर रहे और सूखने से भी बचे?"

विधु ने चुपके से अपनी पर्स से सिगरेट निकाली और पीने बैठ गई। निकट से आने-जाने वाले भ्रमणार्थी एक औरत के मुँह में सिगरेट देखकर यही समझ सके कि यह कोई पेशेवर मायाविनी है। पर विधु ने अलका जी की बात में पूरा रस लिया और कहा, "मैं जितना ही सोचती हूँ, जितना ही सिर धुनती हूँ, एक ही दिशा मुझे आगे बढ़ने के लिये ठीक जँचती है कि अब तो इस देश में जीवन की सारी हाय-हाय यह पुरुष अपने ऊपर ले और स्त्री आसमानी मछली बनकर विचरण करे। वह जमीन पर आये तो तड़प-तड़प मर जाये, सो कोई पुरुष साहस ही न करे कि उसे जमीन पर लाये। वह जमीन पर आये तो लाश बनकर ही आये।"

बात अलका को चुभ कई। पर दिखावट में झूम कर हँस पड़ी और दोनों हल्के नशे में डूबी हुई जो रीझने-रिझाने खिलने-खिलाने

बैठीं तो इतनी सुध-बुध खो बैठीं कि 'डिनर' के समय की पाबंदी का ख्याल तक भुला बैठीं।

× × ×

आफिस में एक सीरियस केरा था। दिन भर उसने दिमाग चाट लिया। दिल में शैतान के हिंस्त्र नाखून पाप की खुजली को सहला रहे थे और लोक दिखावे की शिष्टता भलमनसाहत का तकाजा माँग रही थी। सोमेश चटर्जी के आफिस में उसके मामा के शेयर हैं इन दिनों मामा का आर्थिक टैम्परेचर ९८ से कुछ नीचे उतर आया है। फिर भी मामी की लाइफ पालिसी का फुल रुपया ज्यूँ-त्यूँ जमा किये जा रहे हैं कि वह रोगिणी है और जल्दी मरने वाली है। मर-मरा ले तो जमा हुए हैं अब तक पाँच हजार और मिल जायेंगे तीस हजार। बाकी जिंदगी काटने के लिये एक पेंशन मिल जायगी। पिछले पाँच महीने से पालिसी का रुपया मामाजी सोमेश से उधार ले रहे हैं। सोमेश ने चुपके से पालिसी के आफिस से यह माँग करवा ली कि रोगिणी का दिमाग जरा पागल है इसलिये यह पालिसी मामाजी के हस्ताक्षर करवा कर अपने नाम करवाली है। और मामाजी के शेयर भी अपने नाम ट्रांसफर करवा लिये हैं। यह आज शाम तक उसने कर लिया है। इसके एवज में सिर्फ दस रुपये के फल मामीजी की सेवा में भिजवा दिये हैं। मृत्युशैया के डरावने अँधियारे में कलपती हुई मामी ने भतीजे की इस दरिया दिली पर अपना आशीर्वाद भिजवाया है और दो स्नेहाश्रु भी गिराये हैं। किन्तु सोमेश ने सब प्रपंच की खाना-पूरती कर एक गहरी साँस ली, विशेष रूप से नया पाइप भर कर पिया और जिस मजे से ये बीस हजार के लगभग मिलने वाले हैं, इस खुमारी में उसने कोल्ड काफी के तीन कप चुस्कियों में क्रमशः पी डाले। मामाजी को रुला-रुला कर वह यही देगा दो हजार—बस।

खाने के बाद जब पेट कुछ अधिक भर जाता है तो डकार आती है। सोमेश ने डकार की बतौर इंश्योरेंस एजेंट को इस गुप्त कार्यवाही में सहयोग देने के एवज में अपने आफिस के एक दूसरे शेयर होल्डर की लाइफ पालिसी दिलवा दी जो कि मरने के अनकरीब है, और जिसकी पालिसी भी कुछ हेर-फार के बाद सोमेश अपने नाम कर लेगा !

थक गया है वह बिलकुल दिमाग खर्च कर। अब सात बजे हैं। विधुशेखरम के साथ मीटरो में 'नाइट शो' देखना तय हुआ है। उससे पहले जरूरी काम से कम्पनी के एक डायरेक्टर से मिलना है। कार में बैठ कर उनके यहां हो लिया। वहीं डिनर हुआ। और वह साढ़े आठ बजे मीट्रो पहुँच गया।

मीट्रो ! जहां शहर की सिलेक्टेड तरुणाई अतिशय पालिश्ड तरीके से अँगड़ाई लेने आती है। सोमेश ने इसका नाम 'टर्किश बाथ हाउस फार द रोमांटिक ड्रीमर्स' रख छोड़ा है। बहुत दूर से ही जिसके पोर्च में दीप्त बल्बों की बन्दनवार धूमिल रेखाओं से संकेत करती हुई चहकती हुई तरुणाई को नया अभिसार देती है। जहाँ आमंत्रण खुला हुआ है उन नव जवानों और युवतियों के लिये जो अपने मीठे सपनों की तूफानी लहरों का दोहन--मंथन चाहते हैं और परीक्षा चाहते है कि उनके दिल के गुब्बारों में कितना विष है, कितना अमृत है !! सोमेश इस प्रचंड रूप से प्रज्ज्वलित छोटे-से तारिकाओं के पिंड-गृह में आकर खड़ा हुआ, तो देह का हर पोरुवा पलक झपकते उड़ कर सातवें आसमान पर पहुँच गया। कुछ ऐसी ही बहार है इस सिनेमा की मस्ती-भरी गैलरी में।

हर मामले में सोमेश की स्पष्ट राय होती है। उसका कहना है कि मीट्रो में जो भी रंग-बिरंगी तितलियाँ उड़ती हुई-सी, चहल कदमी करती-सी, चहकती-सी, ललकती-सी, फुदकती-सी, मटकती-सी, इतराती-सी, मंडराती-सी, बे लगाम तीर-सी, पिस्टल-शाट-

सी, थ्री नाट थ्री की गोली-सी, उनींदी-सी, खोई-खोई-सी, भ्रमित हुई सी, नींद में उठकर दरवाजे बाहर चली आई-सी, भनकती मक्खी-सी, तेज दौड़ती हुई साँपिनी-सी, नकेल तुड़ा कर बेतहाशा दौड़ती हुई पालतू घोड़ी-सी, नये पर उगाये हुई चींटी सी, खिजा में लौटी हुई बहार की अगवानी के लिये आनेवाली कूकती कोयल-सी, अपने अरमानों की कब्र को फोड़ कर उठी हुई सी, गरमी में स्वयंमेव किसी बीयर की बोतल की उखड़नेवाली कार्क-सी और कटी पतंग के नीचे लटकी हुई डोरी-सी आती हैं, सो अपना पुष्प-पराग बटोरने आती हैं। उसके कहने के मुजिब यहाँ सिलसिला शहद के छत्ते से ठीक उल्टा है। डंकों से सशस्त्र, कटखनी, फौज की सामूहिक शक्ति से आक्रमण करनेवाली शहद की मक्खियाँ एक-एक फूल से पराग इकट्ठा करतीं हैं और शहद के छत्ते में शहद तैयार करती हैं। किंतु यहाँ मीट्रो में ये कटखनी, गुस्सैल भनकती हुई शहद की मक्खियाँ इस लहजे में आती हैं कि जैसे इस छत्ते में शहद तैयार है और वे उसे तैयारशुदा ले जायँगी ! अरे, गया वह जमाना उन शहजादियों और राजकुमारियोंका, जब वे अपने हृदय के पराग-रस को बरसों तक पका कर शहद तैयार करती थीं और उसे आजीवन अपने राजकुमार या शहजादे को पिलाया करती थीं। आज तो ये रीती शहद की मक्खियाँ पके-पकाये शहद को अपने होठों में लगा कर अभिनय करती फिरती हैं, कि न जाने इनके हृदय में कितना शहद भरा हुआ है ? नक्कारा गड़गड़ाकर बताती फिरती हैं कि इनकी बुझी हुई हसरतों में फिर से एक चिनगारी सुलग चुकी है।

इन पाँच सौ बल्बों की तेज रोशनी में हर नवजवान और हर युवती की पेशानी की हर हरकत दीख जाती है, अँगड़ाई की हर रेखा उभरती हुई बारीकी से देखी जा सकती है और जहाँ दिल की तमन्नाओं का हर बारीक अक्षर पढ़ाई में आ जाता है। सोमेश को बड़ा सरूर चढ़ने लगता है यहाँ खड़े होकर और षोड़शियों और सुंदरियों और नव वयस्काओं

का सौंदर्य निहार कर। उसकी तेज आँखें यहाँ आकर अपनी एक नई गोपनीय भाषा का पाठ पढ़ा करती हैं।

इस समय कुल मिलाकर यही सौ-एक हसीनाएँ जमा हैं।

पहला शो खत्म हो ले, इसी प्रतीक्षा में सब खड़े हैं। सोमेश छैल-छबील-सी मुद्रा में पाइप पीता हुआ एक बात गौर से देख रहा है कि जितनी ही नई सम्पत्ति किसी नये परिवार को मिल जाती है, उस घराने की लौडियाँ उसी संतुलन में चिकनाई और नजाकतों का फुलाव ग्रहण करती हुई चित्ताकर्षक रंगीन गुब्बारे बन जाती हैं। वैसे एक विशेष नस्ल की औरत जात के हुस्न में और बहुमूल्य शृंगार से सजाकर प्रदर्शिनी के-से प्राइझ-हुस्न में जैसा अन्तर होना चाहिये, वह काफी गहरा होता है,। सोमेश को बस 'ग्रेट-ग्रेट ग्रांड फैंगलीज की नस्डें' की हुई नस्ल की औरतों के हुस्न को और उनके नख-शिख की कल्पनातीत नक्काशी को टकटकी लगाकर निहारने में पुरजोर सरूर मिलता है। या फिर वह कुर्बान हो जाता है, कुछ उन नवांगनाओं के सौन्दर्योपचार पर, जब वे सूक्ष्म रुचियों का संतुलन करती हुई नजाकत भरी लज्जा से लब्धप्रतिष्ठ होकर, अपने उत्फुल्ल स्त्रीत्व की सब गोलाइयों को स्पष्टतया प्रकट करती हुई अपने घर से बाहर निकल आती हैं। वह देखने लगा, उस गुजराती परिवार के बीच खड़ी हुई वह पन्द्रह वर्षीया यौवना सिर्फ तारकशी खचित फिरोजी रंग के लहंगे पर हल्की सी कासनी रंग वाली चुनरी को वक्ष के आगे लहरा कर कितनी मासूम लग रही है। है किसी प्योर ब्लडेड गुजराती घोड़ी की हिनहिनाती सी प्यार की बच्ची। आँखों में सुरमें की पतली डोर ने जैसे समूचे नक्शे का मूल्य लिख दिया है! उस क्रिश्चियन सखी के साथ वह सत्रह वर्षीया युक्लिप्टिस की हरी टहनी-सी षोड़शी यू० पी० की है। अपने सौंदर्य की काट-छाँट इस तरह कर आई है जैसे तो बगीचे की किसी जंगली झाड़ी को बाग के माली ने चारों ओर से काट कर

उसे मनःहरपूर्ण वृत्त का रूप दे दिया हो। आह : उधर अपने पिता के संग पतली कमरिया की वह छोकरी नाहक ही यूँ दो सौ रुपये की जरी, बार्डर वाली शैफोल्ड कलर की साड़ी में लिपट कर आई है, पर लिपस्टिक की सुर्खी से उसका सारा गोरा मुखड़ा सुर्ख हो गया है और कैसी मोर-पंखी के वृक्ष-सी झूम रही है। वल्लाह, सलवार में निडर हिरनी-सी खड़ी हुई उस कमसिन की जो भाभी है, कैसे अपने फूहड़ शृंगार का और क्रीम-पावडर की मसलन का धुंवा अपनी बेडौल शरीर की ऊँची चिमनी से उगल रही है! वृन्दाबनी गोपिका-सी मुखश्री से धन्य, इधर इस सोनचिरैया का समस्त शरीर किस तरह मैसूरी टिश्यूज़ में कसा हुआ है कि देह की पृष्ट-भाग की गहरी खाई तक उभर आई है। 'बनारसी दिल्लगी' में सँवर कर इसकी उमंग, भरी गगरिया-सी, कैसी छलक रही है। इसकी गोरी देह को साड़ी के सप्तरंगी कली नुमा त्रिकोणों ने कैसा हल्का गुलाबी शेड प्रदान कर दिया है कि जैसे इसके शरीर की आभा ही सचमुच ऐसी हो। सोमेश उधर एक दक्षिण की सुंदरी को देखकर मुस्करा उठा। निश्चय वह अपने यौवन के इन क्षणों में दर्शनीय है, पर दर्शनीय तो उसकी बंगलोरी साड़ी है जिसका 'स्काट बार्डर' उसके श्याम वर्ण को जर्द दीप्ति दिये जा रहा है, और जिसने बड़ी नफासत से पाटला साड़ी का घुमेर कृष्ण के पीत वस्त्र की परम्परा का वहन करते हुए चाँदी की दानेदार कटोरियों से मंडित जरी-मिश्रित सैक्सी कलर का शेड अपने सामने टाँगों के बीच झुमा दिया है। लीजिये, इस भैंस-युवती को भी लीजिये, बनारसी क्रेप पर चुँदड़ीदार बुंदकियों की छाप का कैसा शोर मचा रही है और जिसकी काया के गोल दायरे के चारों ओर महँगे भाव के जरी के तार चमक-दमककर किन्ही अंशों में भी रति-प्रियता नहीं दे पा रहे हैं, पर जो अपने समाज की निश्चय ही वरणीय कन्या होगी! और इसकी साड़ी के रंग भी कितने 'गॉडी' हैं? क्यों हम सौन्दर्य को पाँच सौ रुपयों के कलाबत्तू

से और जरी से लाद कर एक विरसतापूर्ण आदत का नग्न प्रदर्शन करने यहाँ आते है ?

और, जैसे तो एक विभाजक-रेखा के रूप में कोई दीप्त रेखा कौंध गई हो, सोमेश को पलक झपकते स्पष्ट हो गया। उसने उधर बल्बों के प्रकाश के ठीक नीचे उन आठ तरुणियों को एक झुंड में खड़े हुए देखा। उन्होंने बिना किसी संशय के, बिना किसी सावधानी और सतर्कता के, प्लेन टिश्यूज़ की साड़ियाँ पहन रखी हैं, केशों की अभिदा ने इन्हें अजंता के केश-विलाश का गौरव दे दिया है। आँखों को इन का यह सौंदर्य-परिष्कार कितना सुहावना लग रहा है। बात दो टूक यही है कि ये सभी कन्यायें बंगाली तो हैं, पर उच्च शिक्षा से इनकी सभी रूढ़ियों का शोधन हो चुका है और इनके सभी मूढ़ श्रृंगारवादों का परिमार्जन हो चुका है। क्योंकि इन्होंने उच्च अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की है, इसीलिये इनकी भूषायें इतनी श्रेष्ठ कलात्मक बन सकी हैं। अरे, नवयुग की श्रेष्ठ कलात्मकता वही, जिसमें स्वर्ण का अभिशाप कम से कम हो! जरी और सलमें-सितारे को अपनी देह पर लादे फिरना अपने शरीर को जरी की झिलमिलाहट से प्रकाशित नहीं करना है, बल्कि तिजोरी में रखे हुए 'स्वर्ण के इर्दगिर्द बन्द अँधियारे' को ही अपने ऊपर लाद कर चलना है........

उसने चार नव वधुओं को अपनी पीठ पर गुँथी हुई बेणी को लटकाये देखा। ऊहूँ.........नहीं-नहीं........यह चीनियों की पुरानी चोटी पीठ पर लटकनी बन्द हो जानी चाहिए। यह भी व्यर्थ का फैलाव है और असुन्दर बनावट है। चौपाये अपनी लटकी हुई पूँछ से मक्खी को उड़ाने का काम लेकर उसकी यथार्थता तो जान लेते हैं। काश! इस लटकती हुई बेणी से ये सुन्दरियाँ पीठ पर उड़ती हुई मक्खियों को या रसिकों की दृष्टियों को उड़ाने का ही काम संजो पातीं। उसने लुभावनी दृष्टि बंग-कन्याओं की कनपटी पर ही इन लंबे केशों का सम्पुट देखा और उसे अपनी मान्यता दी।

कि टैक्सी में से क्षितिज की एक रेशमी बदली सदेह उतरी । सोमेश का अंग-अंग रोमांचित हो गया । यह विधु है । आहः आज इसने कितना श्रेष्ठ कलर-मैच का टेस्ट प्रदर्शित किया है ! छः फुटी अपनी तन्वी देह पर ग्रासी-ग्रीन शेड को सँवारा है और टखनों के इर्द-गिर्द एक फुटी सी-ग्रीन बार्डर पर रुपहले सितारों की ज्योत्स्ना को चिपका लिया है.........लग रहा है, यह फॉरेन-ब्लडेड नवांगना आज नवीनतम आशाओं के संचरण से सिक्त होकर चली आ रही है । सोमेश को देखते ही उसका चन्द्रमंडल पुलकित हो गया । उसके अधरों पर लगी हुई सुर्खी सुर्ख बल्ब की तरह से प्रकाशित हो उठी । निकट आई और उसकी बाँह पकड़ कर सगौरव खड़ी हो गई । दर्शकों ने और क्रीड़ा-वल्लरी-सी कुमारिकाओं ने देखा यह और बस, इस अभिनव दृश्य को देखती की देखती रह गईं । सोमेश ने चुपके से विधु के कान में फुसफुसाया, 'आज तो आपकी ब्यूटी विजयिनी पतंग की तरह से उड़ कर आई है ।" विधु ने और भी मृदु बन कर उत्तर दिया, "जी, इस पतंग की डोरी जो आपके हाथ में है ।" अनिवर्चनीय आनंद में सोमेश ने क्षण भर को अपनी पलकें मूंद लीं और विधु की देह से सट कर खड़ा हो गया ।

पहला शो समाप्त हुआ । दोनों जाकर खाली हॉल की बाल्कनी के बाक्स में जा बैठे । उधर स्वागत-संगीत प्रारंभ हुआ, इधर सोमेश ने विधु की उंगलियों में नई खरीदी हुई अंगूठी पहना दी । विधु ने स्क्रीन पर फैलती हुई प्रकाश-किरणों की रोशनी में अंगूठी देखी और मीठी उत्तेजना में स्फूर्त होकर गलबहियों से आग्रह करती हुई अपना कपोल सोमेशके अधरोंके पास स्थित कर दिया । वह सोमेशकी अंगूठी का प्रतिदान इससे अधिक क्या दे सकती है ? यह अंगूठी आज प्रणय की प्राथमिक प्रस्तावना बनकर आई है । इसके बाद सोमेशके हाथसे तीन सौ रुपयोंकी साड़ीका उपहार अपनी हथेलियोंमें थामकर वह इस शानसे चुप हँसी-हँसी कि सोमेशको प्रणयका नशा छा गया............

पर अलका आखिर तकिये में सिर छिपा फफक कर रो उठी। आध घंटे तक उसके सामने समूची धरती का क्षय होता रहा और वह राह देखती रही कि जिस दो फुट टुकड़े पर वह खड़ी हुई है, वह भी उखड़े और वह रसातल में जा गिरे.....जा गिरे........कि सहम कर न संभल सकी और दौड़ कर आई और अपने पलंग पर धड़ाम से गिर कर रोने लगी। उसके पिता ने रुँधे कंठ से उसे सूचना दी है, कि जिस अक्षयकुमार को उसने अपना हृदय सौंपा है, उसके पिता ने साफ दो-टूक जवाब भिजवाया है कि शादी में वे नकद तीस हजार दहेज लेंगे। इसके अतिरिक्त सोमेश के कारखाने में अक्षय को असिस्टेंट-मैनेजर के पद पर रखना होगा। पिता के साथ अक्षय ने एक पुरजा लिख कर अलका को भिजवाया है कि मैं अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध एक कदम भी न चल सकूँगा।

अमरीका से इंजीनियरिंग की परीक्षा पास कर आया हुआ यह युवक अक्षय इस तरह अलका के प्रणय का असंभव मूल्य कूतने की धृष्टता करेगा, अलका ने यह न सोचा था। क्रोध वह न कर सकी, और रोने बैठ गई। निस्सहाय पिताजी तो अपनी इस इकलौती पुत्री के दुख पर असहाय हाय खाने के सिवा क्या कर सकते हैं? उनकी हैसियत कहाँ है कि तीस हजार का दहेज दें और शादी में दस हजार खर्च करें? सोमेश ने यह बात सुन कर पिताजी से कहलवाया है कि अलका उस अक्षय का ख्याल छोड़ दे। वह एक नालायक लड़का है। ओहः क्या अलका इसी क्षण अपना सर फोड़ ले?

अलका के पिता जी इन दिनों सिर्फ दस हजार के आसामी भर रह गये हैं। यह तो सोमेश ने अपनी लायकी से कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल कर ली है। तो क्या अलका की यह आशा धूल में मिल जायगी: जितनी ही उच्च शिक्षा वह पा सकेगी, उतना ही उसका मूल्य दहेज की नकदी से हटकर, सांस्कृतिक हो जायेगा? हाय, कन्याओं की उच्च

शिक्षा भी इन दिनों उनकी सामाजिक स्थिति को कितना महँगे भाव का बनाती जा रही है। ऐसा भाव कि न वे खरीदी जा सकती है, न बेची जा सकती हैं.............

एक विधु है। उसके विवाह में उसके पिता कम-से-से-कम अपनी सम्पत्ति का तीस हजार नकद देंगे। सोमेश ने अलग से विधु के लिये चालीस हजार एकत्र कर लिया है। स्वयं विधु ने अपनी माता से पच्चीस हजार मंगवा लिया है। एक वह विदेशी तरुणी है, जो सोमेश की किसी भी रूढ़ बदतमीजी को बरदाश्त न करती और उसका तिरस्कार कर चलती बनती। लेकिन अलका किस तरह उस सौदागर-बुद्धि अक्षय का तिरस्कार कर अपने पथ पर आगे बढ़े और अपना साम्राज्य अपने हाथों बसाये? कहाँ हैं ऐसे संस्कार अलका में?

किस कीमत पर वह इतनी बड़ी सम्पत्ति बटोरे और तब समाज के बीच अक्षय नाम के उस युवक से, जो अमरीका से इंजीनियरिंग पास कर आया है, विवाह करने की सामर्थ्य बटोरे?

देर रात तक अलका रोती रही। बाहर उसके पिता अपनी इकलौती बेटी के हाहाकारी रूदन पर निस्सहाय बैठे सिर्फ हाय खाते रहे और सिसकियाँ लेते हुए सूखे आँसू बहाते रहे। अपनी सारी जमींदारी बेचकर भी वे अपनी इन अभागी हथेलियों में इतनी पूँजी नहीं पा सकते। इस अलका को इतना अभाग्य ही मिलने वाला था तो क्यूँ इसे इतनी उच्च शिक्षा दी? रहती निरक्षर और किसी साधारण परिवार के युवक से विवाह कर अवशता की साँसें लेती हुई जीवित तो रहती...

अलका अब सो चुकी है और रह-रह कर सिसकियाँ ले रही है।

[८]

प्रश्न होता है, क्या दाम्पत्य की फुलवारी को बारहमासा कुसुमित रखने का कोई निश्चित् फार्मूला बन सकता है?

सोमेश को देखते ही विधु शेखरम् का चंद्रमण्डल पुलकित हो गया। निकट आई और बाँह पकड़ कर खड़ी हो गई...पर इधर अलका खूब रो चुकी है और रह-रह कर सिसकियाँ ले रही है। उसके पिता जी निस्सहाय बैठे सूखे आँसू बहा रहे हैं।

इस प्रश्न को हम इस तरह भी समझ सकते हैं : जिस तरह बरसात और शीत ऋतु में सुबह का निकाला हुआ दूध शाम तक या रात के चौथे प्रहर तक ठीक हालत में रखा जा सकता है, क्या उसी तरह कड़कती ग्रीष्म ऋतु में भी वह रखा जा सकता है ? उसे फटने से, खट्टा होने से बचाया जा सकता है ?

पत्नी का मधु भी कुछ इसी तरह का है कि उसे हर रोज नई मौसम चाहिये या उस के गोपनीय पराग के लिये एक वैज्ञानिक-विधि-नियंत्रित तापमान चाहिये । अन्यथा वधु के आकाश-कुसुम असमय ही मुरझा जाते हैं और उसके मूक मनोभाव चौखट पर रखे हुये पाँवदान बन जाते हैं : जिस पर पति महोदय घर में आवें तो पैर या मन की उमंग पोंछ लें । इसके बाद उससे कोई सरोकार नहीं । चाँद की चाँदनी में और नववधु की स्नात् स्निग्धता में बस वही अंतर हुआ करता है, जो कि किसी बच्ची के दुलारभरे चुम्बन में और उसी के वय पाने पर वयस्क कपोलों के चुम्बन में होता है । जब यह स्नात् स्निग्धता भी और वयस्क कपोलों का स्पर्श भी पति के लिये जीवनदायी नहीं रहता, उस समय पत्नी का भावार्थ किस ठौर आश्रय ले ?

पति और पत्नी के बीच मानसिक विकार नहीं हुआ करते । बस, हो जाते हैं उनके क्षितिज अलग-अलग और इतने दूर कि उनके बीच किसी तरह का अपमान न पनपे । तब पत्नी का माधुर्य और उसके लावण्य की बयार मृतवत् हो जाती है और वह दम्पति इस धरती का सबसे अभागा महाकाव्य बन जाता है ! ऐसा महाकाव्य, जिसकी भाषा किसी भी सौभाग्य के शब्दकोष में खोजे नहीं मिल सकती ! !

कलकत्ता की एक कम्पनी का अधिकारी । मासिक वेतन सब-कुछ मिलाकर सात सौ से ऊपर बैठता है । घर में पत्नी । सात साला

पुत्री । अठारह साला पुत्री अपनी ससुराल में निजी स्वर्ग बसाये बैठी है । जब विवाह हुआ था इस अधिकारी का, उस समय मामूली किस्म का परिवार था । गाँव में रहा करते थे । उस हिसाब से यह दम्पति आज मौज लेता है । घर में नौकर है इसलिये पत्नी को आज हाथ से गिलास में पानी भरने का भी कष्ट नहीं करना पड़ता । किन्तु आज महानगरी के एक अभिशाप ने इसी गिरिस्ती को यंत्रणाओं से घेर लिया है और यह पत्नी रौरव कुहराम के महाकाव्य की मुख्य पात्री बनी हुई है ।

पति महोदय दिन निकले ही चाय पीकर आफिस चले जाते हैं और फिर रात को ग्यारह से पहले नहीं लौटते । देर रात को लौटने पर चौखट के अन्दर पैर रखते ही वे अपना कोट निकालते हैं और पत्नी की पूजा शुरू कर देते हैं इन शब्दों से, 'सूअर की पट्ठी, उल्लू की बच्ची, नालायक गधी, बेशऊर !' और इतने जोर से चीखते हैं कि बाड़ी के हजार आदमी जान जाते हैं कि यह दुष्ट अपनी पत्नी की आरती उतार रहा है ! अपमान का सिलसिला बस यहीं भर नहीं है । जो नौकर हैं, वे भी अपनी इस मालकिन को किसी भी क्षण बदज़बान से अपमानित करते रहते हैं । गुस्से में पतिदेव नौकरों से कह दिया करते हैं कि इस हरामजादी का कोई काम न किया करो । उन्हें जब अपमान की सीमातीत घृणा उपजती है तो घर पर वे साग-सब्जी तक नहीं भिजवाते और खुद होटल में जाकर भोजन कर आते हैं ।

वह आठ वर्ष की कन्या यह सब देखती है और चुप रहती है । चल रहा है यह नारकीय जीवन इस दम्पति का पिछले तीन सालों से । इस दौरान में पतिदेव ने न जाने कितनी वेश्याओं के तलुवे चाटे होंगे, न जाने कितनी नर्तकियों के आगे कदमबोसी का इजहार किया होगा, और किया होगा अपनी इस पत्नी के खून का बेइन्तहा पानी । कभी-कभी तो गालियों का दौर रात के तीन बजे तक चलता रहता है । बेचारी

रोज ही अपनी इस पूजा को चुप सिसकियों में दबा कर सहन करती है और मूक अश्रुओं में सारा अपमान पी जाती है। भला, अपनी सहेलियों-पड़ोसिनों के कानों में अपने ही पति का अपमान पड़ता रहे तो वह उनके सामने क्या मुँह लेकर जाये। लेकिन जहाँ पति निर्लज्जता से अपमान करने लगे, तो वह सब जगह जाना-पहचाना हो जाये, यह भी अच्छा है। फिर भी इस कसाईखाने की प्रौढ़ा गाय-रूप यह पत्नी इस दैनिक अपमान-ज्वाला से पीड़ित अब रोती कम है, अंदर ही अन्दर कुढ़ती अधिक है। उसे लगता है, उसका यह ग्रामीण पति अब बड़े शहरों में रहता हुआ शहरी हो गया है और मैं वही ग्रामीण अनपढ़ी, बेशऊर स्त्री रह गई हूँ। क्या यह सचमुच मुझे सदा के लिये अलग कर बरबाद कर देगा ?

इसके अलावा वह अन्यान्य कसाईयाना वारदातें करता रहता है। उसमें एक यह है—

जनाब साहब के एक भाई थे सगे छोटे। उसकी पत्नी अब बेवा हो हो चुकी है। शुरू के वैधव्य के अरसे में वह आपके पास रही थी। उसके नखशिख जरा अपनी इस पत्नी से इक्कीस नहीं, इक्तीस है। जिन दिनों वह यहाँ रह रही थी, उसका निपट परिणाम यह रहा था कि इन दोनों देवरानी-जेठानी में मारपीट की नौबत आई थी। पड़ोसिनें बड़े मजे लेकर सुनाया करती हैं कि एक दिन दोनों के बीच जूता-बाजार भी चला था। इस सब नारकीय चिता-व्यापार में पति का पक्ष उस विध्वा प्रेयसी की तरफ था और वे चाहते थे कि उन की यह बेशऊर, एक आँख की कानी औरत की चिता किसी तरह जल्दी जल जाये, वही अत्युत्तम !

जी, एक तो इस पत्नीके मुखपर चेचकके दाग; दूसरे एक आँखसे कानी। वैसे पति देवताने न जाने किन क्षणोमें पत्थर की एक आँख बनवा दी है और सोनेकी फ्रेमका चश्मा भी लिवा दिया है। लेकिन, जब पति

को कामजनित उत्तेजक ज्वाल का 'हिस्टीरिया' चढता हे तो वह उरा विधवा नारी को दिल्ली मे यहाँ कलकत्ता बुलवा लेता हे और किसी होटल मे ठहराकर उसके साथ रगरेलियाँ मनाता है। जो भी आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र उसने इस पत्नी को ला कर दिये हे, वह सब छीन लेता है और उस प्रेयसी के चरणो मे अपनी विनम्र भेट चढा आता है............और घर आ कर चीखता है, "अरे अभागी ओरत! तू चली जा मेरे यहाँ से। नही जरूरत है मुझे तेरी। अगर तू यहा रहे तो रह, पर तेरी छोटी देवरानी को भी यहाँ आ कर रहने दे।"

इस तरह इस सबल पुरुष ने अपमान की चरम सीमा कर रखी है इन दिनो, ताकि यह पत्नी तग आ कर अपने पीहर चली जाये। पर यह पत्नी अपनी सहेलियो से गुरुमंत्र पाती रहती है कि यही डटी रहे। और, इसी निमित्त अब उसने अपने इहलोक के देवता को प्रसन्न करने के लिये दो समय आरती-पूजा करना शुरू कर दिया है। पास-पड़ोस के कीर्तन मे भाग लेने जाने लगी है। लेकिन, आज सुबह ही वह पुरुष अपनी इस अट्ठाइस साला पुरानी, बेरस और बेसलीके की पत्नी को कह गया है, "हरामजादी, सूअर की पट्ठी, उल्लू की बच्ची! मत भेजना खाना मेरे पास। मै होटल मे खा लूँगा। शाम तक फैसला कर ले कि तुझे कहाँ रहना है?........"

और इतने सम्पन्न पति की अभागी पत्नी रो रही है कि अगर आज यहाँ से चली ही जाती है तो उसके पास फूटी कौड़ी भी कहाँ रहेगी? भविष्य में खर्च के लिये! अरे, यह क्या है कि वह अपने खास पति से इस पकी उमर मे अलग काटी जा रही है.......

आज सुबह से अब रात तक वह रोती रही है। इसके अतिरिक्त, रंभाने के सिवाय, और चारा भी क्या है? पति महोदय आये देर रात मे। अपनी छोटी भाभी के वैधव्य का अतिक्रमण कर, अपने आर्थिक संरक्षण की मधुरतम कीमत वसूल कर आये थे। जमीन पर सुबकती

हुई, हिचकियाँ लेती हुई सुबह से भूखी पत्नी के प्रति आप का दिल न पसीजा। उल्टे क्रोध उमड़ा और जोर से दहाड़ते हुए बोले, "अरी नमकहराम, तुझे मेरा नमक कब पचेगा?"

ओहः पत्नी को पति का नमक पचना आवश्यक है? अन्यथा, वह नमकहराम करार दी जानी आवश्यक है?

नमकहराम नौकर घर से धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता है। नमकहराम मंत्री या वज़ीर क़ैद कर जेल में ठूँस दिया जाता है। नमकहराम क्लर्क नौकरीसे बर्खास्त कर दिया जाता है। लेकिन पत्नी पतिका नमक हराम करे तो वह समाजके किस एकांत में जाकर अपनी नमकहरामी की सजा भुगते, प्रायश्चित् करे और उस दंडकी कैद भोगे?

क्या इस तरह ऐसी पत्नियों की कैद वैसी संदूकची नहीं बन जायेगी, जिसमें एक घर-भर की पुरानी जूतियाँ बन्द कर रख दी जाया करती हैं ताकि उनकी अशोभा से घर की शोभा पर अपशकुन की छाया न पड़े!

'पर सोचना तो यह भी है कि जब गिरिस्ती के बल्ब फ्यूज्ड हो जायें तो वहाँ अँधेरा क्यों बना रहे? क्यों नहीं, वहाँ नये बल्ब फिट करने का होश किसी को आता?'—ऐसा एक प्रगतिशील सुधारक महोदय का तर्क है।

आहः एक पत्नी का मूल्य सिर्फ कुछ घंटों जलने वाले बल्ब की मानिन्द ही अब रह जायेगा समाज में? एक बल्ब का जीवन सिर्फ ९० या १०० घंटे होता है लेकिन एक पत्नी का जीवन कम-से-कम ५० वर्ष तो होता ही है।

इसीलिये उक्त अभागी पत्नी रो रही है और हिचकियाँ लेकर अधिकाधिक रोनेके लिये अपनी छातीतक चीरकर रख देना चाहती है............

[९]

जिन नदियों का धर्म प्रतिवर्ष उग्ररूप धारणकर सैकड़ों-सहस्त्रों ग्रामवासियों, मवेशियों और खेतों को अपने भक्षी आलिंगन में ग्रसित कर लेना है, उसके किनारे रहनेवाले प्राणी वर्ष-पर्यंत किस साहस से अपने दिन काटते हैं, उसका अंदाजा यहाँ शब्दबद्ध नहीं किया जा सकता। वह तो उनके निवास और प्रवास को देखने से ही अनुभूत होता है। न सिर्फ एक व्यक्ति, बल्कि परिवार के परिवार, गाँव के गाँव सर पर कफन बाँध कर उसी स्थान पर जीवित रहे जाने की जिद्द पर कायम रहते हैं, डट कर उस स्थान का मोह नहीं छोड़ते, क्यों कि वहीं पर उनके पुरखों ने अपने प्राण होमे थे.........

इतनी बात आपको अपना मंतव्य स्पष्ट करने के लिये बताई गई। अपने घर से रूढ़ संस्कारों को अविस्मरणीय मंत्र की गाँठ सा बाँधे हुये एक पत्नी पत्नी-भक्ति का व्रत निभाने आती है। वह जब विब्वा-सी अँखियन के नीर की बाढ़ के किनारे अपनी तृप्त श्वासों का धूम-यज्ञ करते हुये पति के चरणों में ध्यान-मग्न रहती है, तो उसकी वह जिद्द उक्त ग्रामवासियों सी ही है। क्योंकि उसकी माँ, उसकी भाभियाँ, उसकी बहनें इसी तरह अपना विवाहित जीवन बिताती रही हैं, इसीलिये उसके वास्ते भी यही एकमात्र श्रेयष्कर मार्ग है। यही सतियों का मार्ग रहा है। चाहे दाम्पत्यकी गुफा में पूरी तरह प्रविष्ठ होकर दाम्पत्य के देवता के दर्शन न हों, लेकिन उस गुफा के द्वार पर जैसे पहुँच कर मन ही मन उस अदृष्ट देवता को नमस्कार कर लेना भी क्या कम है?

किन्तु जहाँ बाढ़ का भय नहीं है, जहाँ अन्य दैवी आशंकाओं का व्यामोह नहीं है, वहाँ सहसा ही चलती ट्रेन का डिब्बा ऊपर से नदी में गिर पड़े, वहाँ पानी के ऊपर अपने प्राणों को समेटे हुए एक नारी क्या करे? यदि वह निस्सहाय अवस्था

म उस नदी में कूद कर अपने भयातुर दिल को परम शाँति दे ले, इसमें उसका क्या अपराध है? इसी तरह जो निडर, साहसी, नई रोशनी के संस्कारों से बलिष्ठ नववधु पति के शुरूवात वाले अपमान से ही तैयार नहीं है कि जीवित विध्वा-सा जीवन बिताये और तैयार है, कि जीवन का अन्त कर ले, तो क्या उसकी सामाजिक असमर्थता पर आप दो आँसू बहाने में भी कंजूसी दिखायेंगे?

यू० पी० का एक नगर। नगर के बीच में एक पंसारी की दुकान। तराजू की डंडी मार-मार कर जो ईमानदारी (?) का व्यापार करते हैं और जिस कमाई के दम पर, जिसने अपने अकेले बेटे की शादी के अवसर पर, सीमातीत धूमधाम के साथ शहनाई बजवाई, नगाड़ा गड़-गड़ाया और जब बारात लड़कीवाले के यहाँ पहुँची, तो जितना खर्च अपनी शानका निभाव करनेके लिये हुआ था, मूँछोंमें बल डालते हुये डरा-धमका कर उसे समधीसे वसूल कर लिया। और भी रस्मोंपर यही धमकियाँ देते रहे कि यह दो, इतना दो, इत ना देना ही होगा, अन्यथा..... अन्यथा हम तुम्हारी लड़की को कबूल करने से इंकार करते हैं। खैर, कुछ प्रचलित रीतियाँ हैं समाज के घिनौने दायरे में, जिसे आज हम पूरा करवाते हैं, तो कल उसे ही हम पूरा करने को बाध्य भी होते हैं। सौ अन्य बातें भी हुईं। तकरार भी बढ़ी। लानत-मलामत भी दिलाई गई। लड़की वाले तो अपने घर ही रह गये, लेकिन वह लड़की, जिसके कारण यह कड़वा तमाशा रचा गया, अपने भाग्य पर दो आँसू बहाती हुई इस विश्वासकी एक झीनी किरणका सहारा लिये चली आई ससुराल, कि जिस पतिने मंडपके नीचे फेरोंकी घड़ीमें उसकी हथेली पर चुटकी काटी थी, वही तो मेरे जीवन का वृहद् छत्र है, वही तो मेरे जीवन की मिठास है!

दिन में सास उससे अपने तलुवे सहलाती, घर का सारा चौका-बरतन

कराती और तानों-फटकारों से उसका जी छीलती रहती। रात उसे मादा : निरी मादा, समझ कर पति देव उसका रसास्वादन करते।

उन्होंने कभी उचित नहीं समझा कि कि उस से एक आध दिल की, प्यार की, आगे-पीछे की बात करें। वह अबोध लड़की वधु के वेश में कैदी बनी हुई थी और रोज अपना दिन मूक आहों को निःशब्द करते हुये निकाल रही थी। एक दिन उसने साहस कर अपने पति के दिल पर अपना प्यारा चाँद-सा मुखड़ा रखकर अनुनय की कि आपकी माताजी नाहक मुझे ताने देती रहती हैं। जो भी बन पड़ा, हमारे पीहर वालों ने किया। कोई कर्ज लेकर तो किसी को दिया जाता नहीं। पति देव उस समय वासना में अत्यधिक वशीभूत थे। यह अनुनय नहीं समझ सके। पर सुबह उठते ही आपने माता के भक्त-पुत्र होने का यह प्रमाण दिया कि पहले उस पराई, तनिक परिचिता लड़की को खूब भला-बुरा कहा, उसके माँ-बाप को भला-बुरा कहा और फिर उसकी पीठ में तीन चार लातें जमाई और इसके सुर्ख मृदु गालों पर यही पाँच-सात थप्पड़।

उस दिन दुपहर में उस निरपराधिनी वधु ने किवाड़ बंद किये..... चार बजे पता चला कि अपने ऊपर किरासिन का तेल छिड़क कर उसने माचिस लगा ली है और जल मरी है !

देश के बीस हजार मीलों का लम्बा रास्ता तै करते हुए मैंने इस तरह जली हुई वधुओं के कई किस्से पढ़े-सुने हैं। एक जलती हुई लाश अपनी आँखों से भी देखी है। कितनी यंत्रणा को लेकर उसने सीता से भी कठोर अग्नि-परीक्षा दी थी, उसकी कल्पना-मात्र से मैं सहम जाता हूँ, काँप जाता हूँ !

बारह-तेरह वर्षों तक एक सुकुमारी अपनी सखियों के संग अपना गोपन सरस से सरसतम बनाते हुये न जाने कितने सपने देखती है ? अपने स्वप्न-पिया के संग वह काल्पनिक रूप से न जाने कितनी मनःहर रातें बिताती है। गुड़ियों और गुड्डों का ब्याह रचाते हुये वह अपनी

और उसने मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा ली। कितनी यंत्रणा को लेकर उसने सीता से भी कठोर अग्नि-परीक्षा दी थी! (पृष्ठ ११३)

पुतलियों के स्तर पर अपना ही ब्याह साकार करती रहती है। चुपके-चुपके अपने पिया के लिये वह न जाने कितने कशीदों के तकिये और रूमाल काढ़ती है। पुस्तकें पढ़ते हुये, उपन्यास पढ़ते हुये वह सुखद अंतों को हृदयंगम् करती जाती है, दुखद अंतों के लिये प्रतिज्ञा करती है और रूपरेखा बनाती है कि उसके जीवन में कैसा भी 'ट्रेजिक-इंसीडेंट' न आने पावे। बाजार में निकलती है तो उसके सामने एक काल्पनिक युवक चलता रहता है और अपनी सुध बिसारे हुये बस यही सोचती चलती है कि वह किस प्रकार 'उन' के साथ मार्केटिंक करेगी और किस तरह सुबह-सायं 'उनके' संग भ्रमण करने जाया करेगी....... कि उसे पता चलता है कि उसका 'सैयाँ' उसके पिता ने चुन लिया है। सामने तिजोरी में जो अंगूठी बनी तैयार रखी है उस युवक के टीके के अवसर पर भेजने के लिये, वह छिप-छिप कर उस अँगूठी को देखती है और उसे अपने स्निग्ध अछूते कपोलों का स्पर्श देती है !........बेचैनी से दिन काटते हुये बरात आने की तिथि भी सिर पर चढ़ आती है तो वह बारह घंटे बस कैसे कटते हैं कि जो फेरे के दिन छाती पर मन-पक्के वजनी से रखे रहते हैं ?

सेहरा बाँधे हुये उसका वर विवाह-मंडप में गँठजोड़े के समय जिस दशा में उसकी अछूती नग्न हथेली में चुपके से एक चिकोटी काट लेता है, तो प्रेम का यह प्रथम अभयदान पा कर वह नव-वयस्का निहाल हो जाती है, विभोर हो जाती है, अतिरेकानंद से बेहोश तक होने लगती है ! अपने सौभाग्य को इतना टकसाली समझ कर उसका अवगुंठन कमल के अंदर बंद भौंरे-सा गुंजरित हो जाता है और वह बस, अपने को धन्य मानने लगती है.....।

लेकिन, उसी युवक-पति के हाथों ससुराल में जरा सी ठेस पाते ही वह अपने को जीवित जला डालती है और अपने उस चर्म को भी राख बना डालती है, जिस चर्म के लिये उसे घर में मादा के तौर पर रखा जाता है !

पत्नी सिर्फ मादा है ? बिना मस्तिष्क, बिना दिल। बिना मन, बिना कसक- तड़पन वाली मादा ?

[१०]

निश्चय ही वह नव-वधु नव-पति के प्रांगण में मादा बन कर कभी नहीं आती। वह पति के पतीत्व पर, उसके पौरुष पर एक जयमाल बन कर आती है ! उसके पौरुष की काठिन्यता में हिलोरें लेने वाली लहर बन कर हुमसने आती है और उसकी आत्मा को नया प्रकाश देने लगती है।

इस जयमालका वरण आपने किन क्षणों के अपूर्व हर्ष से किया है, उसकी सुखानुभूति अभिव्यक्त की ही न जाये, इसी में शुभ है। किन्तु सामाजिक स्तरपर उस हर्षके प्रति एक अभिनंदन किस तरह प्रस्तुत किया जाता, उसकी एक झलक दे देने का लोभ संवरण नहीं हो पा रहा है। लोभ तो यह भी है कि वह दाम्पत्य बारीक किरोशियेसे किस भाँति कशीदाकारीके बेलबूटों के रूप में गुँथा जाता है, उसकी अतिशय मोहकता भी ब्योरेवार सुना दी जाये :

भारतीय घरों में मान्यता है कि जब वधु पहली बार ससुराल आती है तो अपने घूँघट में अनुपम रहस्यमयी बन कर आती है। उसी दिन पास-पड़ोस, मुहल्ले भर की स्त्रियाँ एकत्र होती हैं। बारी बारी से वे वधु का घूँघट उठा-उठा कर उसका रूप-दर्शन करती हैं और उस दर्शन-लाभ के पुरस्कार-स्वरूप एक-एक या दो-दो रुपया वधु की खुली नग्न हथेली (!) में रखती जाती हैं। यह दीर्घ तारतम्य सदियों से चला आ रहा है। यह इतना रुचिकर है कि अगर कोई नाते-रिश्तेदार किसी की वधु को कई साल बाद भी प्रथम बार देखता है तो प्रथम रूप-दर्शन के एवज में मुँह-दिखाई की कुछ भेंट भी चढ़ाता है।

पतिदेव से ज्यादा देर बरदाश्त नहीं हो रही थी और उन्होंने कसकर घूंघट को जबरदस्ती हटाते हुए उसके गालों पर एक गहरा थप्पड़ जमा दिया !

8

(पृष्ठ १२०)

सप्त-स्वरों की प्रमिल अँगड़ाई। मदिर वय की शुभ्र कलिका। गिरिस्ती की पुरानी गीतिका की नव स्वर-लहरी। लतिका-सी देह की नैसर्गिक वर्त्तिका। इस रूप में वधु जब पहली बार किसी गिरिस्ती में आती है तो अन्य महिलायें उसका रूपदर्शन करती हैं, इसका आशय यही है कि वे अपनी गिरिस्ती में किसी नई मानवी के अवतार से अपने को धन्य करती हैं। अवतार विराट रूप लेकर अवतरित हुआ करते थे। लेकिन गिरिस्तियों में तो आतुर प्रतीक्षा के बाद उसी दिन अवतार प्रकट हो जाता है जिस दिन किसी अपरिचित स्वर्ग की एक मानवी उनके यहाँ पर नई सृष्टि करने के लिये अपने पायल की पैजनियाँ बजाती हुई घूँघट में सजी-सँवरी आ जाती है। उस दिन सारा घर जिस खुशी से मस्त होता है, उस खुशी का मूल्य किसी देवता के पास नहीं हो सकेगा। चाँदी के रुपये का पुरस्कार उस रूपदर्शन के एवज में मात्र इसी कोमल भावना को प्रमुदित करने के लिये दिया जाता है कि यह यौवना वधु अपने रूप को जब-जब अपने पति के सामने पट-मुक्त करे, तब-तब पति वह चाँदी के अंतस की अमिट चिलक ही पाये! चाँदी के अंतस की अमिट चिलक। आप जब-जब चाँदी पर छेनीकी काट करेंगे, उसमें से सदैव एक नई चमचमाहट दमकती हुई मिलेगी।

बनाई होगी किसी सूक्ष्म दृष्टा तपस्वी पति ने यह प्रथा अपनी रसीली प्रेयसी के लिये और युगों तक आने वाली अपनी सन्तति की हृदयाँगनाओं के लिए। लेकिन कितने पति हैं जो इस सनातन प्रथा की रूप-वीणा के स्वर साधते हैं? कितने पति हैं जो दिन में अपनी पत्नी के हर बार दर्शन करने पर उसे कोई प्यारमयी पुरस्कारभरी चितवन देते हों?

कहानी सहारनपुर के पास एक शहर की है। एक एफ० ए० पास-शुदा लड़के के लिये तकदीर से एक बी० ए० पास लड़की मिल गई।

वधु ससुराल आ गई। दिन भर बहू की मुंह-दिखाई हुई। सास निढाल थी कि उसे बहू की मुँह-दिखाई में पूरे पौन दो सौ रुपये बरामद हुए थे। रात पतिदेव ने अपनी प्रियतमा की मुँह-दिखाई अपने पूर्व-नियोजित ढंग पर उसे एक कीमती अंगूठी पहना कर की। पर सलज्ज पत्नी अपने घूंघट में दबी-छिपी तुसी-मुसी बैठी रही। पति इस ख्याल से कि कालेज की यह षोड़शी साहित्यिका होगी, उसे छत पर पूर्णमासी के चन्द्र की शीतल चाँदनी में खुले बैठा कर, पहले ग़ालिब की कुछ रूबाइयाँ सुनाईं, फिर बिहारी के कुछ दोहे सुनाये। वह चेष्टा करता रहा कि इसके अंतर की शरमीली कलिका का स्पंदन जाग्रत हो और यह अपना घूंघट निर्द्वन्द करे तो वह अपनी इस रूपसि के यौवन को सुहाग की लाली से चर्चित कर आज सुहाग के सुनहले सिंहासन पर बिठा दे। फिर उस को महाकवि कीट्स और उसके उपरांत शैली और कुछ टैगोर के और कुछ कालिदास के श्लोक सुनाये। वह नवांगना अपन घूंघट में नीची पलकें बैठी रही और शायद अपनी प्रीत के इस नये मीत की यह उच्चस्तरीय गुहार गंभीर भाव से पीती रही। पति देवता को काव्य की यह आरती करते हुए बीत गये दो घंटे।

इस समय रात के दो बजे थे। आरती के बाद वंदना प्रारंभ हुई। उसने गद्य-गीत के कुछ कंठस्थ वाक्य दुहराने शुरू किये। "हे मेरी प्रियतमे! अपना घूंघट खोलो, यह पूर्णमासी का चाँद भी व्याकुल है तुम्हारे दर्शन के लिये।" और इस प्रकार, इस प्रकार। पर उस देवि का अवगुण्ठन न खुला, तो न खुला। तब पति ने साहस कर उसका आँगिक स्पर्श किया और उसे अपने पौरुष के स्पर्श से पुलकित करना चाहा, पर फिर भी वह गठित बैठी रही।

कि दूर कोतवाली के घड़ियाल ने तीन बजाये। जैसे-तैसे अपने हाथों खड़ा कर वे वर महोदय उसे अपन एकांत कमरे में लाये। वहाँ भी उसने अनेक प्यार के उलाहने दिये और बताया कि मैं बाईस

साला से सिर्फ तुम्हारी ही राह देख रहा हू । अब इस तरह मुझे और अधिक आतुर न बनाओ । वह कालेज की शिक्षिता युवती न जाने क्यो अपनी लाज न छोड पाई कि उसका मस्तक से रह गया, छाती पर उसके साप लोट गया, उसके गाल सहम गये । उसका रोम-रोम काप उठा और उसकी आखो से अश्रु बल्लाल निकल आये । पतिदेव से ज्यादा देर बरदाश्त नही हो रही थी और उन्होने कस कर घघट को जबर-दस्ती हटाते हुये उसके गालो पर एक गहरा थप्पड जमा दिया ! और तपाक से कमरे से भाग कर कही जा छिपे ।

सुहागरात्रि के दिन जिस वधु ने इतना कर्कश थप्पड खाया हो, उसे किन शब्दो म अपने हृदय की सात्वना द ? देवि, न रोओ ! तुम आजीवन इसी अपक्व-बुद्धि युवक के साथ रहने आई हो । इसने कवियो की रसिकता ही रटी है अभी तक, नारी के हृदय की निगूढ भाषा इसे पढना तुम सिखाओ, तो आनेवाली सन्तति का तुम महान उपकार करोगी । हो सकता है कि इस युवक का उठा हुआ हाथ आगे भी तुम्हारे कमसिन गालो की ललाई की लाज को अपदस्थ कर थप्पड मारता रहे । पर उन प्राप्त-थप्पडो को तुम कच्ची बुद्धि के पति का कच्चा प्यार ही समझना । पका हुआ प्यार वह उस दिन देगा, जिस दिन तुम्हारा रूप दर्शन करते ही वह अपना हृदय तुम्हारे चरणो मे फूल-सा बिछा दिया करेगा ! बिछायेगा जरूर, यह मेरा आश्वासन लो ! !

लेकिन कैसा आश्वासन ? वह वधु इस समय फूट कर रो उठी है और घर की सभी अतिरिक्त महिलाये उसे घेर कर बैठ गई है कि क्या हुआ ? वह क्या बताये कि क्या हुआ ?

[११]

कहावत है कि धैर्य से छलनी मे भी पानी रोका जा सकता है । क्या धैर्य से उक्त नववधु उस थप्पड की छलनी मे से अपने दाम्पत्य की स्निग्ध शुचि तरलता को रिसने से रोक सकेगी ?

नहीं है सरोकार उसे इस समय किसी भी मनुहार से। हड्डी-पसली तुड़ाई हुई वह पत्नी चिथी-चिथाई लाश-सी बैठी है। पर उस युवक ने नियमित प्रेमाभिनय किया और कहा, "तुम्हारे चरणों पर पड़ता हूँ, क्षमा कर दो।" (पृष्ठ १२७)

हमारे भारतीय परिवारों में ही नहीं, विश्व के परिवारों में सुहागरात्रि के क्षण से लेकर दाम्पत्य के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और फिर, किसी भी वर्ष में पत्नी के नैनों से अश्रुओं की गंगा प्रवाहित होने की नौबत पा जाती है, उस नीर को किस छलनी से छनने से रोका जा सकता है ?

और यौवन स्वयं किस छलनी से छनने से रोका जा सकता है ? आये दिन बोल-चाल में हम सुनते रहते हैं कि किसी का यौवन ढल रहा है ? किसी की जवानी बह रही है। किसी का रूप उतर रहा है। विचित्र शब्दावली है यह। अर्थहीन !

यौवन सृष्टि के लाखों वर्षों में आज तक नहीं ढला है। पत्तियों के अनुरूप उसका वृक्ष हर परिवार में सदा लहराता रहा है। उसका अपहरण अवश्य हुआ है। जवानी का भी अपहरण किया गया है और.......रुपहली ज़री के वस्त्रों के ऊपर सुनहली ज़री के वस्त्रों सा...........किसी के रूप को भी किसी ने अपने ऊपर थोप लिया है ! अन्यथा, जब तक होश कायम रहता है, सतर्क लोग सतत् चेष्टा करते रहते हैं कि उनका कुछ भी तत्व नियति की छलनी से न छनने पाये। कम से-कम पत्नी के प्रति उनका प्रेम तो किसी भी शर्त पर नहीं। चाहे वह चेष्टा मूर्खतापूर्ण हो या शिष्टतापूर्ण। पर घर-घर में इसीका तारतम्य चल रहा है। चलता रहता है।

सशक्त और ज़हरीले डंक से सशस्त्र मधुमक्खी का मधु मानवता के लिये अमृत तभी तो हो पाता है कि वह छत्ते से छन कर नीचे चू आ जाये। जिस क्षण पत्थर-दिल शिकारी अग्नि से और उसके धुंवे से इन मधुमक्खियों को आहत कर, घायल कर छत्ते से मधु को कुरेद-कुरेद कर संचित कर रहा होता है, उस क्षण उस

आहत मधुमक्खी की उत्पीड़ा उसकी पुतलियों पर छिपी हुई गुमशुदा शव-सी तैर आती है.........

यौवन की अपनी शक्ति है और उसका अपना जहरीला डंक है। समाज ने इस डंक को काट देने का अपना उपाय बरता है। समाज यौवन को तरल बनाकर ऐसा मधु पेय बना देता है कि उसके पान से समाज की युवक-संतति पौष्ठिक तत्वों से सशस्त्र और संपुष्ठ हो जाती है। अपनी साक्षी और उपस्थिति में समाज जब दम्पति को रात्रि के सुखद क्षण जागरण के निमित्त भेंट कर आता है तो उस कर्त्तव्य-जनित आदेश को सिर माथे लेते हुए पति और पत्नी उस रात्रि के अँधियारे को अपने यौवन की दीप्त श्वासों से समुज्ज्वल कर पृथ्वी का प्रखरतम प्रकाश अपने एकांत में विजय-ध्वज-सा स्थायी रूप से गाड़ देते हैं। स्थिर कर देते हैं। उन स्थूल क्षणों में भ्रम होता है कि यौवन की बूँद-बूँद, तरुणाई के कण-कण रिसने लग जाते हैं। छिटकने लग जाते हैं। किन्तु इस बात को, शायद इस आशय से कहा जाता है कि एक बार पानी से बोझिल बदलियाँ इस बार बरस कर संभवतः आगामी वर्ष फिर न बरस सकेंगी। किंतु यह आशय तो मंतव्य-हीन है।

उपक्रम यह यों होता है कि प्रकृति जब नारी का रूप धारण कर लेती है तो नियति अपने हाथों की विराट छलनी में किसी का मधु छान कर किसी और को उसका अर्घ्य चढ़ा दिया करती है। इन दिनों क्योंकि हमारी आँखों पर अब स्थायी रूप से चरबी चढ़ी रहती है और दिव्य-दृष्टि का सर्वथा अभाव छा गया है, हम समझते हैं कि किसी का यौवन जो इस वर्ष शेष हो रहा है, वह बस, सदा के लिये शेष हो रहा है!

इसके विपरीत, सत्य यह है---पुरुष के अंक में समाधिस्थ होकर 'प्रकृति' की अंध दृष्टि नवयुग के एक नये क्षितिज पर

अवतरित होती है। उसी की धुंधलिमा (जो कि वास्तव में हमारी अपनी दृष्टि का दोष है) का सामाजिक अर्थ यह प्रचलित हो गया है कि किसी का रूप उतर रहा है, किसी की जवानी ढल रही है।

आइये, इस पति की चेष्टा भी देखिये। असमय ढलती हुई जवानी का एक अलभ्य उदाहरण है। इसे शब्दबद्ध करने के लिये मुझे एकांकी के रूप में इसे प्रस्तुत करना होगा। दिल्ली में छप्पर-वाला कुआँ। उसी के मुहल्ले का एक घर। हम एक कमरे में बैठे हैं। दिन के दस बजे हैं। पड़ोस के कमरे से आवाज आती है एक पुरुष की, "अरी सूअर की औलाद, सूअर की बच्ची, किस हरामखोर बाप ने तुझे पैदा किया था कि तुझे इतनी तमीज भी नहीं कि मेरे कमीज के बटन भी टाँक दे। और कह दिया था कि रोज मेरे जूतों में पालिश कर लिया करना। पर नहीं, इसे पालिश का ब्रुश हाथ में लेते हुए मौत आती है। पर न जाने पिछले जीवन में मैंने कौन-से पाप किये थे कि तू मेरे गले में टँग गई है। अरी उल्लू की पट्ठी, नहीं खाना तेरा खाना मुझे। तू बस रहम खा मुझ पर और अपनी माँ के पेट में दुबारा समा जा। अरी सूअर की बच्ची, नमकहराम, बदजात, गधी, उल्लू की पट्ठी, कोढ़ पड़े तेरे शरीर में.........।" और, शनैः शनैः एक आदमी के पैरों की ध्वनि जीनों पर उतरते हुए क्षीण हो जाती है। बस, किसी स्त्री की सुबकियाँ रह-रह कर आती रहती हैं।

दूसरा दृश्य। रात का समय। पड़ोस के कमरे से "प्यारी, तुम तो ख्वामख्वाह ही रूठ जाती हो, पति की बात का गुस्सा नहीं करना चाहिये, समझदार होकर क्यों रूठ जाती हो ?"

वह औरत अब भी सुबकियों में त्रस्त है। हिचकियाँ लेती हुई बोलती है, "बस.........बस.........मैं धाई, मैं तो नालायक की बच्ची हूँ, उल्लू की पट्ठी हूँ, गधी हूँ, तुम्हारे गले में नाहक टँग गई हूँ। रहने

दो..........मुझे न छेड़ो, किसी कुंये में डूब कर आपका पिंड जल्दी ही छोड़ दूंगी। तब अपनी मनचाही विलायती मेम ले आना।"

पुरुष, जो कि युवक है, "नहीं, वह तो मैंने गुस्से में यूँही बक दिया था। तू मेरी अपनी है, प्यारी सजनी है, तेरे ऊपर कहेगी तो कितनी नई दिल्ली की छबीलियाँ वार दूँ! तेरे प्रेम के न मिलने से मेरी साँस रुकी जा रही है। सच कहता हूँ।"

शनैः शनैः सुबकियाँ रुकती हैं। मैं दीवार के सूराख से देखता हूँ कि क्या होता है? वह युवक अपनी उस अनादृत पत्नी के गुदगुदी करने लगता है और वह बरबस हँस पड़ती है और उसी समय उस कमरे का चिराग गुल कर दिया जाता है।

दूसरे दिन वही दिन के दस बजे। उसी तरह वह पुरुष गालियों की तावड़तोड़ बौछार अपने गले से उगल रहा है और वह तरुणी उसी तरह सुबकियों से छिली जा रही है, तड़प-तड़प कर मरती जा रही है और दबे स्वर से अपने प्राणों को बरबस निकालने की चेष्टा से कलपती जा रही है। और फिर, कल की तरह से वह युवक 'चुड़ैल, गधी, मिट्टी की लौंदी'.........बखानता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतर जाता है।

फिर शाम होती है। फिर रात के दस बजते हैं। पड़ोस के कमरे से अब-तब लोटा या गिलास या थाली की ठनक सुनाई पड़ती है। चहुँ ओर निस्तब्धता छा जाती है और सुनाई पड़ता है कि युवक बोल रहा है फुसफुसाहट में,—"मेरी जान, मेरी पद्मिनी, मेरी सीते, मेरी राधा, मेरी रुक्मणी..........।"

कल वाली वही युवती हिचकियाँ लेती हुई कह रही है, फुफकार कर, "बस रहने दो, रोज़-रोज का यह क्लेश रहने दो। तुम्हें अपने काम-से-काम। और दिन निकलते ही मेरी जान हराम। मत हाथ लगाओ मुझे। वरना इसी समय अपनी छाती में छुरी भोंक लूँगी। बड़े आये मुझे अपनी राधा बनानेवाले। न जाने किस बुरी सायत में मेरे पिता

ने तुम्हारे साथ फेरे डलवाये थे। राक्षसों का-सा दिल रखकर आये हैं गिरिस्ती बसाने..........।"

और, मैं चुपके से सुराख में देखता हूं कि वह युवक अपनी बाहों में जबरदस्ती उस मैली साड़ी में लिपटी हुई सत्रह साल की युवती को उठा लेता है। बरबस उसकी कमर में गुदगुदी करता है। बड़े प्यार से उसके केशों की लटों को सुलझाता है, जेब से इत्र निकाल कर उस के जम्फर में लगाता है और वह युवती विभोर होकर खिलखिला पड़ती है।

रात और दिन। सप्ताह की सात रातें और दिन। महीने की तीस रातें और दिन इसी तरह से गालियों और प्रदर्शित मौखिक प्रेम में बीत रहे हैं कि एक दिन, इतवार को दिन में उस युवक ने अपनी उस तरुणी पत्नी को डंडों से पीटा। खूब पीटा। इतना कि उस अबला की चीख-पुकार सुन कर सड़क पर चलते राहगीर भी रुक गये। और उनकी आँखों में आँसू छलछला आये.........

इसी दिन की रात भी नियमित तौर पर आई और उस युवक की नियमित प्रेमाभिनय की भूख भी निश्चित समय जगी। मैं सुराख से देखता हूँ कि हड्डी-पसली तुड़ाई हुई वह पत्नी चिथी-चिथाई लाश-सी औंधी पड़ी है। वह युवक बाजार से दोने में रसगुल्ले लाया है, कचौड़ी लाया है और लाया है चाँदी के वर्क़ में लिपटा कर दो पान के बीड़े। कुर्सी पर बैठकर बोलता है, "रानी, बीती को बिसार दो, जब मेरा मूड खराब होता है, तो तुम मुझे मत कहा-सुना करो...रानी!"

पर वह पत्नी-नाम्नी अबला आज चुप है और सुन लेती है। आज तो उसकी वाणी भी आहत हो चुकी है। उसे जबरदस्ती उठा कर वह अपनी बाहों के सहारे बैठाता है और पानी से उसका मुंह पोंछता है। आँसुओं से वह इतनी पीड़िता लग रही थी कि मेरा सारा दिल हिल गया है। तब उसके केश ठीक करता है और उसके माथे पर रेशमी रूमाल सँवारता है। वह आँख बंद किये चुप बैठी है और जैसे उसमें इस समय

दभ नहीं है। नहीं है सरोकार उसे इस समय किसी भी मनुहार से। तब उसे जैसे-तैसे खड़ा कर वह युवक बाजार से इसी समय खरीद कर लाई गई रेशमी साड़ी को, उसकी मैली साड़ी उतार कर, बाँधता है और उसे अपने हाथों नया बनारसी जम्पर भी पहनाता है। तब उसे नई चद्दर से विभूषित शैया पर लिटाता है और हाथ जोड़ कर अनुनय करता है कि यह रसगुल्ला खा लो। वह चुप है और नेत्र बंद किये है। वह एक रसगुल्ला उसके मुँह में अनायास रख देता है। पर वह चुप है और साँस साधे लेटी है। पति उसके चरणों को सहलाता है और हल्के-से बोलता है, "तुम्हारे चरणों पड़ता हूँ, मुझे क्षमा कर दो। यह रसगुल्ला खा लो।

मानिनी का मान है कि मजाक है! जो हल्की-सी बुझी-बुझाई आँच से पिघल जाये? मानिनी का सूर्य किसी पृथ्वी की परिधि की परिक्रमा का कायल नहीं है कि उसे चमकना ही होगा। अरे, उसे चमकाने के लिये महायज्ञ करना पड़ता है। इसी महायज्ञ में रात के दो पहर बीत गये और घड़ी ने एक बजाया। आखिर मानिनी ने आँखें खोलीं और उसने रसगुल्ला एक ही नहीं खाया, चार रसगुल्ले खाये। पतिके हाथों रबड़ी भी खाई। तब दोनों ने एक-एक गिलास केशर का दूध भी पिया और फिर चाँदी के वर्क वाले पान भी दोनों ने चबाये। तब पति को साहस हुआ। आज नया प्रेमाभिनय किया, "रानी, तू नाराज हो जायेगी तो मेरी दुनिया बर्बाद हो जायेगी। तू ही तो इस दुनिया में मेरी पत्नी है, मेरी बहन है, मेरी माँ है और.........।"

और, मैं उस सुराख से हट जाता हूँ। इस युवक पर क्रोध कर मैं अपनी सहिष्णुता का अपमान न करूँगा। यह युवक उन सबका अभिनंदनीय है, जो कि नारी को चीन्हना तक भूल गये हैं। धन्य है यह युवक, जो कि अपने दाम्पत्य का एक भी क्षण होश रहते नहीं छनने

छनना चाहता नियति की मायाविनी छलनी से । सच मानिये, इस युवक की यह कशमकश लाख बार गनीमत है ।

[१२]

किन्तु गनीमत कह भर देने से काम नहीं चलता है । भावुकता टूटते अशक्त जीवन की लाठी कब बन सकती है ? दाम्पत्य दिन का क्लेश, रात मन की मोज कब तक रह कर, इस पृथ्वी का त्रिशंकु बना रह सकेगा ? अभी इस दम्पति के कोई संतान नहीं हुई है, तब तक दिन में वह पत्नी अश्रुओं की बाढ़ में कभी न डूब सकेगी, क्योंकि रात उसे जो नियमित समय पर उबार लिया जाता है । पर यह अभिनय संतान के पैदा हो जाने के बाद क्या रूप धारण कर लेता है, उसकी दुखानुभूति भी लगे हाथों आप देख लीजिये । वहाँ अश्रुओं की बाढ़ रात में भी अपनी भयंकर कलकल का गर्जन करती ही रहती है ।

दहक-तेजाब को औषधि-रूप में प्रयोग करने के समय पानी डाल कर 'डायल्यूट' कर लिया जाता है । गली-कूचों में बैठने वाले डाक्टरों की तो दैनिक रोजी ही यह है कि वे बोतलों में फकत पानी भर कर और मामूली चुटकी भर दवाइयों को डायल्यूट कर अपनी जेबें भरते हैं । लेकिन गिरिस्ती में उल्टा होता है । अगर आप परिस्थितियों के थपेड़े से उग्र बने हुए अपने दाम्पत्य को ज्यादा डायल्यूट (जलीय) कर देते हैं तो मुश्किल, और कम करें तो आफत । रात के एकांत क्षणों में जिस समय पति-पत्नी पारस्परिक हृदय की रुन-झुन को एकाकार किया करते हैं, उसी समय इस डायल्यूशन की कमी-बेशी का पता चलता है । प्रायः एक संतान पैदा होने से पहले यह अंतर इतना बारीक नहीं होता, लेकिन एक या दो संतान होने के बाद इसका तापमान अत्यधिक स्पष्ट हो जाता है । आये दिन और आई घड़ियों में प्रायः हर घर में इसके

समानान्तर मनःस्थिति में स्त्रियां एक ही जैसे शब्द बोलती हैं और दाम्पत्य के सफल मांगल्यज्ञान को भद्दी डकार की तरह से उलट देती हैं और आंशिक एकाकारिता के आमंत्रण को सख्ती से इंकार कर अपनी कठोर अरुचि भी जता देती हैं।

'संतान पैदा होने के बाद'। एक ऐसा मुहावरा, जिस पर पुस्तकों पर बोझिल पुस्तकें लिखी जा सकें। कुछ अभागे हैं जो कई-कई साल तक संतान की तपस्या करने के बाद अपने जीवन को महकते फूल-सा नियोजित कर पाते हैं। साधारण तौर पर गिरिस्तियों में संतान का चपल हास निष्प्राण होता है। पति और संतान की संयुक्त धारा में पत्नी दुतरफा घाटों पर फैल कर दुतरफा चोटों से गतप्राय हो जाती है। संतान उस समय तो प्रिय और गोदी में लेने लायक जब कि हँसमुख और चपल-मोहक। लेकिन एक बला, जब कि रोअना और सरदर्द करे अपनी हुआ-हुआ, चिल्ल-पों से। ऐसी ही संतान के क्षणों की बात है :

कासगंज। मैट्रिक में था। एक होटल में रहना हुआ। गरमी के दिन। छत पर खाट बिछी है कि पड़ोस की छत से सुनता हूँ, एक औरत गुर्राई है, "बस ! चुपचाप पड़े रहो, मत करो बकवास। दिन भर इसने (बच्चे ने) वैसे छाती तोड़ी है, और अब रात के दो बजे तक गोदी में लिये-लिये इसने हाथ-पैर मरोड़ डाले हैं। दुसरा लोहा भी चोट-पर चोट खाने से मोच खा जाये। लेकिन उस निर्दयी परमात्मा ने न जाने मुझे किस धातु का बनाया है कि मरी मौत भी मुझसे कतराती है चोट करने से। सोये तो पड़े रहते नहीं, हुचंग उठे है हुचंग। चूहे को भी पाल कर रखा है। आये, जरा सा कुतरा और यह जा, वह जा। धोती का पल्ला झाड़ा और चल उस करवट भरने शुरू किये खर्राटे। तुम समझते हो कि मर्द हो ? पर ऐसी भी क्या मरदानगी जो चूहे की कुतरन की काट करे। शरम तो आती नहीं मूँछों में हँसते हुए। मैंने

कह दिया है, मुझे हाथ न लगाना। नहीं झिड़क दूँगी और पास-पड़ोसी अलग सुनेंगे और यह रामका मारा अलग जग जायेगा। क्या पैदा किया है? न जाने किसकी शक्ल दिल में बैठाकर आये थे? न गोदी में चैन ले, न पालने में आराम करे। हाँ, कहूँगी, हजार बार कहूँगी कि तुम चूहे बन गये हो और मेरा सारा शरीर कुतर-कुतर कर खाये डाल रहे हो। भूल गये वह दिन, जिस दिन, पहले-पहल यहाँ आई थी। गुलाब की कली-सी बनाकर भेजा था घर वालों ने। अब न चेहरे पर लाली है और न छातियों में दूध। पर तुम्हें क्या। जहाँ रात की चुप्पी हुई कि बगल कुरेदेंगे कि आना जरा एक मिनट को। पर तुम्हारी रोजाना की एक मिनट ने मेरे शरीर को दो कौड़ी का कर दिया है। एक मिनट, एक मिनट। अरे, हम-तुम से तो जानवर अच्छे। उनकी रोजाना तो एक मिनट नहीं होती......।"

जरा मुस्कराते हुए हल्के शब्दों में पतिदेव (आयु यही ३०), "उफ पुत्तू की माँ, तुम इन दिनों चंडी माई बनती जा रही हो। इस तरह जी न जलाया करो। तुम्हारे मारे मेरे से एक मिनट नहीं रहा जाता। जाने क्या जादू है तुम्हारा मुझ पर! लाओ बच्चों पर पंखा तो मैं किये देता हूँ...........।"

युवती (उसी गुर्राहट में) "जादू? शर्म नहीं आती तुम्हें इस तरह शोहदों की-सी बात करते हुए? इस उमरमें चार बच्चोंके बाप बनने आये। चाहते हो, चार बच्चों की माँ मैं भी नटिनियों-सा शृंगार कर रोज तुम्हें रिझाया करूँ, नाचा करूँ? आये मुझे चंडी माई कहनेवाले। इन दिनों मेरे माँ-बापको कोसना बंद कर रखा है, तो मुझे नाम धरने चले हैं। सुख दिया तो दिया, खाल खींचना और रह गया है। कसमें इनसे लाख दिलवा लो, पर करेंगे अपनी। पहली बार ही डाक्टर ने मना कर दिया था कि अब दूसरा बच्चा अगर जल्दी हुआ तो इसकी जान की खैर नहीं है। पर ये तो चाहते थे न कि मैं जल्दी से मरूँ तो इन्हें नई नवेली दूसरी मुंह-

"शर्म नहीं आती तुम्हें इस तरह शोहदों की-सी बात करते हुए ? इस उमर में चार बच्चों के बाप बनते आये। चाहते हो, चार बच्चों की माँ मैं भी नटिनियों-सी शृंगार कर रोज तुम्हें रिझाया करूँ ?"

बोली रानी मिले। करके ही छोड़ा नौ महीने बाद ही दूसरा। अब पाँचवें की फिराक में है। अरे इन चार जायों को तो भरपेट खिला दिया करो। कितना घी खिला दिया है मुझे जापे में? हाड-हाड में जूड़ी भर गई है, जोड़-जोड़ में राम मरा दरद घुस-पैठ गया है। काया में खून के दर्शन नहीं रह गये। पर इन्हें एक मिनट का मजा जरूर दो। हटो यहाँ से। मत हाथ धरो मेरे माथे पर। बाजार में मरो न जाकर। वहाँ पचासों औरतें अपनी इज्जत एक मिनट को बेचती तो हैं... हाँ, वहाँ पड़ें न जूतियाँ बे-भाव की। उन्हें चाहिये नकदी और जड़ाऊ अगूठियाँ। यहाँ तो सब फोकटी माल है। फोकटी औरत और फोकटी रसोई। अपने मन में आया तो बाजार में जाकर यारों के साथ दोने चाट आये, होटल में टोस्ट-बिस्कुट खा आये। घर आये तो सांड बनकर। आज सब्जी में खटाई ज्यादा है, आज रोटियाँ मोटी बनी हैं। आज सब्जी में नमक क्यों कम है ....? जाड़ा सर पर आ रहा है। कहते-कहते अधकपारी हो गई है कि जी, बच्चों के लिये अगर स्वेटर नहीं खरीद कर दे सकते तो ऊन ही ले आओ, बैठी-बैठी तैयार कर लूँगी। पर बच्चों की फिकर क्यों हो। पैदा कर दिये सो कर दिये। मरें तो अपने भाग से, जियें तो अपने भाग से! ....हाय परमात्मा!"

शायद इसके आगे मैं सो गया था। लेकिन क्या सोने से हानि कुछ अधिक हो गई है, ऐसा भी नहीं है। आज भी उन दोनों में किन-किन विगत अभियोगों और लांछनों के मोर्चों पर डट कर जो लानत-मलामत हुई होगी, उसे शब्द-ब-शब्द लिखा जा सकता है बड़ी सरलता से। भारतीय नारी का मनोविज्ञान चित्रित करना और बेसन की चटपटी पकौड़ियाँ तलना मैं एक मानता हूँ। कुछ माता-पिता के संस्कार और कुछ ससुराल में अनेक बातों पर मनोमालिन्य, इन दोनों का मिश्रण सिर्फ एक ही किस्म की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है: तनाव रहते हुए भी जीवन में बड़बड़ाकर शांत हो जाना!

किसी जल-प्रपात से जलधारा गिरती देखी है आपने ? एकदम जंगली, किसी तरह की उसमें तमीज नहीं। अपनी गति और अपनी मौज, वह अपनी उच्छृंखल डींग मारती गिरती है और तभी वहाँ पर पहाड़ी ढंग की क्रीड़ा कर आगे बढ़ जाती है। लोग जल-प्रपात देखने जाते हैं और लौट आते हैं। लेकिन जो बात असली देखने की होती है वही नहीं देखते। प्रपातसे अपना साहसपूर्ण पतनकर वह जलधारा सदैवके लिये अपना पतन नहीं कर देती। यहीं से उसका असली जीवन प्रारंभ होता है। यहाँ से आगे बढ़कर वह सब से पहला काम यह करती है कि अपने शाश्वत जीवन के लिये पहाड़ी पत्थरों से भरे ऊबड़-खाबड़ मार्ग समतल करती है, पहाड़ी पत्थरों के नुकीले कोनों को घिस कर उन्हें रेशम सा चिकना बना कर अपनी मार्ग-शैया भी स्निग्ध औ कांतिमणि-तुल्य दीप्त बना लेती है !

पत्नियाँ प्रथम-मिलन के दिन व्योम की विहारिणी किन्नरियाँ प्रतीत होती हैं, क्योंकि उस दिन वे अपने ढंग की उच्छृंखल मादकता से अति-रेकानन्द में होती हैं। लेकिन उसके बाद उनका जीवन पतिगृह की ऊबड़खाबड़ता में बीतता है। अरे, पत्नी की गति के लिये पति अगर अपने नुकीले कोनों को चिकना न होने देगा तो वह जलधारा रुक कर और आँसुओं के रूप में भँवर पर भँवर खाकर सड़ न जायेगी ? न रह जायगी वह व्यर्थ की जलधारा, जिसमें कोई अपने गंदे पैर भी न धोना चाहेगा ? जलप्रपात की जलधारा रात्रि के स्तब्ध क्षणों में अगर अपनी गति का कलकल-गान नहीं गाती, तो वह क्या खाक उमंगवती है ? स्वर्णिम रात्रि के स्तब्ध क्षणों में अगर पत्नी की मदिर खिल-खिल मुखर होना रुक गई है, तो क्या खाक पति हैं आप ?

[१३]

'हाय परमात्मा !' यही वह शब्द है जो आज भी मेरे मानस में किसी अशुभ संकेत सा टंकार लिया करता है। वहाँ कासगंज में प्रायः नित्य ही उस पत्नी की 'हाय परमात्मा' रात्रि के तृतीय प्रहर में

सुना करता था। लेकिन परमात्मा अगर रोजाना असहाय पत्नियों की और असंतुष्ट पतियों की हाय सुनता रहेगा तो शायद वह दम्पतियों के निर्माण के साँचे ही तोड़-फोड़ देगा।

'हाय परमात्मा !' यही हाय न चाहते हुए भी पत्नी के गर्भ में एक और नया जीव कलिया देती है और वह इस तरह एक ओर संतान-पालन से, दूसरी ओर पति द्वारा दी गई इस हाय से इतनी पंगु हो जाती है कि उसका वर्णन अत्यन्त असह्य है। हम जानते हैं, और यह आज के संस्कारों का एक व्यापक षड्यंत्र है, कि पत्नियों की ना-ना करते हुये भी पति देव अपनी व्यर्थ की लिप्सा का त्याग नहीं कर पाते। यही वजह है कि हमारे चारों तरफ व्यर्थ की सन्तति भटकती दिखाई देती हैं। भोग की उच्छृंखलता और महासागर की तलहटी में खड़े हुये भीषण जलीय पहाड़ की उत्तुंग चोटी। जब जिद्द है कि इन दो में से किसी एक से टकराहट ली ही जाये तो सृष्टि में विनाश भला क्यों न उपस्थित हो। हमारे समाज की व्यर्थ संतति इस सृष्टि के विनाश की ही वह परिणति है, जहाँ आज की सभ्यता का समाज किसी भी हालत में दाम्पत्य का परितोष न स्थापित कर सकेगा, न उसकी खोज करने में समर्थ हो सकेगा........

ऐसी अवस्था में एक जागरूक प्रहरी की तरह ही ऊपर प्रश्न किया गया है : क्या खाक पति हैं आप ?

एक महाशय को इस प्रश्न की पुकार ने अपने पतीत्व पर अरुचि पैदा करने के लिये विवश कर दिया था। उन पर इसकी प्रतिक्रिया जिस गलत ढंग से हुई, उसका हाल भी दे दिया जाये।

सुबह के तीन बजे हैं। एक कमरे से एक स्त्री रह-रह कर कराह रही है। उहँ........हाय......अ......ो...ह....उफ आह....हाय.....हाय मरी

....ी......ई....हाय दैया......दैया री .....और नर्स बैठी हुई तसल्ली दे रही है कि बस, जरा जोर और लगाओ। मैंने तुम्हारी जैसी हिम्मत वाली औरत कहीं भी नहीं देखी है.....हाँ, लगाओ जोर। पर वह स्त्री अब जरा जोरों से हाय-हाय करना शुरू कर देती है और क्षण-क्षण के बाद कराहती हुई त्रास की एक चीत्कार भी गुँजा देती है। और कुछ मिनट बीतने के बाद वह अपने प्राणों को कंठ से बाहर न निकलने देने के लिये इस कदर कलपती है और तड़पती है और हाय फेंकती है और ऐसा मर्मान्तक रुदन करती है कि उसे सुनने वालों के जी की धड़कन बढ़ चलती है और रोम खड़े हो जाते हैं। सिसकियाँ लेती हुई वह बेहोश हो जाती है। पर उसे बिना छाती फाड़े आज आखिरी चैन न मिल सकेगा। वह पुनः होश में आती है और उसी तरह दिल दहलाती हुई श्रोताओं के मानस को अपनी वीभत्स चीख से आहत करती हुई और दिल में दहशत बैठाती हुई इस तरह कलपती है कि उसका पति वहाँ से उठ कर दूर चला जाता है.... वह जब लौटता है तो पास-पड़ोसी बधाइयाँ देते हैं कि लाइये, मिठाई खिलाइये, पहला लड़का हुआ है।

ये महाशय कथावाची विज्ञ पंडित हैं। उनके मन में आजीवन के लिये एक दहशत बैठ गई है। दिल्ली के सदर बाजार की वह सड़क जो कि पहाड़ी धीरज पर चढ़ती है, वहीं पर वे रहते हैं। हो गये आज उन्हें कई साल, कहिये, एक युग से अधिक। वे तंदरुस्त हैं, कालिदास का 'मेघदूत' और अन्य सरस साहित्य विभोर होकर पढ़ते हैं। उनकी पत्नी भी कम छलछलाती षोड़शी नहीं है। लेकिन उस दिन के बाद से उन्होंने एक 'मिनट' की आतुरता अपनी पत्नी के अंक के समीप बैठ कर नहीं दिखाई है जिससे वह पुनः कहीं उसी तरह कलपे और चीखे और तड़प-तड़प कर मौत के पास तक पहुँच कर लौटने की तरस खाये और इतनी विलापे कि फिर पास-पड़ोसी सुनें और मेरे प्राणों पर फिर बन आये। न बाबा, न!

मै नहीं जानता कि उनके घर में आजकल क्या वातावरण है। हो सकता है कि पत्नी अपनी इकलौती संतान से संतुष्ट हो। हो सकता है कि पत्नी का जीवित चर्म खराश खा गया हो। हो सकता है कि उन के घर में जल्दी ही बानप्रस्थ आश्रम के लक्षण फूटने लगें। लेकिन जो भी हो, इस तरह का दुनियावी आश्चर्य एक तो ठीक है, गौरवपूर्ण है और दर्शनीय है ! यदि ऐसे आश्चर्यों की संख्या में शाखा-प्रशाखायें उग आयेंगी तो उस वटवृक्ष के नीचे सिर्फ तपस्या करनेवाले ही रह जायेंगे जार्ज बर्नर्ड शा के "बैक टू मैथूसिलाह" के बाशिंदे जैसे। लकड़ी और फिर कोयला और राख। चट्टान और फिर हीरा और उसका करोड़ों का मूल्य। वह करोड़ों का मूल्य मानव-पुत्र का ही हो सकता है, वयोवृद्धा स्वस्थ सुन्दरी की अछूती कोख का नहीं !!! क्षमा करें, इस स्पष्टवादिता के लिये :

कबीर ने भी लिखा है, "पीर सहे बिन पद्मिनी, पूत न ले उछंग।"

कबीर की इसी बात को मैं भी अपनी छंदबद्ध भाषा में कहूँ, "रूप-यौवन का शिखर, विस्तृत नीरव व्योम, अथाह रेगिस्तान हवा का.....।"

[१४]

अथाह रेगिस्तान हवा का ! सुनिये एक युवक की कहानी। वह आजाद हिन्द फौज में रहा है। नेताजी के साथ खड़े हुये अपना फोटो वह गौरव से मस्तक ऊँचा कर दिखाया करता है। कवि है और रूपसि के नख-शिख का वर्णन इतनी चटपटी व्यंजना के साथ देता है कि श्रोता कर्तल-ध्वनि करने पर बाध्य हो जाते हैं। कवि की बात पद्यबद्ध कहने में ही रुचि उपज रही है :

रूप यौवन का शिखर,
विस्तृत नीरव व्योम,
अथाह रेगिस्तान हवा का,

जो फाड़ दे अंगों को अपनी दाहक शीतलता से,
और, कर दे छाती के दो टूक तीखी नृशंसता से !
करने न आया उसकी जयजयकार—
मनुज का वह कोरा अंधकार
व्यक्ति जैसे बन गया हो दीवाल में ठुकी कील
या कि, बिना नीड़ की चिल्लाती चील !!!

वह युवक है, कफ-पित्त का खौलता कड़ाहा....
पैसे दो की सिगरेट को अकड़ कर पीता जैसे चाभीदार लोहा....
असली घी की बंद हाँड़ी बरसों से लावारिस
वह युवक बिन-सुइयों की नाईं घड़ी की करता रहता टिक-टिक-टिक...
और करता नये युग की बात
छिपा कर हजारों घात-प्रतिघात
निर्ममता से मूँद कर अपनी दृष्टि
आत्मा के मानवी कलषों को पैरों से लुढ़का कर
खुदा की दिव्य दृष्टि को देता हजारों अपशब्द !
और, भटकता रहता किसी साथी की खोज में—
जो साथी हो मादा, नारी कतई नहीं !!

बरस बीते आयु को तहों में लपेट कर
तब वह होगा अपने नगर का अबोध युवक
की होगी उसकी शादी उसके स्वजनों ने
पकड़ाई होगी एक ललना पत्नी सुकुमारी
करने उसकी तरुणाई का सरस पोषण।
और उनके यौवन का चूषण !
समाज हिंदु की यही सनातन रीत
बांध दिये एक खूंटे से नर -मादा दो

टूटे भग्न लचर पहिये दो !
भग्नावशेषों पर खड़ा कर दिया हो
जैसे किसी अमर कलाकार ने एक नया भग्नावशेष
अभिनव, नूतन नमूना एकदम
जो ताश के पत्तों को भी करता मात
बालू के घरौंदे सामने उसके कहीं टिकाऊ
वह गिरिस्ती लुढ़क गई ।
भाग आया वह युवक
रह गई वह नारी एकाकी
पतिहीना, त्रिशंकु-सी लटकती आसमान में
गो कि रह रही है जमीन पर कस कर पैर टिकाये ! !

एशिया भूखंड पर हुआ इतिहास का विस्फोट
सूर्य की दिशा से अवशिष्ट अंधकार फट पड़ा
और नये मानव ने हुंकार दी पुराने जालिम मानव को
भयंकर युद्ध छिड़ गया दूसरा
मानवी-मस्तिष्कों के बीच जैसे जल उठा हो दावानल
उपाय न शेष किसी प्रशस्त मार्ग का
कि नेता जी का ध्वज उठा क्षितिज पर नये सूर्य सा
और, नया मानव चल पड़ा संघर्षी देवता-सा
वह युवक भी था उस मार्चपास्ट में
उस हू हू करती श्मसान सी भूत-पिशाचों की लड़ाई में
पर विश्व युद्ध तो विश्व युद्ध
हुआ उसका अंत एक विराट् प्रश्नचिन्ह बन कर !
जो जीवित थे सेनानी
लौटे घरों को अपने उलझे हुये किसी मकड़ी के जाले में

रणक्षेत्रों में फिर से लगी घास उगने जंगली
नये उत्साह से।

यह युवक भी लौटा बरमा से
कवि बन कर नये जोश से
नेताजी की याद को बाँधे अपनी गाँठ मे
नेत्रों में रोमास का नशा
चाल में किसी उद्धत राजकुमार की सी शोखी
सिविलियन ड्रेस में लगता वह प्राणी
किसी अनजाने नक्षत्र का !
सूचना दी किसी ने हठात्
तुम्हारी पत्नी आई है मिलने तुमसे
किसी पत्र में तुम्हारी कविता के साथ छपे चित्र को देख कर.....
युवक का फन फूत्कार कर उठा
बोला "रे कैसी पत्नी ! कैसी जोरू ?"
दोस्तों की जिद्द से मिला वह उस नारी से
उस की दीन नजरों से, याचना से, भावना से
और, लौट आया बिना दिये आश्वासन
मोह के तकाजों का जो हो गया था अवसान ।

लौट गई वह अबला हिन्दू समाज की
खेद ! कि मार्ग में उसे न मिला कोई त्राता अन्य इंसान
रहती होगी वह शून्य अपनी शून्य श्वासों को गिनती
और हिंदू समाज के पंचों के चरणों के नीचे
रख कर अपना शीशखंड !

महा खेद ! इस रामायण का बन न सका कोई उत्तरकांड
वह युवक अपनी अकड़ में बेसुध

ऐश करता अपने जीवन से एकाकी बहार में
दृष्टि-भूख को भरता रहता खड़ा चौराहे में !!!
पूछ देखो उससे किसी भी राहगीर तरुणी के बारे में
बोलेगा, वह तो है हस्तिनी, और वह पद्मिनी
और वह शंखिनी, जो जाती है बनी गर्भिणी
उसे कहा जायेगा भैंस !
लेकिन ठंडी आहें भरता रहता वह
किसी नारी की संगति की तलाश में
और चाहता एक रैन-बसेरा स्थाई
ईर्ष्या में कुढ़-कुढ़ रह जाता
अपने मित्रों की घर-गिरिस्ती के चाव को पीकर
चौराहे का सन्तरी-सा
खोज न पाया वह अपनी राह आज तक
वैसे देता अपने काव्य से और राहगीरों को
एक से एक नई राह !!!

जब भी मैं इस युवक से मिलता तो बैठा हुआ अपनी सिगरेट की राख अपनी राखभरी ऐशट्रे में झाड़ता रहता। एक दिन भावुकता के रंग में कहने लगा, "स्त्रियों के पास तो श्रृंगारदान, आभूषणदान, सुहाग-पिटारी, मनीबैग, हैंडपर्स, रेशमी साड़ी की अटैची और न जाने क्या-क्या तूफानी पिटारियाँ होती हैं। मेरी तो यही ऐशट्रे सब-कुछ है। अपने श्रृंगार, अपने आभूषण, अपना पौरुष, अपने चेक, अपने रेशमी ख्यालात सब-सब इस सिगरेट के धुएँ में दर्शन कर इस तम्बाखू की राख में छिपा लिया करता हूँ।"

तुरन्त ही मैंने परिहास कर दिया था, "क्या विवाह-मंडप भी अपनी इस जले सिगरेट के टुकड़ों से भरी-भराई ऐशट्रे में बैठकर रचाइयेगा ?"

मेरे इस प्रश्न का उसे कुछ उत्तर नहीं सूझा था और वह सिर्फ मेरी मजाक में योग देते हुये हँस सका था।

इस युवक को देखता हूँ और सोचता हूँ कि मानव अगर स्वयं ही कुतुबमीनार बन कर खड़ा हो जायेगा तो निर्माण फिर कौन करेगा इस धरती का। यह युवक एकाकी नहीं रहना चाहता। यह अपनी चर्म की भूख सर्वभोग्या देवियों से बुझा लेता है और उसी से अपना सौंदर्यानुभूति की प्रेरणा लेकर काव्य की सृजना करता है। ऐसे ही काव्य की चाह रह गई है हमारे साहित्य-पाठकों को? इस प्रश्न के समाधानार्थ उदाहरण दिये जाते हैं कि जितने भी हिंदी के बड़े साहित्य-निर्माता हुये हैं, प्रेमचन्द आदि, उन सभी ने जब तक अपनी पहली पत्नी का त्याग नहीं कर दिया था, तब तक उनको साहित्य की सिद्धि नहीं हुई थी!

हे मनुज! साहित्य की नींव में पहली ईंट रखी जाने से पहले जिन पत्नियों की बलि अवस्थित की गई है, उसे तू कभी पूजता है? तू तो उसके रक्त से उगे हुए पौधे के साहित्य-सृजन-रूप फलों को खा कर ही सुख की नींद लेता है! कृतघ्न!!!

[१५]

सिगरेट की धुंवा में, जलते कागज की धुंवा में, लकड़ी के कोयलों की धुँवा में, गीली लकड़ियों की धुंवा में, पत्थर के कोयलों की अंगीठी की धुँवा में और चिता की धुँवा में कभी बारीकी से अंतर देखा है? स्पष्टतः नहीं देखा होगा। धुँवा गौर से ही वह देखते हैं, जो स्वयं धुँवा बन कर धीमी गति से सुलगते रहते हैं। धुँवा जब दिल के खून के खौलने से उठता है, तो वह इन सब धुवों को दीन बना देता है। सुलगते हुये दिल की धुँवा का अपना सौंदर्य होता है, उसका दर्शन उसी समय सुगम हो पाता है कि पहले आप पैशाचिक बनने की हिम्मत दिखा सकें!

सिगरेट की धुँवा में सबसे ज्यादा मुलामियत और मासूमियत होती है। इसी तरह उस मौत में भी एक मासूम कशिश है जो निम्न तरह

से हुई है : इस मौत की वाहवाही कलकत्ता के हिन्दी दैनिकों ने मुक्त कंठ से की थी पिछले दिनों । । मेरी मान्यता थी, और आज भी है, दाम्पत्य की यह मौत सारे देश की मौत है और हमारे सारे राष्ट्रीय चरित्र की मौत है । ऐसी मौतें अगर देश में चारों ओर होने लगें, हमारा जीवन सिर्फ धुंध-धुँवा बन कर रह जायेगा और हमारा जन-जन दावानल में सुलगने वाला सूखा जंगल बनता हुआ नजर आने लगेगा.....

कलकत्ता का सेंट्रल एवेन्यू । एक व्यक्ति को तपेदिक है । तपेदिक का इलाज चल रहा है । लेकिन तपेदिक का इलाज नहीं किया जाता हमारे देश में । उस तपेदिक की आय वैद्यों और डाक्टरों के निमित्त बलि कराई जाती है । इलाज का असर सिर्फ यह होता है कि यह व्यक्ति अपनी गिनी-चुनी श्वासों को 'इंडिया रबर' की तरह से जरा खींच कर दीर्घ बनाता रहा है । यह व्यक्ति किसी सुशीला का पति भी है । वह सुशीला इस पति की पत्नी बन कर अंदर ही अंदर सुलगती रही है । आशा के विपरीत इसकी सेवा में उसने अपनी देह होम दी है । यज्ञ में शुद्ध घी की आहुति लगती है तो उसकी ज्योति प्रकाश देती हुई सुलगती है । लेकिन इस सुशीला ने अपना कंचन-सा शरीर होम दिया, पर पति के स्वास्थ्य की यज्ञशाला में ज्योति प्रकट न हुई और जो अशुभ घटना थी, घट गयी । क्रमशः जीर्ण होते हुए एक दिन वह व्यक्ति मर गया । क्यों कि पति मर गया, सो वह अनाथ पत्नी ऊपर दो (भूलता हूँ, शायद चार मंजिल थी) मंजिल से कूद कर नीचे गिरी और मर गई । उसका शव भी क्षय-रोगी पति की चिता में दफनाया गया । जो सामाजिक नपुंसक व्यक्ति अप्रकटावस्था में रहते हैं, उन्होंने निजत्व भूलकर इस 'सती' के सती-दाह पर खुशी की तालियाँ पीटीं । पर मैं उस दिन यही हाय खाता रहा कि हमारे यहाँ जिसे क्षय हो गया है उसका मरना तो समझ में आता है । लेकिन जिसे अनाथावस्था का भय क्षय बन कर घुलाता रहता है, उसकी आत्महत्या

क्योंकि पति मर गया सो वह अनाथ पत्नी ऊपर दो मंजिल से
कूद कर मर गई

जहाँ इतनी कारुणिक बन कर खुली सड़क पर हो, वह समाज कितना सभ्य है ? क्या वह समाज आदमखोर के समकक्ष नहीं है ?

गोया, विध्वा (चाहे ग्यारह वर्षीया हो) मिलिट्री का 'बूढ़ा घोड़ा' करार दी जा चुकी है। वह इस पृथ्वी पर क्यों जीवित रखी जाये ? इसलिये गोली के दाग से बचने के लिये बूढ़ी (मानवी) घोड़ी-सदृश विध्वायें स्वयं आत्महत्यायें कर लें तो सबसे शुभ ? इस पृथ्वी के लिये ? या स्वर्ग के लिये ? या आपकी नपुंसक रक्तहीन आत्मा के लिये ?

[१६]

इस चित्र के संतुलन में क्षय की मौत का एक दूसरा चित्र है। इस मौत का अभिवादन जिस पुरुषोचित ढंग से इस कथा के युवक ने किया है, उसकी वंदना के लिये कम-से-कम १००० शलभ-कन्याओं की आवश्यकता है जो पूजा की थाली में दीप जलाकर एक साथ आरती उतारें।

ऐसी महामहिम कथा का वृत्तान्त पूरा देना होगा :

रेशमी चादर जब गलने-फटने लगती है तो बेतरतीब ढंग से टूक-टूक होने लगती है। उसे टाँकों से संभाले नहीं संभाला जा सकता। फिर एक बात और भी है। रेशम शरीर को ढाँकने के लिये भला कहाँ बना है और वह समर्थ भी कहाँ है ? वह तो शरीर की हया को रेखाकार बनाकर दूने रूप से विलासिता को मुखरित करता है। या यों कह लो, यह रेशम पहले शरीर को विलासिता की झील में ढंग से तैराता है और फिर उसे ऐसा डुबाता है कि आत्मा भी शरीर के साथ ही अतल केन्द्र में जाकर मरने के लिये विवश हो जाती है। इसीलिये यह रेशम मृग-मरीचिका की तरह शरीर की तृष्णा को अपने पीछे खूब-खब दौड़ाता है और फिर जब स्वयं आहत हो जाता है तो शरीर को भी बेमौत नरक में घसीट ले जाता है।

रेशम ! लेकिन इसका असली नाम तो होना चाहिये......रे, नग्न शरम !

आज से बाईस वर्ष पहले मारूती ने अपने घर भर के रेशमी वस्त्रों की होली जलायी थी। विदेशी शासन के विरुद्ध वह एक विचित्र अस्त्र था। आज देश में फिर से रेशम के प्रति अगाध भक्ति छा गयी है। उसने माचिस जलाई और, उसी बाइस वर्ष पहले जिस स्थान पर वह होली सुलगाई थी, वहीं अपने और रानी के रेशमी वस्त्रों को एकत्र किया और उनमें आग दिखा दी। आज रेशमी वस्त्रों को जलाना उस का कोई अस्त्र बनने नहीं जा रहा है। लेकिन फिर भी वह ऐसा करने के लिये विवश हो उठा है।

वाह! रेशम भी क्या अदा के साथ जलता है? जैसे तो साक्षात् विलासिता ने अंतिम क्षणों में भी बड़ी नाजुक अँगड़ाई लेकर प्राण त्यागे हों!

रेशमी वस्त्रों की ढेरी जल गई, वह शीघ्रता के साथ उठा। पलक झपकते उसने ताला बन्द किया और एक टैक्सी में बैठ कर वह स्टेशन की ओर दौड़ा। बदहवास हैवान की तरह वह मुसाफिरों की भीड़ में घुस कर टिकट ख़रीद लाया और गाड़ी में बैठा। यह गाड़ी भी तो निपूती अपनी जिद्द से अपनी टाइम पर चलती है। बड़े भाग उसके, वह जब बैठ चुका तो गाड़ी चली। वरना आज क्या वह इस दुनिया में जीवित रहता?

पुलिस उसका पीछा कर रही है। वह पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर आया है। हत्या उसने नहीं की। डाका उसने नहीं डाला। और खीझ-भरी फीकी मुस्कान के साथ उसने गुनगुनाया, "किसी की सती-मर्यादा का भी उल्लंघन मैंने नहीं किया है।"

पुलिस! उसकी नानी हथेली पर चटक देकर और अंगूठे का ठोसा दिखा कर कहा करती थी, "यह निगोड़ी पुलिस इस देश में क्या करती है? सिर्फ अपनी छाती का बलगम खंखार कर उगलती रहती है और थूकती रहती है। इस तरह ढेर सारी गंदगी फैलाती रहती है।

अरे मैं कहती हूँ कि इस पुलिस की छाती में सिर्फ सड़ा हुआ खून भर कर जमा हो गया है !"

मारुती नानी की यह क्रोधभरी उक्ति सुन कर तालियाँ पीटता था, नाचता था और किलकारियाँ भरता हुआ सारे मकान को अपनी आवाज से गुंजा दिया करता था।

"नानी को पकड़ने आयेगी पुलिस
नानी पर नालिस गाड़ेगी पुलिस...."

और नानी खीज खीज कर चिल्लाया करती थी, "अरे हाँ, आने दे न पुलिस की बच्ची को, बेलने से सिर न फोड़ दिया तो कहना !"

उफ ! जिस दिन राष्ट्रीय आंदोलन में पुलिस मारुती का वारंट लेकर आई थी, तो नानी ने ही उनका हाथ में चिमटा लेकर स्वागत किया था। और उस अंग्रेज सारजेंट ने अपनी पिस्तौल का दाग नानी के कपार पर दे मारा था। लेकिन कुर्बान जाऊँ उस नानी पर, जमीन पर लुढ़कने से पहले नानी ने अपना चिमटा उस सार्जेंट की नाक पर ऐसा दे मारा था, कि वह लहू चुआ बैठी थी......।

मारुती ने होश किया। पाँचवाँ स्टेशन गुजर गया है और अब छठवाँ स्टेशन आने वाला है। उसने पूर्व निश्चय के हिसाब से तय किया कि वह छटे स्टेशन पर उतर जायेगा। अवश्य ही पुलिस का सख्त पहरा होगा आगे के जंकशन पर। मेरे हिसाब से कानून किसी की विशेष तिजोरी का ऐसा जेवर है, जो बहुमूल्य तो है पर व्यवहार-योग्य और धारण-योग्य नहीं है ! अगर कानून यही है तो मैंने जरूर इस कानून का उल्लंघन किया है। उसने जरा सुस्ता कर उदास भाव से खिड़की के बाहर देखा, तपे हुए स्वर्ण-कणों के साथ सख्त धूप धूलराशि की मानिन्द व्योम में उतरती चली आ रही है। खेत अपनी अतिरिक्त सीलन को सुखा रहे हैं। पेड़-पौधे दुर्बल इंसान कभी नहीं बन सकेंगे पेड़-पौधे

ऋतुओं से भला भय क्यूं खायेंगे ? अरे, पेड़ पौधे न हों तो यह ऋतुएं अनाथा बनी घूमें। उसने आश्वस्त भाव से देखा—दूर तक घनिष्ट भ्रातृत्व अपनाये हुए जंगल छाया हुआ है और यह कठोर धूप क्या मुग्धा बनी हुई एकनिष्ठ तन्मयता से सबको चरम पोषक तत्व बाँट रही है ! कोई युग था जब मनुष्यता भी इसी तरह सब मनुष्यों को मिलती रही है। लेकिन आज मनुष्यता न तो आसमान से अवतरित हो पाती है और न वह जमीन के बीजों के साथ उद्‌भूत होने की सामर्थ्य रखती है। वह तो कुछ दुष्ट इंसानों के घरों में बस धनिये-पोदीने की क्यारी की तरह उपजने लगी है......

अंदर ही अंदर कठोर रूप से सशंक बनता हुआ, बाहर ही बाहर वह हल्के-हल्के मुस्कराने लगा। उसने कनखियों से भांप लिया, उसी के डिब्बे में सम्भवतः एक सी० आई० डी० का आदमी उसका पीछा कर रहा है। ये सी० आई० डी० उस गधे की मानिन्द हैं, जो सदा अपने कुम्हार को दुलत्तियाँ झाड़ते रहते हैं और अपनी कुम्हारिन को देखते ही भय से काँपकर इतना चिल्लाते हैं कि सारा मुहल्ला सिर पर उठा लेते हैं। उसके ताऊ जी ने उस दिन स्वाभाविक स्वर में कह ही तो दिया था "ये सी० आई० डी० ऐसे दूध पीते बच्चे हैं जो रबर की खाली बोतल को भी चूमते हैं तो यही समझते हैं कि दूध पी रहे हैं। बेवकूफ लड़ाकू मूर्ग कहीं के !"

बात करने के बहाने हँस कर मारुती ने अपने साथी यात्री से कहा, "आज धूप तो इस तरह तपती हुई बरस रही है, गोया कोई प्रिया क्रोधित हो उठी है और अपने पिया के घर को आग लगाने का इरादा कर चुकी है।"

यात्री किसी आफिस का हेडक्लर्क मालूम होता है। संभ्रांत भी है। इस रसीली बात ने उसे एक मधुर स्फुरण दिया और वह

जरा तसल्ली से हँसा। बोला, "आप यह भी कह सकते हैं, यह धूप क्रोध में अपना इतना होश भी खो बैठी है कि पिया की सुहाग-पिटारी को भी उठाकर उसी आग में फेंक दे रही है। खेतों में उगती हुई यह नई फसल इस धूप की सुहाग-पिटारी के सिवाय और क्या है ?"

मारूति को इस बात पर अतिशय आनंद आया कि छटवाँ स्टेशन आ गया। मारुती उठ खड़ा हुआ। उसने उस सी० आई० डी को सुनाते हुए साथी यात्री से जरा जोर से कहा, "यहाँ आज एक बड़े जंगल का सरकारी नीलाम है। अभी तक सरसों का विजनिस था। अब इरादा है टिम्बर का काम करने का। अच्छा, आज्ञा।" और वह साथी-यात्री से हाथ मिलाकर उतर गया।

उसने निःशंक रूप से स्टेशन मास्टर से कुछ बातें कीं और उससे विदा लेते हुए मजाक की, "जनाब, आपका यह ख्याल गलत है कि सिर्फ यह बेजानदार रेल ही इन दो लाइनों पर अपने पहियों के बल घूमती है। इंसान भी इस मशीन-युग में बिना पैरों का हो गया है। वह सिर्फ पहियों पर ही दौड़ता है। और अगर कुछ दूर वह पैदल भी चलता है, तो चलता नहीं है.........बल्कि पहियों-सा लुढ़कता चलता है ! बात यही सच है आज, आप मानें या न मानें।" स्टेशन मास्टर ने सुनकर क़हक़हा लगाया और हाथ जोड़ कर उसे विदा दी।

अपरिचित नगरों में इस तरह आकस्मिक तौर पर उतर पड़ने का यह उसका पहला मौका नहीं है। जब पुलिस द्वारा घोषित जाना-पहचाना क्रांतिकारी तथा षड्यंत्रकारी था, तब तो दैनिक कर्म की तरह उसका नित्य ही यह काम था कि किसी नये अपरिचित नगर में पहुँच जाये और वहाँ दिन बसेरा करे या रैन जागरण करता हुआ नया मार्ग ढूंढे और नये नगर की ओर दौड़ने की तैयारी करे.......

उसकी नानी ने ठीक ही कहा था, 'गुलाब बेहयायी से कभी नहीं

पालता, पर अपने बल पर भी वह कभी सिर उठा कर नहीं खड़ा हो पाता। गुलाब सख्त तरीके की तीमारदारी चाहता है। इसी तरह क्रांतिकारी भी ऊपर कच्चे धागे से लटकती हुई तलवार अपने सिर पर झुका कर रखता है, पर किसी के दुलार का आंचल भी कवच की तरह अपने मस्तक पर लपेटे रहता है। वह अंगूर की बेल से कम नहीं होता और क्रांति के मादक अंगूर किसी जंगली बेल पर भला कैसे झूम पायेंगे? ओह: यह अंगूर की बेल भी कितनी तीमारदारी चाहती है?

जिस दिन उसकी नानी पुलिस की गोली से शहीद हुई, वह वहीं से डेढ़ सौ कोस की दूरी पर एक राष्ट्रीय प्रवृतियों के समर्थक जमींदार साहब के यहाँ छिपा बैठा था। क्रान्तिकारियों को छिपाना और सूर्य को छिपाना क्या एक नहीं है। नानी की मृत्यु की बात सुन कर मारुती रोया नहीं था, उल्टे जमींदार साहब ने सिर्फ एक ठंडी आह ली थी। किन्तु जमींदार साहब की वयस्का पुत्री फफक कर फूट कर रो उठी थी। वह करती भी क्या? उसका दिल ही रोने के लिये बना था। रोजाना रोने के लिये उसे बस कुछ न कुछ बहाना चाहिये था। शुरू-शुरू में इस हर-वक्त रोने, हर वक्त आँखों से दिल के व्यर्थ गुब्बारों का परनाला बहाये रहने से मारुती को चिढ़ हो गई थी। वह उसे बस एक साधारण लड़की लगने लगी थी। ऐसी साधारण कि जैसे रास्ता चलते पगडंडी के किनारे कोई जंगली फूल खिला लहलहा रहा हो और प्रवासी राजकुमार की अपलक नजर सामने कोसों दूर बकावली के फूल पर टिकी हुई हो।

उस बार तो जमींदार साहब के हार्दिक आग्रह के बावजूद वह बस चार रोज ठहरा था। लेकिन पाँच महीने बाद वह उधर से लौटा तो जमींदार साहब ने उसे अपने यहाँ रोका और प्राइवेट बँगले में कैद कर दिया, ताले के अंदर, जहाँ पुलिस को गंध तक न मिल सके। फरमाबरदार गुमाश्तों तक को खबर नहीं दी गई। उसके सिर पर दस हजार रुपयों की बोली लगा दी। इधर पहाड़ की चट्टान से बूँद-बूँद शिलाजीत

सी चूनेवाली उस रोनेवाली लड़की ने छिपे स्थान में उसको छिपाकर जीवित रखने की जिम्मेदारी ली।

कोई स्त्री किसी पुरुष को जीवित रखने की जिम्मेदारी ले, इसका मतलब सीधा सा यही है कि एक आत्मा अपनी आत्मीयता का दुलार मुक्त-दान स्वरूप देना चाहती है। आत्मा की आत्मीयता जब मुक्त मिलने लगती है तो नीम के संग गिलोय इसलिये उच्छवासों का आलिंगन नहीं लेती है कि दोनों ही कटुरस का गुप्त आनंद लेने लगते हैं। बल्कि इसलिये, कि आलिगन वही सार्थक होता है जो अंग-अंग को, रोम-रोम को भी एकाकार कर दे।

घटना देखने में यह सरस थी। पर मारूती इससे दुखी था। यह इतना रोती है, पर इसके गहन दुख का पता कुछ चल पाता ही नहीं है। फिर भी जब वह नाश्ता लाती है, भोजन लाती है, अन्य जीवन के उपक्रम सजाने आती है, तो आखिर बाध्य होकर वह उससे एक दो साधारण बात कर लेता है। उसने यह जान लिया है कि यह लड़की स्वयं उसका भोजन बनाती है। तो वह सब्जी की प्रशंसा करता है, अन्य व्यंजनों की तारीफ के पुल बाँध देता है। कहता है यह सब बला टालने के लिये। किन्तु क्या मुश्किल है कि वह उसकी हर बात को गंभीरता से लेती है और जब वह बात करता है, इस लड़की की हर देह का पोरुवा चंचल हो उठता है। अब वह कम-से-कम रोने की चेष्टा करती है। एक दिन मारूती ने पूछ ही तो लिया, "भई, तुम्हारा ब्याह तो हो गया होगा ?'

जैसे तो किसी ने किसी की नस में बलात् सुई चुभो दी हो, खून की धार बह चली हो। उस लड़की की आँखों से अश्रुधारा ढल चली। इसका मतलब है कि ब्याह हुआ है और उसके साथ कुछ दुखांत है। घंटा एक गुजर गया और वह रक्त-संचरित मूर्त्ति जैसे तो चुपके-चुपके अपने अश्रुओं से कोई प्रयोग करती रही, अपने कोमल मृदु हृदय का मंथन करती

हुई तरल घृत निचोड़ती रही। उसके इस अथाह अश्रु-प्रवेग पर मारुती ने क्रोध से कुछ नहीं कहा, करवट ली और सो गया। शाम भी उसने कुछ बात नहीं की और न ही देखा, कि वह कब आई, कब चली गई।

सात रोज गुजरे, उसने हिचकियों के साथ बताया, क्योंकि उसकी जन्मपत्री में कोई सन्तान का योग नहीं है, इसलिये उसके पति ने उसका त्याग कर दिया है। वह उसे अपने यहाँ रखने को तैयार है; लेकिन वह पिताजी की आधी सम्पत्ति माँगता है !

उस क्षण तो निस्तब्ध, मारुती ने सुन लिया। रात में यह बात एक विराट प्रश्न बनकर गम्भीर घोष बन गई। क्या इस तरुणी की निर्मम हत्या नहीं की जा रही है ? क्योंकि इसकी कोख फलवती नहीं है, इसलिये इसका शरीर फालतू पेड़ है जो उखाड़ कर फेंक दिया जायें ? अरे, कौन है जो इस षोड़शी का रुदन समझे और उसका भावानुवाद करे ?

उस रात वह नहीं सो सका।....नहीं, यह लड़की साधारण नहीं है। इसके अश्रु भी साधारण नहीं हैं। और, वह यहाँ रहेगा तो इन अश्रुओं की तपिश में झुलस कर दग्ध हो लेगा। दूसरे दिन जरा ठेठ भोर अहाते में घूमने के बहाने वह उस बंद ताले से बाहर निकला और अहाते को फाँद कर वह उस कैद से भाग निकला। अलबत्ता कैद वह नहीं था। लेकिन उसके मानस पर वह लड़की अपने अश्रुओं के गीले बादलों का अन्धकार अवश्य छाये जा रही थी।

जब तक सन् ४२ का आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ, मारुती फरार रहा और अपने काम से व्यस्त रहा। समय-समय पर वह जमींदार साहब को अपना क्षेम सूचित करता रहा; लेकिन उन्हें यह अधिकार नहीं दिया कि वे उसे पत्र दे सकें। जब स्वदेशी सरकार स्थापित हुई, प्रकट होने के लिये पहला काम उसने यह किया कि वह जमींदार साहब की कोठी

पर पहुँचा और वहीं उसने अपना पहला दर्शन दिया। किन्तु उसने जो जमींदार साहब का दर्शन किया तो बस जड़ बन कर रह गया। जमींदार साहब बदल चुके थे। बाल सफेद हो गये थे, और ऐसा लगता था कि उनके पैर जमीन की सतह छोड़ चुके हैं और उर्ध्वगामी हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में आकस्मिक मिलन का आनन्द क्षोभ-मिश्रित करुणा की असह्य भाँप बन गया। जमींदार साहब ने उसे शांत भाव से देखा, चुप रहे और कि.........रो पड़े। बोले, "बेटा, हमारी बेटी तो टी० बी० का शिकार बन गई है।"

मारुती को लगा, किसी ने उसे सूचना दी है कि वह कोख-श्रीहीना इस धरती पर अपने जीवन की जड़ें गहराई से नहीं धँसा पाई है। मारी कोठी में दिन के तड़पते हुए सूरज के प्रकाश में भी एक भयावह अंधेरा छाया हुआ है। ऐसा अंधेरा जो धमनियों के ताजा रक्त को काला स्याह बना दे और नेत्रों की ज्योति को क्षुण बना दे। धीरे पैरों वह अपराधी सा अन्दर गया। कोठी के सभी अहलकार और दासियाँ इस व्याप्त अन्धकार की कालिख अपने चेहरों पर पोते हुए विभ्रम बने खड़े हैं कि हम आखिर सेवा करें तो किसकी? उसकी, जो मृत्यु के जबड़ों में भिचती जा रही है, चिथती जा रही है; कृश होती जा रही है...........?

दूसरे दिन ही उसने मरीजा को अपने साथ गाड़ी पर सवार कराया और पहाड़ पर ले आया। चलने समय उसने जमींदार साहब से यही कहा, 'अब मेरी बारी है, मैं इसके जीवन की सुरक्षा करूँ और मृत्यु के खूनी पंजे से इसकी रक्षा कर सकूँ।'

जमींदार साहब हिचकियाँ लेकर रो रहे थे। बोले, सिर्फ इतना ही, "मैंने तुम्हें इसे सौंपा। मेरी अन्तरात्मा इसके शरीर में है, सुनने की चेष्टा करना।"

सुन कर मारुती काँप गया था।

पहाड़ पर आकर उसने जमींदार साहब की बेटी की सेवा-सुश्रूषा

करने में रात-दिन एक कर दिया। सुना है बनवास के क्षणों में सतर्क प्रहरी लक्ष्मण ने रात्रि-जागरण का विश्व-रेकार्ड कायम कर दिया था। मारुती ने हर क्षण अपनी स्वस्थ साँस मरीजा के हृदय में संचरित की और स्वयं खतरे से घिरता गया।

एक दिन रानी बिटिया ने बताया, उसके पति ने अपनी दूसरी पत्नी के साथ भी यही व्यवहार किया है।

मारुती क्या करे? वह सिर्फ समाज की असंभव विडंबनाओं से पीड़ित चुप ही रहा।

रानी की तपेदिक उग्र रूप धारण करती जा रही है। डाक्टरों ने मारुती से कहा है कि वह भी मरीजा से दूर रहने की भरसक चेष्टा करे और मारुती भरसक चेष्टा यही कर रहा है कि वह उसकी सेवा में अपने आप को होम दे।

रात तीन बजे तक वह जागता है और यहीं दो घंटे सो पाता है। सुबह उठकर देखता है, उसके पैरों के पास एक पुष्प रखा है। यह पुष्प रानी ने अपनी श्रद्धा का अनुराग चढ़ाया है।

हाय! यह कैसी असंभव अवस्था है? वह रानी का केवल पुष्प स्वीकार कर सकता है। हृदय नहीं। इस उग्र संक्रामक अवस्था में वह रानी का स्पर्श भी तो नहीं कर सकता!

वह नित्य ही चरणों में रखे हुए पुष्पों को संभाल कर रख लेता है। उसे नहीं सूझता वह रानी को किस भाँति आश्वासन दे पाये कि उसने उसके सभी पुष्प हृदय से स्वीकार कर लिये हैं। दिन भर बैठ कर वह उसके पैर दाबता, उसका माथा दबाता और सरस जादुई कहानियाँ सुना कर उसका समय काटता।

एक दिन रानी ने बताया कि उसका पति अपनी दूसरी पत्नी की दुर्गति करने के उपरांत अब तीसरा विवाह करने जा रहा है। और उसी के आदेश पर वह रानी के पति को समझाने पहुँचा। उस राजपूत ठाकुर

हाय ! यह कैसी असंभव अवस्था है? वह रानी का केवल पुष्प स्वीकार कर सकता है। हृदय नहीं।
इस उग्र संक्रामक अवस्था में वह रानी का स्पर्श भी तो नहीं कर सकता !

ने शराब के नशे में धुत्त पहले उसका अपमान किया और फिर घर से बाहर निकालते हुए कहा, "अरे, नीच कहीं के, तूने मेरी ठकुराइन का सतीत्व भ्रष्ट किया है, इसीलिये मैंने उसका त्याग कर दिया !"

मारूती अपमानित, विवश, दुखी लौट आया। और उस तीसरी लड़की के यहाँ उसकी जीवन-रक्षा के निमित्त पहुँचा। यह खबर जैसे ही उस दुष्ट शराबी ठाकुर राजपूत को मिली, उसने पुलिस में एक झूठी खबर दर्ज कराई कि जो डाका हमारे गाँव में पड़ा है उसका नेता वह टेर-रिस्ट मारूती ही है। पुलिस इसी सूचना के आधार पर जमींदार साहब के गाँव पहुँची। जमींदार साहब ने तार देकर मारूती को सूचना दी कि वह छिप कर अमुक स्टेशन पर उतर आये। लेकिन घर जाकर जो रानी के कपड़ों का ट्रंक है, वह जला आये। अब उन कपड़ों की जरूरत है भी नहीं और वैसे यह बात फैलनी भी नहीं चाहिये कि तुम रानी की सुश्रुषा इतनी लगन से कर रहे हो।

स्टेशन से बाहर आकर मारूती चुंगी कस्टम पर जाकर देखने लगा कि वह किधर जाये ? एक ताँगा कर वह शहर की ओर चलने लगा।

'मारूती', एक जानी-पहचानी आवाज गोली की मानिंद उसके कानों को भेद गयी। उसका हृदय बैठ ही तो गया। फिर भी सतर्क हो उसने अपनी जेब में रखी पिस्तौल पर हाथ धरा और जरा ठीक से आँख खोल कर देखा..........देखा, ताँगे के आगे कार खड़ी है। और उसमें जमींदार साहब अश्रुविह्वल बैठे हैं। बोले, "बेटा; तुम यहाँ ?"

ताँगेवाले के पैसे चुका कर शीघ्रता से वह कार में जा कर बैठ गया और उनके पैर छुये। उनके हाथों की उंगलियाँ उसके केशों में उलझ गयीं। मारूती ने हकलाते हुए कहा—'पुलिस मेरा पीछा कर रही है।'

जमींदार साहब ने दूर किसी शून्य में झाँकते हुए, नहीं, दूर के अनन्त में धूमिल बनते हुये कहा—"मुझे मालूम है।"

"पर आप यहाँ कैसे ?"

"तुम्हारे सौभाग्य से।"

मारुती ने अपने माथे के पसीने की बूंदें पोंछते हुए कहा—"जब से मेरा और आपका परिचय हुआ है, केवल फूटा कुरूप दुर्भाग्य ही आपको मिला है।"

"नहीं; इतनी छोटी बात बोलने का मतलब यही है कि तुम अपनी कीमत नहीं समझ रहे हो। जिस दिन मैं इस दुनिया में नहीं रहूंगा, तब तुम अपनी कीमत लगा पाओगे.........।"—यह कहते हुए अश्रुओं की हलकी-सी धारा उनके कोरों से इस तरह निकल पड़ी, जैसे कोई घाव फूट कर बह निकला हो।

कार में बैठा कर ये उसे दूर खेतों में एक कोठी में ले गये। वहाँ देखा तो रानी की सेविका बैठी भोजन बना रही है। हठात् उसे देख कर मारुती चकित रह गया और वह मारुती के देखते ही फूट कर रो उठी। बोली, "रानी-बिटिया अब नहीं रहीं।"

जैसे ही मारुती उसके पास से, पुलिस की नजरों से बचने की कोशिश में भाग कर आया, रानी पहले बेहोश हुई और फिर कलप कर मर गई।

मारुती ने सुना और उसका माथा चकराने लगा। वह वहीं जमीन पर बैठ गया।

अब बारिश जोरों की हो रही है। बारिश के बादल न बरसें, सिर पर से खाली गुजर जायें तो पृथ्वी सहम जाती है, सिहर जाती है, व्याकुल हो उठती है और कराहने लगती है। और, पृथ्वी की हजारों कन्यायें बिना बरसे अन्दर ही अन्दर कुढ़ कर जड़ बन जाती हैं, तो भी यह पृथ्वी उसी तरह सहमने लगती है, सिहरने लगती है और कराहने लगती है।

मारुती ने अपने को झकझोरा। खिड़की खोल कर उसने बाहर देखा—व्योम में असंख्य बदलियाँ अपनी दूध भरी छातियों से अमृत-कण टपका रही हैं और यह पृथ्वी रोमांचित हो रही है। रानी भी

अपनी छातियों में दूध का नैसर्गिक स्रोत उपलब्ध कर लेती तो क्या यह पृथ्वी विभोर होकर नृत्य न करने लगती ?

मारुनी आंगन में गया और झूमती-झमकती बारिश में भींगने बैठ गया। रानी की मृत्यु का दाह वह आसमानी दूध भरी छातियों की फुहार से सिंचित करने बैठ गया चुपचाप।

[१६]

प्रश्न उठता है, यह जिज्ञासा किस कारण कि आप अपनी पत्नी किस तरह रखते हैं ?

आज देश में हमारे होनहार, उत्साही स्वप्नदृष्टा नवयुवकों को ९९ प्रतिशत पत्नियाँ उनके माता-पिता खोज कर या पकड़ कर सौंप देते हैं। अपरिचित घूँघट में दबी हुई, इच्छाओं के विपरीत, आशा से हट कर सर्वथा अज्ञेय, अपने पीहर से बिदा होते समय अपनी माँ के गले से चिपट कर रोने वाली वयस्का जब आप के घर में आती है, तब अनायास ही नहीं, अनेकानेक कारणों से बाध्य हो कर हम जानना चाहते हैं कि आप ने उस पत्नी को अपने जीवन के चौखटे में कैसे फिट किया है ? क्या इस काम के लिये कोई पूर्व-निर्धारित योजना थी ? यह तो समझ में अपने-आप आ जाता है कि मिलन की पहली रात्रि आपने कभी अपनी नव वधू की मधु-मंजूषा का माधुर्य आकंठ पीया होगा। लेकिन नारी के जीवित चर्म का स्पर्श ही पूर्ण दाम्पत्य की इति-श्री नहीं हो जाया करती।

पुष्पों का पराग-संचय और लौह-कणों का एक अग्नि-संस्कार मधु और श्रेष्ठ रसायन लौह-भस्म नहीं बना देते। मुर्गी को अपने अंडे अपने शरीर की ऊष्मा से सेने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर उसमें से चूजे निकलते हैं। पत्नी अपने हीरे की कान्ति से जगमगाते

शरीर से जो पहला प्रसव देती है, उसे तो एक प्रकार से मदांध जवानी की एक दुर्घटना मात्र समझिये। उसी के बाद आप अपनी पत्नी को किस प्रकार रखते हैं ? यह एक गंभीर सवाल आज की मौजूदा अर्थ-व्यवस्था और तेजी से परिवर्तनशील सामाजिक व्यवस्था में इतना सामयिक है कि उसका सामना हरेक को करना ही होगा। आप समय रहते देख तो लें, कि आप की वधु की शिखा नियमित ज्वाल दे तो रही है और उसका स्नेह पूर्ववत् हो तो रहा है ? और उसकी बाती तो नई नहीं बदल देनी है ? अन्यथा जिस दीपमाला को रात भर जल कर दीपावली का महोत्सव समस्त रात्रि गुंजारित रखना है, वह कहीं अधबीच ही गहन अमावस्या न ला रखे—हमारे विस्तृत क्षितिज पर !

बाढ़ का वैज्ञानिक समाधान और नियंत्रण। सामाजिक कुरीतियों का निरोध। दाम्पत्य की संक्रामकता का उपचार। तरुणाई की जोंकों का प्रतिघात। गिरिस्ती के दिवा-स्वप्नों का स्वस्थ संवेदन। अश्रुओं का प्रतिहार। हँसी की फुहार का समीकरण। जीवित वैधव्य के विरुद्ध सघोष विद्रोह और पौरुष के शारीरिक बलप्रयोग के खिलाफ सशक्त क्रांति।

नई रोशनी की श्वासें इतनी प्राणवान हैं कि उसमें जो भी प्राचीन है, वह इतना निःशक्त है कि या तो नई रोशनी का वरदान पाकर दुबारा जी उठेगा, या उसके भय से असमय में ही निर्वीर्यता के कारण अधिक दिनों तक नये जीवन की श्वासें न ले सकेगा।

इधर दाम्पत्य का नया मोड़ चिना जा रहा है। पश्चिमी सभ्यता में यह मोड़ वर्षों पहले चिना गया था और अब वहाँ इस मोड़ से आगे एक नया मोड़ तलाश किया जा रहा है। लेकिन भारत की अपनी निराली गति है। निराले स्वप्न हैं। और उनको हस्तगत करने के लिये निराले निश्चय किये जाते हैं।

यह नया देशीय मोड़ तलाक का है। नहीं जरूरत है, किसी 'मूर्ख युवक को देवता पति मानते हुए अपनी आत्मा का हनन करते-करते पूजते रहने की। वह मूर्ख और असहिष्णु है तो अपनी अलग दुनिया में जाकर सोये और जागे। दाम्पत्य का सुख जो अर्जित नहीं कर सकता, उसे पति क्यों रहने दिया जाये ? उसे पति के पद से अपदस्थ करना ही नया धर्म करार दिया जाना चाहिये।

यह नया समाजी मोड़ किन परिस्थितियों में कितने स्वेद और अश्रु की बलि देकर प्रस्तुत किया जा रहा है, यह भी देख लें। स्वागत है उस तरुणी का, जो रोते रहने के लिये तैयार नहीं है। जो अपने दाम्पत्य में बलिपशु के रूप में जीवन नहीं चाहती। जो पत्नी रहते हुए अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व का साम्राज्य स्थापित करने के लिये उतावली है। आइये, इस तरुणी को उसके इस नये क्रान्तिकारी आह्वान के लिय हम भी अपने उदार हृदय से अपनी जयमाला पहना दें।

आखिर बहुत सावधानी बरतते हुए भी, उस अथाह रेगिस्तान में पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन खो ही गये। जैसे तो रेत पर चलते-चलते साँप एक लीक बनाता हुआ अपने बिल में घुस गया हो, और उसकी लीक वहीं बिल के मुहाने पर शेष हो ली हो, वह टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी रेत के एक नये टीले की जड़ में जाकर रुक गई है। अब चारा यही है कि मनोरमा इसी टीले की जड़ में रुक जाये और.........न स्वयं भटके, न अपनी आत्मा को भटकाये।

पहली मंजिल, दूसरी मंजिल, तीसरी मंजिल से चौथी और वहाँ से छत और फिर वही तीसरी, दूसरी और पहली मंजिल। पहली मंजिल पर आकर मनोरमा ठहर गई। चारों मंजिलों के इक्कीस कमरों की भयावह नीरवता और ये सीढ़ियाँ जमी हुई रेत-सी ऐसी फैली हुई हैं कि अथाह रेगिस्तान से भी बढ़कर लग रही हैं। कोई दिशा नहीं, कोई

मार्ग नहीं, कोई गंतव्य नहीं। कोई सूचना नहीं। इन सीढ़ियों पर ही सुबह से शाम भटकते रहना रह गया है। अब मनोरमा इस विराट निस्सीम एकांत के असह्य भार से इसी रेत में धँसती जा रही है। लगता है, सारा आसमान सिमट कर उसकी खोपड़ी पर सवार हो गया है। ओह। इस विराट शून्य में तो इस पृथ्वी-खंड से भी अधिक बोझ है। विशेष रूप से इन क्षणों में, जब कि मनोरमा की विवाहित घड़ियाँ ताजी थीं, और दाम्पत्य-जीवन के उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम अपने निश्चित स्थानों से दूर हट गये हैं और कहीं खो-से गये हैं।

नहीं, नहीं साँप को खुले मैदान में, खुली सड़क पर मारा जा सकता है। उसके बिल में हाथ देकर उसे पकड़ना नितान्त असम्भव है। सुबह से टकटकी बाँधे जीवन के इस भयावह एकांत के उस बिल को देख रही है, जहाँ उसके जीवन का दुश्मन साँप सभी को दहलाये हुए कुंडली मारे छिपा बैठा है। साड़ी के आँचल से छलछलाती आँखें उसने पोंछी और देर तक तीसरी मंजिल को तकती रही। आखिर उसने निश्चय किया ओर तीसरी मंजिल पर गई। जल्दी से एक बड़ा ताला डाला और शीघ्रता से उस कमरे का दरवाजा बन्द कर यह भारी ताला लटका दिया। बिल का मुँह बन्द कर देना सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है। उसकी माँ ने एक बार पिताजी से कहा था, "बुद्धि मुझसे ही उधार ले लिया करो न! जब सामने दो साँप दिखाई दें, उन्हें डंडे से मारने की कोशिश न करो। कोशिश यह रहे, कि वे किसी बिल में एक साथ घुस जायें। उसके ऊपर एक भारी पत्थर रखो और उस पत्थर के चारों तरफ गारा लीप दो।"

माँ से कई दिन से मनमुटाव चल रहा था। मोका देखकर पिताजी ने हँस कर कहा था, "मनोरमी की माँ, किसी दिन मुझे ही साँप न समझ लो, और इसी तरह किसी बिल में बन्द कर जीवित गाड़ दो? बस, इतनी मेहरबानी करना। मैं तो दुमुँही साँप हूँ। एकदम विष से

निर्लिप्त और साधु। तुम्हारे चलाये एक मुँह चलता हूँ, अपने चलाये दुसरे मुँह चलता हूँ। मिट्टी खाना और सीख लूँ, आज्ञा दो तो ?" और, दोनों कई दिनों का मनोमालिन्य भूल कर हँस पड़े थे। जैसे पहाड़ी जलधारा की गति कई दिनों तक रुक कर सहसा पुनः आश्चर्य-जनक रूप से फूट आई हो।

सामने जो ताला अभी शीघ्र ही उस कुंदे पर हावी हो गया है, उससे नजर टकराई और जैसे नीर-भरी बदली किसी पहाड़ी की चोटी से जा टकराई, बरस पड़ी, तो अँखियाँ भी झर पड़ीं.......कि तीसरी मंजिल से महरी ने आवाज दी, "बहूजी ! ऊपर आ जाओ। चाय बना ली है।"

मनोरमा ने सुना, पर ऊपर नहीं देखा। महरी को वह अब जानकर भी कुछ जताना नहीं चाहती। परसों मुकदमा तय हो लेगा। उससे पहले अब किस बात का रोना। अपने हृदय के कंगूरों को अपने ही आँसुओं से अगर ढहाना पड़े, फिर यह मुकदमे का स्वांग क्यों ? यह तय है कि परसों जज साहब कृपाकर संबंध विच्छेद मंजूर कर देंगे और शायद मेरी परवरिश के लिये उन्हें बाध्य करेंगे कि हर महीने वे कुछ रुपया दिया करें। मनोरमा ने जो चाहा था, वही हुआ जा रहा है। पहले उसी ने हामी भरी थी तो उसका विवाह हुआ था। अब उसी की मर्जी से सौ बार ठोक-बजा कर पूछ लेने पर, उसके भाइयों ने मुकदमा दायर किया कि 'वे' मनोरमा के साथ पशुओं का-सा व्यवहार करते हैं, सो संबंध-विच्छेद मंजूर किया जाये। मनोरमा ने इसे असत्य माना कि विवाह-मंडप के चंदोबे के नीचे जो प्रणय-डोरी मंत्रों के उच्चारणों से गुंथी गई थी वही सत्य होती है। यह डोरी तो निहायत ही ढीली रही, प्रणय के प्रथम तनाव का आघात ही न सह सकी ! ओह : मेरे साथ कितना धोखा किया गया। मुझे उन दो पशुओं के अस्तबल में पशु समझ कर खूंटे से बाँध दिया गया ताकि मैं उनकी लातों को सहूँ, उनकी चोटी को सहूँ। उनके थपेड़े सहूँ और चुप रहूँ, आँसू

न बहाऊँ, सिसकियाँ न भरूँ, कराहूँ नहीं। नहीं, मैं वधु बनाकर नहीं लेजाई गई थी। उनकी किसी पैशाचिक सिद्धि के लिये मैं बलि की बकरी मान कर ले जाई गई थी।

महरी ने दूसरी आवाज दी तो मनोरमा ऊपर गई। सोफे पर जब आराम से बैठ कर उसने देखा, डिनर टेबल ठीक तरह से सजी हुई है। बीच में गुलाब और जूही के फूलों का गुच्छा फूलदानी में लगा हुआ मुस्करा रहा है। नेपकिन ठीक-ठिकाने पर रखे हैं। उधर आलमारी में कॉफी का सेट करीने से रखा है। अंग्रेजी कट-ग्लास की तश्तरियाँ और फलों के रस पीनेवाले पैग-ग्लासों का सेट आराम से मजे की साँसें ले रहा है। चाँदी की कटोरियाँ और चम्मचें भी ऊपर के दराज में जमी हुई चमक रही हैं। डिनर टेबुल का यह टेबल-क्लाथ उसने विवाह से पहले ही कशीदा किया था। आज महरी ने खिड़कियों की कर्टेन भी बदले हैं। शुरू से मनोरमा का स्वभाव है कि वह आधुनिक जीवन की सज्जा का चित्ताकर्षक उपक्रम नियमित तौर पर बनाये रही है। उसके दुलार को अधिक-से-अधिक उमंग देने के लिये उसके भाइयों ने यह पूरा मकान उसके नाम विवाह की घड़ियों में कर दिया था और यह तय हो गया था कि मनोरमा ससुराल के गाँव जाकर न रहेगी। इसी मकान में रहेगी। भाइयों की इच्छा थी कि इसकी निचली तीन मंजिलें किराये पर उठा दी जायें और ऊपर वह रहे। पर मनोरमा ने इस प्रस्ताव पर सिर हिला दिया था। नहीं, वह अपना साम्राज्य इस पूरे मकान में स्थापित करेगी। लेकिन साम्राज्य बसने से पहले ही उसके सब स्वप्न बन्द पलकों में ही कहीं खो गये हैं। अब तो खुली आँखों यही दिख रहा है कि वह इस पूरे मकान में अकेली है और आजीवन अकेली रहेगी।

महरी ने छोटी टेबल पास लाकर रखी। उस पर हल्का गुलाबी टेबल-क्लाथ बिछा दिया है। इसे मनोरमा ने विवाह की घड़ियों में तैयार किया था। इस पर लिखा है, "फॉर गेट-मी-नोट।" चाय की

ट्रे आ गई। चाय की केटली पर नमदे का कवर ढँका हुआ है। मनोरमा ही ने यह प्यारी गुड़िया इस कवर पर सी दी थी। गुड़िया का लहँगा कवर के चारों ओर कैसा फब रहा है? ट्रे के बीच में वह खड़ी हुई गुड़िया ऐसी लग रही है जैसे सामने बैठने वाले को चाय पीने का प्यार-भरा आमंत्रण दे रही हो।..........और महरी ने एक कप चाय का तैयार कर उसकी हथेली पर रख दिया।

कितनी तैयारियाँ की थीं मनोरमा ने अपने विवाह को सुखद भविष्य के राजमहल में आसीन करने के लिये? सच तो यह है कि विवाह की घड़ियों में मनोरमा इतनी खुश थी कि खुशी का उसे गहरा नशा छा गया था। उस नशे में धुत उसने सारा मकान अपने हाथों सजाया था और इसकी एक-एक चीज अपने हाथों जाकर बाजार से लाई थी और अपनी मर्जी से उसे ठिकाने लगाई थी। बड़े भइया यह देखते थे। एक दिन उन्होंने बड़ी भाभी से हँसकर कह भी तो दिया था, "यह लाडो मनोरमा तो इस घर को सजा कर इस तरह तैयार कर रही है जैसे तो यह पूरा मकान हवाई जहाज सा उड़ने की तैयारी कर रहा हो!' इसमें शक भी क्या था, मनोरमा अपने भविष्य को दो डैने लगा रही थी कि वह सुखद विचरण करती रहेगी अनन्ताकाश में।

मेहरी ने खांस कर मनोरमा को सचेत किया। कहा, "चाय ठंडी हो रही है। ये मठरियाँ भी रखी हैं। बिस्कुट भी हैं।" ठिठकी-सी वह होश में आई और चाय की चुस्कियाँ लेने लगी। एक मठरी खाई। दो बिस्कुट भी खाये। आज भी उसकी आदत कहाँ गई है? कीमती बिस्कुटों के बिना वह चाय की एक चुस्की नहीं ले पाती। पहले वह क्रीम-बिस्कुट की दीवानी थी। लेकिन पिछले पाँच साल से मिडिल पास करने के बाद से, ओवल्टीन-बिस्कुट ही उसे प्रिय हैं। इस प्रियता का निभाव वह किस प्रीति से नहीं कर रही है! उसने स्वप्न देखा था कि विवाह के बाद वह अपने पति के लिये अपने हाथों दूधिया

बिस्कुट तैयार करने लगेगी, दुर्भाग्य! उस पशु के लिये दूधिया बिस्कुट में और बाजारू पापड़ में कोई अन्तर नहीं था। वह पति बन कर कहाँ आया था? वह तो मुझे अड़ियल घोड़ी समझकर पहले से ही हाथ में डंडा ताने आया था और उसकी सास ने अपनी हिफाजत के लिये झाड़ू ले ली थी। बगल में कपड़े कूटनेवाला डंडा दबा लिया था।

गले में चाय की चुस्की अटक सी गई। पर उसने कठिन होकर पूरा कप चाय पिया और और दूसरा कप भी शेष किया। तो महरी ने सुगंधित पान का बीड़ा हाथ में दे दिया। उसे मुंह में दबा कर वह अनाथ चिड़िया-सी चुप बैठी रही। जैसे तो कोई व्यथा उसके तमाम शरीर में संचरित होकर उसे जड़वत् बना गई हो, मनोरमा इस मकान के स्तब्ध कामरों की बन्द दीवारों में मरी जा रही थी। खुलकर उसने विद्रोह तो ऐसा किया है कि चारों ओर शहर में उसकी चर्चा है। अखबारों में भी उसी का विद्रोह विवाद का विषय बन गया है। बड़े-बड़े पोस्टर दीवारों पर चिपके हुए लगे हैं। एक तो ठीक उसके मकान के सामने लगाया हुआ है, जिस पर मोटी सुर्खी में लिखा है : "शूर्पणखा की इन बेटियों से सावधान!" और उसमें मनोरमा के मुकदमे के तथ्यों को तोड़-मरोड़कर वर्णित किया गया है। मनोरमा कई बार उस सुर्खी को पढ़ चुकी है। अपने को 'शूर्पणखा की बेटी' जान कर वह कठोर आत्मा और भी कठोर होने लगती है। लेकिन अन्दर ही अन्दर उसका स्पात क्यों नरम पड़ता जा रहा है, क्यों कच्चा लोहा सिद्ध होने की तैयारी कर रहा है? शिक्षित होकर क्या शूर्पणखा की विरासत मैंने थाम ली है? ताकि मैं अपने उस अशिक्षित पति से ताड़ित होती रहूँ, पिटती रहूँ, प्रशासित होती रहूँ तो मैं सती-साध्वी बनी रहूँगी? क्रोध और रोष से वह इतनी क्षुब्ध हुई कि चहलकदमी करने लगी.........जिसने उसकी आत्मा का अपमान किया है, वह उसका उत्तर अपमान के अर्थों में कहाँ दे रही है? वह तो स्वयं ही कठोर एकान्त का श्राप स्वीकार कर रही है! लक्ष्मण ने

मर्यादा की रक्षा के लिये शूर्पणखा की नाक काटी थी । और ये इतने निर्बुद्धि निकले कि मेरी दहेज में दी हुई इस अचल सम्पत्ति-रूप मकान को हस्तगत करने के लिये भगवान राम अपनी सीता की ही नाक काटने दौड़ पड़े ?

सामने बड़े शीशे में उसने देखा, उसकी दोनों वेणियाँ कन्धों पर बल खाती हुईं सामने वक्ष पर झूम रही हैं । इन दो वेणियों से उसका रूप सस्मित हो उठता है । वेणियों की अंतिम गम्फियों में वह दो रंगीन रिबनों के फुंदने लटका लेती है तो यह स्मिति इतराने लगती है । मनोरमा का वंश मेरठ की ओर से आया है । यहाँ की वृत्ताकार सुघड़ता की श्री मनोरमा की देह को मिली है । यही कि मांस की दो अतिरिक्त तहें उसकी देह पर अधिक चढ़कर आई हैं । इसीलिये जब उसकी देह निखरी तो उसकी रूप-श्री के उद्गार भी मुखरित होने लगे और वह पंजाबी कुड़ी वाली आन-बान से सज्जित हो उठी । जब तक स्कूल में जाती रही, सलवार का मोह उसे अपने उद्दाम स्वरों को लेकर सजीव बना रहा और मनोरमा लुंगी को अल्हड़ता से बिना करीने के गले में लपेटे हुए डाल-डाल पर फुदकती हुई कुहूकती कोयल के सदृश बनी रही । जब शादी की बात घर में चल रही थी तो उसने आपत्ति उठाई कि अभी कैसा विवाह ? अभी तो मैं निरी बच्ची हूँ । छोटी भाभी ने उसके गुदगुदी की और कहा, "यहाँ आओ ।"—अंदर ले जाकर उसने नंद को पेटीकोट पहनाया और उस पर साड़ी सँवारी और तब ले जाकर आदमकद शीशे के सामने पकड़ कर खड़ा कर दिया । मनोरमा ने विस्फारित नेत्रों से देखा, साड़ी पहन कर वह तीन बालिश्त लंबी हो गई है । तो तीनों ही भाभियाँ चुहल करती हुई खिलखिला पड़ीं और बोलीं, "लो, अब तो हम तीनों की नजर लग गई तुम्हें । अब तो अगले महीने तक शादी होकर ही रहेगी । नहीं बाबा, बाँस सी लम्बी होती जाओगी तो कौन सीढ़ी लगा कर चढ़ा करेगा ?"

बस उसी दिन से साड़ी का क्रम नियमित हो गया और विवाह भी हो गया। वह जान चुकी थी कि जो उसका पति है वह निर्धन परिवार का है। लेकिन सुशील है। घर में विधवा माँ है और बस। मनोरमा ने इसमें अपना कल्याण जाना था। वे बी० ए० तक शिक्षित हैं, यह काफी है। पिताजी और माताजी जीवित होते, वह अपने जी की धुकधुक उनके सामने रखती। अब भाइयों की जो इच्छा है, वह शुभ ही रहेगी, यह उसने मान लिया है। वे उसके लिये कौन-सी कमी रख रहे हैं, भला बता तो दे कोई !

बारात आई। प्रथम दर्शन में पति उसे भा गया। विह्वल, आतुर, शरद की ओस सी वह झरी और आरती की घंटी-सी पति के सम्मुख स्वयं ही टुनटुनाने लगी। दीप, नैवेद्य भी बन गई। सुहाग-रात्रि के सर्व प्रथम चरण में उसका घूँघट जब उठाया गया तो उन्होंने प्यार भरी दृष्टि से अनिमेष देखा ! मनोरमा का रक्त सावन की झड़ी-सा कण-कण हुआ और वह पति के चरणों का स्पर्श कर बैठी। मौन, निस्तब्ध। उसे लगा, सिर्फ प्रेम की एकांगी भावना वह अपने हृदय में भर कर नहीं लाई है। वह क्या कुछ लाई है, सो धीरे-धीरे खोल कर बतलायेगी ?

मनोरमा ने स्कूल में अपनी उस सहेली को खूब झाड़ा था, जिसे उन्माद था और जो दम भरती थी कि उसे अमुक युवक से प्रेम हो गया है। उसने कहा था, "अरी बावरी, यह प्रेम टेबल-लैम्प नहीं है कि प्लग जोड़ा , स्विच आन किया और रोशनी जल गई। अपनी दोनों हथेलियों से रगड़कर आग पैदा करनी पड़ती है, तब जाकर प्रेम की खीर पकती है।"

उसकी सास ने मनौती की थी कि गौनावली बहू को सात रोज के लिये गाँव जरूर आना पड़ेगा। अपने खर्चे से वह उनके संग सैकंड क्लास में गई थी। एक छोटे स्टेशन पर उतर कर बैलगाड़ी में बैठे

थे। जब गाँव पहुँचे तो सारा गाँव इस अनोखी बहू को देखने उमड़ पड़ा था, जो अपने संग पूरा मकान लेकर आई है। बूढ़ी सास ने उसे देख कर हर्ष कम, अशुभ अधिक माना। दो जेवर पहन कर जो बहू आई है, वह क्या धनभाग है! अपनी लाज छिपाने के लिये सासजी नें टूटे ट्रंकों से चाँदी के झाँझन निकाले, पायल निकाली, बिछुवे और चाँदी की चूड़ी निकालीं और उसके पैरों में कड़ियाँ डाली। मुसा-मुसाया, गोटा लगा घाघरा पहनने को दिया। कमर में तगड़ी डाली। हाथों में चाँदी के छन, सूआदन्ती, गजरी, पहुँची पहनाईं। गले में आध सेर वजनकी हँसली डाली, फिर सिर गुंथाई की और मीड़ियों में मोम मला। माथे पर बोरला कसा। सिर पर गुंथ गया तो वह खिंचे हुए बालों से सहम गई। उसका माथा फटा जा रहा था। गवँई जेवरों को पहन कर और ग्रामीण रूढ़ियों से बँधकर वह सारा उन्मेष भूल गई। आनन्द विराग में बदल गया। वह नहीं समझ पाई कि मैं कौन से नये जन्म को लेकर बदल गई हूँ। जब सास ने प्यार न देकर ताने देने शुरू किये कि दहेज में यह नहीं लाई, वह नहीं लाई, तो वह सिहर गई। हाथ और पैरों में, गले में चाँदी के वजनी जेवर हथकड़ी और डंडा-बेड़ी और गला-बेड़ी से लग रहे थे और अकथनीय पीड़ा पहुँचा रहे थे। फिर भी वह चुप थी और घूँघट में बन्द बची-खुची मुस्कान को खिलाये हुए शान्त थी। लेकिन उसका हृदय इस आक्समिक यातना-व्यापार से दर्द पैदा करने लगा था। ग्रामीण वधुओं से सहानुभूति संजोने के लिये उसने जो बातें शुरू कीं तो सास नें डाँट दिया, "बस, दहेज में तो यह कतरनी-सी जबान लाई है। मैं कह देती हूँ, इस जबान से यह मुझे भी कतरेगी, अपने खसम को भी कतरेगी और तब इसके जी को सांसत मिलेगी। हुँ!" सो उसनें कठोर मौन धारण कर लिया। सात रोज तक वह प्रतिपल जीवित नरक का स्पर्श करती रही और कुढ़ती रही, मन-हीं-मन रोती रही। सातवें रोज बिचले भइया उसे लेने आये। उसकी यह दुर्दशा देखी,

"बस, दहेज में तो यह कतरनी-सी जबान लाई है। मैं कह देती हूँ, इस जबान से यह मुझे भी कतरेगी, अपने खसम को भी कतरेगी और तब इसके जी को साँसत मिलेगी। हुँ!"

अर्द्धमृत चेहरा देखा, गंवई श्रृंगार देखा, रो न सके। हँस पड़े। बोले, "मनोरमी, यह कौन से नाटक का सीन है ?" लेकिन उत्तर में जब मनोरमा फूट कर रो पड़ी, तो उनका हृदय फट पड़ा। आर्द्र कंठ से गुमसुम रहे और उसकी सासके व्यंग-वाणों का प्रहार बरदाश्त करते रहे। क्या लोक-कल्याण की योजना बनाई थी, क्या सर्वनाश हो गया है बहन का। घर-जवाँई नहीं, आस्तीन का साँप पाला हो जैसे !

वह लौट आई। इस भरोसे पर कि पति जो है वह सुशील है। देवता है। वह भी साथ ही आया। उसकी माँ ने मना भी किया, पर यह तो बहू के रूप पर लट्टू हो रहा था। आकर मनोरमा के साम्राज्य में सम्राट् की तरह रहने लगा। सशंकित, वह उनकी पूजा में व्यस्त रहने लगी। यही तीन मास बीते; उसके पति को मालूम हुआ कि यह २१ कमरों का मकान उसके नाम न लिखा जाकर मनोरमा के नाम लिखा हुआ है। क्रोध से वे सारा पूजन-आयोजन भूलकर सच्चे आस्तीन-साप की तरह फूत्कार कर उठे। तुरंत गाँव गये और लौटे अपनी माँ को लेकर। वह माँ क्या आई, साक्षात् रणचण्डी किटकिटाती आई। और मनोरमा का सुबह-शाम जीना हराम हो गया। भाइयों ने धैर्य रखने को कहा। उससे राय भी ली कि तुम्हारे पति के नाम यह मकान लिख दिया जाय ? मनोरमा ने दृढ़ स्वर में इंकार किया। इसका फल यह निकला कि ग्यारहवें रोज 'उन्होंने' उसकी डंडे से पिटाई भी कर दी। सास ने झाड़ू से उसे जो पीटना शुरू किया तो जाने कितना पीटा और कहा, "अब तो इस घर में मेरे बेटे की दूसरी बहू आकर बसेगी। इस कुल्टा को जहर देकर मार दो।"

दाम्पत्य को कोई सर्प डस जाये कोई तो क्या करे ? शाम को सब भाई आये। मनोरमा का आग्रह था कि यह दाम्पत्य मुझे स्वीकार नहीं है। मैं समझ लूंगी कि मैं विधवा हो गई हूँ। भाइयों ने सुना, भाभियों ने सुना, पास-पड़ोस ने सुना। पति ने सुना। सास ने सुना। औरों ने

तो हाहाकार किया, पर पति और सास तो आसमान से गिर पड़े । यह सबकी कल्पना से परे की बात थी कि यह बहू यूँ तलाक दे बैठेगी । उनका ख्याल था कि धमकी और मारपीट से परेशान होकर ये सब और अधिक धन हमारे चरणों पर ला रखेंगे । पर भाइयों ने मिल कर उन्हें मकान से जबरदस्ती हटाया और तीसरे ही दिन मुकदमा दायर कर दिया गया । जब साहब के सामने उन्होंने बयान दिया कि मैं मनोरमा का पति हूँ । उसकी हर सम्पत्ति पर मेरा अधिकार है ! पत्नी को मारने-पीटने का भी मेरा अधिकार है, क्योंकि यह मेरी विवाहिता बीबी है ।

मनोरमा ने अपने बयान में यही कहा, "यह मकान ही मैंने अपने दाम्पत्य के सुख की कसौटी बना कर अपने लिये सुरक्षित रखा था । मुझे एक राक्षस-पति नहीं चाहिये । मुझे एक देवता चाहिये, जिसकी मैं श्रद्धा करूँ तो वह मुझे वैसा फल भी दे । अतः मैं संबंध-विच्छेद की प्रार्थना करती हूँ । दहेज में इन्होंने नकद पाँच हजार रुपया लिया है । कृपया मेरी परवरिश के लिये इनसे आग्रह किया जाये, ये मुझे मासिक भत्ता देते रहें ।"

अपने इन शब्दों को एक बार दुहराती हुई मनोरमा रुक गई और एकटक सामने आलमारी में रखे एक अद्भुत खिलौना देखने लगी । पिताजी यह उसके लिये आज से आठ साल पहले खरीद कर लाये थे । वह तब सात साल की थी । एक दिन मचल गई थी । माताजी ने जरा रुष्ट होकर उसकी पिटाई की थी । शाम को वे उसके लिये लेमनड्राप्स लाये थे और यह खिलौना पाँच तिनकों को इस तरह सफाई से बाँधा गया है कि यह हाथीनुमा हो गया है और चारों तरफ काली रुई इस कुशलता से लपेटी गई है कि कारीगर का हाथ चूम लेने का जी आज भी करता है । मनोरमा इस हाथी से कितना खेली थी । पर माताजी इस लाड़ पर और तुनक गई थीं । पूछा था, "क्यों, इस लाडो के लिये अगर एक पैसे का जिंदा हाथी भी मिलेगा तो ले आओगे ?" पिताजी ने खिलखिला कर

कहा था, "क्यों नहीं।" पर उस हास्य का भावार्थ मनोरमा उस दिन कहाँ समझ पाई थी ? समझी पूरे पाँच साल बाद। उस दिन बडी भाभी कोपभवन में कैकेई बनी बैठी थीं। बड़े भाई शाम को दुकान से लौटे तो जरा दुखी थे। पर सरस होकर बोले, "अरी महारानी जी, बाजार में एक पैसे का हाथी मिलता है, पर अपने पास न एक पैसा है न उस हाथी की खुराक ही है, तो क्या करेंगे उसे खरीद कर।"

ओह: मनोरमा के लिये एक पैसे का निर्बुद्धि जीवित हाथी मेरे भाइयों को मिल गया, सो क्या तसल्ली से पकड़ लाये थे। लोक-कल्याण की भावना को इस हाथी ने अपनी चिंघाड़ से उद्धत होकर अपने ही पैरों से चीथ दिया है।

बाहर छज्जों पर आकर उसने वह ताला देखा। उसी कमरे में उसकी सुहागरात्रि मनाई गई थी। चार रोज हुए है, उसके पति ने अपना दूसरा विवाह एक ग्रामीण कन्या से कर लिया है।

आखिर वह मुस्करा उठी। उसने अपने को स्वस्थ किया। महरी को साथ लेकर वह नीचे आई। ताला खोला और सुहाग-शैया के बिस्तरे की तहें लपेटी और पलंग का निवार खोलने बैठी। कल यह सुहाग-शैया वह गाँव भिजवा देगी। उनकी नई शादी की खुशियाली में कोई अभाव न रह जाये। अपनी खुशी तो मैं परसों के बाद स्वयं ही व्यवस्थित कर लूँगी। न्यायालय के निर्णय के बाद।

[१८]

किन्तु, मनोरमा ने अपना पिण्ड आस्तीन के साँप-रूप पति से छुड़ाया है। आज ही जो पत्नी विधवा हुई है, वह क्या उसी विधान को मानती रहे जो नरक की सीमाओं को लेकर साँसें लेता है ? या, वह नया विधान बनाये ? और क्यों न बनाये, जब कि वह विधवा हो गई है और सारे समाज में अनाथा है, निस्सहाय है और घोर अन्धकार में अकेली है ?

परसों ही कुतुब मीनार गिरी है । वह पाँचवीं मंजिल पर खड़ी हुई दूर आकाश का स्वर्गपथ देखने के लिए आँखों को एकाग्र किए हुए थी कि सहसा ही समूल कुतुब-मीनार जमीन पर से उखड़ी और.....ओह ! कितना भीषण ! पाँचों मंजिलें हठात जमीन से उखड़ीं और फटी हुई छत-सी धम से नीचे आ गिरी । उसे तो उस क्षण होश हुआ है पूरे तीन दिन बाद कि वह जीवित है । अभी पड़ोस में गिरिजा भाभी की ननद से मेहतरानी कह रही थी, "हाय, बेचारी नई बहू विधवा हो गई !'"

घर भर में श्मशान की गहरी काली अँधियारी छाया आकर घुमेर खा रही है । मनुष्य के सड़े हुए अंगों की असह्य दुर्गन्ध श्मशान के अंग-अंग में रमी हुई रहती है, यहाँ घर में यह विस्मृत गंध सिर खोल कर पूरे क्रोध से काँपती हुई सबका जी दहला रही है, सब को मौत की अनजानी-अनदेखी ज्योति से चकाचौंध किए दे रही है । इसी से घर के सब लोग छाती पीट लेने के बाद अब घुटनों में सिर छिपाए हुए चुपके-चुपके सिसक रहे हैं । ऐसा लगता है कि सारा घर किसी प्रेत ने जैसे अपनी हथेली पर उठा कर श्मशान के पास लाकर टिका दिया है और चिता की भयंकर लगलपाती धू-धू विकट किटकिटाहट करती हुई सबके दिल को चीर फार धज्जी-धज्जी कर देना चाहती है । खामोश, निस्तब्ध, विमूढ़, सांघातिक आघात से सभी सुन्न हैं । पड़ोस के इर्द-गिर्द मौत का दाह अपनी झुलस छोड़ गया है । मानो पड़ोस के झोंपड़ों की आग से एक हरे-भरे उद्यान की पूरी हरीतिमा दग्ध होकर स्याह पड़ गई हो ।

आज सोमवार है । पिछले सोमवार को बीते आज सात रोज हुए हैं । उस दिन कश्मीर से उन के संग लौटी थी । चार मास पहले जब वह कश्मीर के लिए घर से चली थी तो गिरिजा भाभी ने उसके कान में चुपके से, उसकी बगल में गुदियाते हुए कहा था, "बहूरानी, कश्मीर में, ससुराल के शोरशराबे से और भाभियों के पहरे से दूर, जाकर सुहागरात मनाने जा तो रही हो, पर जरा ख्याल रखना कि रात

के अँधियारे में अपने सुहाग की तलवार तैश में आकर कहीं अंधाधुंध चलाने बैठ जाओ और उसे भुथरी कर डालो।"

पीठ पीछे पड़ोस की दो बहुएँ और भी सुन रही थीं। सो तीनों इस बात पर खूब खिलखिला कर हँसीं। वह भी बरबस, गिरिजा भाभी की बात पर हँस पड़ी। बगल में खड़ी एक नई दुल्हिन को वंदना ने एक चपत लगा दी—जो अभी अभी गौनावली लौटी है और जिसकी पीहर वाली मेंहदी अभी तक सुर्ख बनी चमक रही है उसकी गोरी-गोरी नग्न हथेलियों पर। इस दुलहन के गोरे गाल इतने कलात्मक हैं कि उसने अपने जीवन में इनसे सुन्दर और किसी के कपोल देखे ही नहीं हैं। महसूस होता है कि विधाता ने स्वयं स्वर्ग के पुष्पों को दो गुच्छों में बांट कर इस तरह इस की नासिका के अगल-बगल सजा कर रखे हैं कि रति का दर्प भी भंग हो जाए और नारी के सौंदर्य में एक नवीनतम स्वर मुखरित हो जाए। जब यह नई नवेली भाभी सामने खड़ी होती है, उसके दोनों कपोल उस की मुख-श्री को भावविह्वल बनाए रहते हैं। जब वह प्रोफाइल में रहती है तो लगता है कि क्षितिज की ओर सौंदर्य का दुग्धश्वेत राजहंस चकित-सा मुग्ध उड़ते-उड़ते ठिठक कर रह गया है।

वंदना हँस दी तो गिरिजा भाभी ने राह पाकर वंदना को गले में बाहें डाल कर समीप किया और आँखों को मटकाते हुए कहा, "सुनो हमारा गुरुमंत्र। सुहागरात चाहे दो दिन की हो या सात मास की, किसी भी क्षण अपना पूरा घूँघट अपने देवता के आगे न खोलना। हमारे कहे पर अमल करोगी तो आजीवन सुख पाओगी।"

इतना कहना था कि न सिर्फ घर की चहारदीवारी, बल्कि सारा पड़ोस इन की पैनी हंसी से गूंज गया, गद्गद हो गया।

वंदना ने जैसे-तैसे अपने को मुक्त किया और दोनों हाथों से इस गुरु-मंत्र को सर-माथे लेते हुए कहा, "गुरुजी की बात हम ने साड़ी के पल्ले में बाँध ली है।" और झूम-झूम कर हँसने लगी। सभी भाभियाँ कूद-

कूद कर जमीन पर पैर पटकते हुए हँसने लगीं तो लगा हास्य की तरं-गिणी बदलियाँ गरज भी रही हैं और बरस भी रही हैं।

भाभियाँ, स्वजन और पड़ोस की अन्य सखियाँ जब स्टेशन से लौट गई थीं, और ट्रेन वंदना और उसके पति को अपनी गोद में हल्के से उठा कर कश्मीर की तरफ बढ़ चली थी, तो कंपार्टमेंट के एकांत में उनकी संगति का सुहास और माधुर्य इतना अतिशय हो उठा था कि एकबारगी वंदना खीज कर झुँझला उठी। करीने की मिठास भी हिसाब से जबान को सुहाती है। और जबान भी हिसाब से मीठे का जायका लेती है। ये जरा फुरसत लेने दें और मुझे सोने दें। पर प्रणय का माधुर्य झड़ी लगा कर गरज-गरज बरस रहा है—चाहे झुँझलाओ, चाहे घुमड़-घुमड़ कर गरजते हुए बादलों की सुखानुभूति का ऐश्वर्य लूटो और आनन्द करो। उन्होंने कुछ क्षण वसंत ऋतु की मुखरित बाँसुरी का राग सुना, उस का मुक्त उच्छृंखल विचरण देखा। दूर तक जंगलों और खेतों में नई फूटी हुई हरियाली का उठान देखा और फिर सीधे वंदना को देख कर मुस्करा दिए। वंदना का गात और अंग कैसे बसंत की प्रथम मृदु श्वास से कंपन खा रहे हैं और सुवासित हैं। वंदना लाज में सहसा ही सिहर गई। पहली बार की प्रसवमती गाय जिस तरह पहली बार दूध दुहाते समय खूंटा तोड़कर भागने का उपक्रम करती है, वंदना कुछ बेचैन सी, उनसे नजर बचा कर दूर बहती नदी को देखती रही।

वह इनके संग कश्मीर जा रही है। गुदगुदी के साथ हूक उठी—सुहागरात मनाने! जिस घड़ी की प्रतीक्षा में वह आशंकित बनी हुई इतने सालों से सतर्क थी, सुहागरात के नाम से अनजाने बार-बार चौंक जाया करती थी, आज वही घड़ी रावण की तरह उसका हरण किए जा रही है। कमबख्त रावण भी सीता को हजारों मील दूर लंका ले गया था। कालेज में आते-जाते वह किसी भी सुन्दर युवक को देखकर भय-कंपित हो जाया करती थी, और घंटों बस एक निगूढ़ विराट प्रश्न को

ताकती रहा करती थी सुन्न। इस क्षण इन्होंने मुसकराती आँखों जाने क्या प्रश्न कर दिया है कि वह हठात् उमड़ पड़ी और सकुच कर रह गई। पर अनायास वह उसे देख कर विमोहित हो गए और मादक नेत्रों से जरा गहराई से मुस्करा दिए। उनकी मुसकान ने वंदना को एक प्रेम भरी थपकी दी और एक मीठा आश्वासन पाकर वह भी मुस्करा पड़ी।

अब तो उसे याद नहीं है कि फिर किस तरह गाड़ी में उन के संग बातें शुरू हो गई थीं। प्रिय के संग बात किस तरह नए परनाले-सी बह पड़ती है, यह तो वह जान पाए जिसने प्रणय के तेज सरूर में होश रख कर भी अपना तीसरा नेत्र खोल कर रखा हो। उसे पूरा ध्यान है कि उसकी आँखों के निकट उनका प्रोज्ज्वल चेहरा आकर स्थिर हो गया था। चलती हुई गाड़ी से दोनों खिड़की के बाहर निकल कर हवा में उड़ने लगे थे। वह उनकी गोद में थी और वह बस उसके कान में कुछ कहे जा रहे थे और वह सुने जा रही थी........एक इतनी लंबी कहानी कि जैसे स्वप्न में वह सुनी हो और इस समय निद्रा खुलने पर याद न हो।

लकड़ी के कोयलों की अंगीठी में जब पहली चिनगारी सुलगने लगती है, तो किस तरह सारे कोयले तप्त होकर उस चिनगारी का स्वागत करने के लिए उतावले हो जाते हैं। और जैसे-जैसे पंखे की हवा का आलिंगन-स्पर्श उस चिनगारी को गहरे उकसाता हुआ उस के सारे अंगों को अपने भार से वशीभूत करता जाता है, उस चिनगारी की दीर्घ निःश्वास-रूप फुलझड़ी जैसे पतंगे प्यारी प्यारी ध्वनि करते हुए सारी अंगीठी को आवृत कर लेते हैं। पंखा अपने सुहावने थपेड़ों से उन कोयलों को दहकने की उसासें देता रहता है और क्रम से आग पकड़ते हुए उन कोयलों से निःसृत होनेवाले वे मृदु स्फुलिंग शीघ्र ही शांत हो जाते हैं, और बस वे कोयले दहकते हुए नीचे से अपनी दाहक आग ऊपर की ओर उठाना शुरू कर देते हैं। देखते-देखते सारी अंगीठी दहकने लग जाती है।

वंदना भी पति के उस सीधे नेत्र-स्पर्श से उसी क्षण अपने अंदर नई तरुणाई के स्फुट अंकुर के रूप में मधुर संभार लिए हुए घृतपिंडों में पहली चिनगारी पकड़ बैठी थी। पति ने बातें करना क्या शुरू किया, जैसे उसके अंदर लगी हुई पहली चिनगारी को कोई पंखा झलने लगा और हल्की-हलकी फूंक देने लगा। उधर कश्मीर की दिशा में अपने डैनों को फैलाए हुए बढ़ी जा रही गाड़ी अलग से क्षितिज और अनंत आकाश की प्रबलतम वायु से उस अंगीठी को दहकाने की धूम मचाए हुए थी।

वंदना का अंग-अंग गरम कोयलों से निकलते हुए चिनगारी-स्वरूप मांसल स्फुलिंगों से इस तरह आवृत हो गया था कि वह स्वयं नहीं जान सकी कि वह कितना दहक चुकी है, अव कितना उसे दहकना बाकी है ? इतना तो उसे होश था कि उस की साँसे तप्त से तप्ततर, तप्ततम होती चली गई थीं। और उसके पति निरंतर मीठे मुस्करा मुस्करा कर, हँस-हँस कर किसी मीठी उत्तेजना से मचल मचल कर बातें कर रहे थे और वे बातें तेज पंखे सी उसे दहकाए चली जा रही थीं, उसके अन्दर की सुप्त अग्नि को तेजी से प्रचंड किए जा रही थी। उसके शरीर में कहाँ से इतने घृतपिंड स्फूर्त्त हो आए थे, नहीं जानती। पर वक्ष, चेहरा और दिमाग गरमी से तपतपा चुके थे। हाँ, यह उसे होश था कि उस की तप्त साँसें पति को मधुमास से हरियाई हुई सांत्वना देती रही थीं, ठीक उसी तरह जैसे जाड़े में ठिठुरते हुए किसी इन्सान को सहसा ही दहकती हुई अंगीठी की गरमी से एक प्राणदायक सांत्वना मिलने लगी हो।

घर में शोक-प्रदर्शनकारी नाते-रिश्तेदारों और प्रियजनों का ताँता लगा हुआ है और अभी 'उनके' कुछ कालेज के मित्र आए हैं। उनका सहसा ही साहस नहीं हुआ कि अपनी इस नई वंदना भाभी के पास आएँ, जो इस क्षण विधवा हो चुकी है, और नटखट भाव से नमस्कार करते

हुए, कुछ मुसकराते हुए, पहले दिन की तरह आज भी पूछें, "क्यों, भाभीजी, आज हमारे भैया की खबर झाड़ू से ली थी या गुलाब के फूलों की टहनी से!"

और फिर खुद ही बड़े जोर से हँस-फूल कर उसे इतना रिझा देते अपने अल्हड़ स्वभाव से कि नाहक वह अपनी भव्य रुपहली हँसी की टंकार और झंकार अपने होठों के धनुष पर तान कर इतने जोरों से गुँजा देती कि पास-पड़ोस तक के बच्चे और युवक क्षण भर को सतर्क हो जाएँ, आनन्द पा जाएँ, कि पड़ोस की नई बहू, जो एम० ए० है और विलायत से आई है, और अभी अभी कश्मीर से सुहागरात मना कर लौटी है, इस क्षण हँस रही है, विनोद में अपने पति के मित्रों से खुल कर चुहल कर रही है।

उसने सीढ़ियों पर बैठे-बैठे देखा, वे सब मित्र आए और उसकी सास जी के सामने बैठते ही आँसू बहाने लगे। ओह, वंदना की सास के आँसू सुबह से लगातार बहते हुए अब मार्ग भूल चुके हैं और सीधी राह बहने में आनाकानी कर रहे हैं।

पति का देहांत हो गया है तो मूर्खाओं की तरह वह छाती नहीं पीटेगी, चीखे-चिल्लायेगी नहीं। बेहूदा ढंग से कर्कश आवाज में रुदन और विलाप नहीं करेगी कि दुनिया से शिकायत करे, उसका पति पृथ्वी पर से उठ गया है, सो वह अनाथ है, अबला है और कोई बताये कि वह क्या करे? क्या उनका चित्र लेकर सती हो जाए? नहीं, वह आँसू भी नहीं बहाएगी। आँसू तो वह तब बहाती, जब उस के पति उससे किसी तरह नाराज हो कर, रुष्ट हो कर कहीं अंतर्ध्यान हो गए होते तो आशा रहती कि दो-तीन दिन में वह वापस लौटने वाले हैं। मौत के दर्शन पर आँसू बहाना वंदना ने नहीं सीखा है। अपने पति की मृत्यु पर तो और भी नहीं।

जीने पर बैठी हुई वह एक सप्ताह पहले की बातों पर ध्यान दौड़ा रही है.........

तीन रोज पहले तक ऊपर के कमरे में उनका साम्राज्य था और आज सुबह तीन बजे सब लोग उन्हें अरथी पर उठा कर फूँकने के लिए ले गए हैं। इसी जीने से सब नीचे उतर कर उनकी देह को अंतिम विदा की सज्जा में सजाने बैठ गए थे। उनकी ठठरी जब उठने लगी तो वंदना ने कोई दुहाई देती हुई घोषणा नहीं की—हृदयविदारक विलाप नहीं किया। मूक भाव से सिर्फ सबके बीच उनका अंतिम दर्शन करने गई थी। मुंदी आँखों वह चिर निद्रा में शान्त थे। वंदना ने जल्दी से उनका चेहरा देखा, चरण-रज अपने माथे से लगाई और लौट कर इस जीने पर बैठ गई। जन्म-जन्मान्तर के लिये उसे किसी से कोई शिकायत नहीं है। जन्म-जन्मान्तर के लिए विदा होते समय उन्होंने जब कुछ नहीं कहा, तो वह क्या कहे ? उसके मनमें भी तो कुछ नहीं है जो कहे।

जब सब उन्हें कंधों पर उठा कर दूर ले गए, 'राम नाम सत्य' की क्षुब्ध मृत्यु-अभिषेक वाली रागिनी का अवसाद दूर चला गया, तो वह और भी गंभीर हो गई। यहाँ से वहाँ तक गुलाल की ललाई फैली हुई थी जमीन पर और अरथी पर बिखेरे गए पुष्प और उन की पंखुड़ियाँ चारों ओर फैल कर डरावनी कलौंस को गुर्राने, किटकिटाने से रोके हुए हैं। वंदना को लगा कि उसकी माँग में जो सिंदूर अभी कुछ दिन पहले भरा गया था, वही छिटक कर, बिखर कर, उड़ कर धूल में मिलने के लिये फैल गया है। सुहाग की शैया पर नित्य ही वह पुष्प की मोटी तहें बिछाया करते थे। आज वे ही पुष्प अश्रु बहाते हुए वहाँ जमीन पर लोटे हुए कलप रहे हैं और दहलीज के बाहर उनकी माताजी तथा पड़ोस की स्त्रियाँ विलाप करती हुई चीख रही हैं कि हाय कहाँ गया हमारी आँखों का तारा।

कश्मीर जाते हुए उस ने रास्ते के एक स्टेशन पर इसी तरह का एक दूसरा विलाप देखा था। कुछ ग्रामीण स्त्रियाँ घूँघट में ढँकी हुई एकत्र थीं। जब ब्याहता बेटी को माँ ने विदाई दी तो बेटी इस तरह फूट-

फूट कर रोने लगी थी मानो अभी विधवा हुई हो। उस प्रदर्शन को देख कर वह खूब हँसे थे। कहने लगे, "दुनिया के दिखावे भी बड़े मजेदार होते हैं। इस ब्यावली बेटी को जबरन घोषणा करनी पड़ रही है कि ससुराल जाना उसे विशेष प्रिय नहीं है और माँ से बिलगाव तो एक दम अखर रहा है।"

वंदना को भी जरूरी जान पड़ा कि इस संबंध में अपनी बात कहे। अब उस ब्याहता बेटी को लेकर गाड़ी आगे बढ़ आई थी। थरमस से चाय प्याले में डाल कर उन्हें थमाते हुए कहा, "दुनिया के दिखावे सिर्फ दिखावे भर नहीं हैं। उन में बरसों की, युगों की, सैकड़ों सालों की गहन विश्वसनीयता अपनी हरी जड़ें जमाए रहती है। ये दिखावे मनुष्यता की मंजिलों के वे मील के पत्थर हैं जिन से होकर हमारे पुरखे आगे बढ़े थे। उन युगों में तो यही प्रथा शालीन रही होगी, श्रेष्ठ मानी गई होगी। बस, मजेदार बात इसमें यह है कि नई पीढ़ी के कुछ हम लोग इसमें मजा ले पाते हैं।"

उसकी इस चुटकी पर वह हो-हो कर हँसने लगे थे। मुँह में जो बिस्कुट का टुकड़ा रखा था, वह हँसी की फुहार के साथ मुँह से बाहर छिटक कर उसकी जरी की साड़ी पर कण-कण हो बिखर गया था। जब वह खूब हँस चुके तो कम्पार्टमेंट के एकांत में उन्होंने गुदगुदी का एक संबोधन किया और उसे अपने इतने पास सरका लिया कि एकांत का हल्का सा व्यवधान तक न रह गया। वंदना की मनुहारमयी ठोड़ी उन्होंने पकड़ी और पहला चुम्बन हठात् ले लिया। अपने नेत्रों में एक तीव्र ज्योति प्रस्फुटित करते हुए बोले, "वंदना, तुम्हारी इस बात पर मुझे एक बड़ी मीठी कहावत याद आ रही है—खट्टे-मिट्ठे बेर, पर गुलाबी हथेलियाँ।"

पति के प्रथम चुम्बन का उपहार! जैसे उद्विग्न हो कर उन्होंने अपने कठोर पौरुष को चीर दिया हो और अपनी आह से संतप्त पीर

को मेरे कपोलों पर उँडेल कर कोई अर्घ्य चढ़ाया हो। चुम्बन के बहाने मानो पति ने अपने विस्तृत यौवन की डोर उसके हाथ में थमा दी हो। उन के अधरों के स्पर्श ने एक ज्योतिपिंड को प्रज्वलित किया और वंदना उस धवल किरण-राशि में विभोर अपने को बिसार बैठी। फिर भी जल्दी से उसने पति को उत्तर दिया, "और आप की बात पर मुझे भी एक कहावत याद आती है, 'शेर के शिकारी, हाथ में मसालों की पुड़िया।'"

आह, वधु का अभिसार इतनी वाचालता से पुष्ट है? उन्होंने वंदना को अपनी दोनों बाहों में भर लिया। जैसे अनजाने में शरबत के बहाने उसे तेज नशा मिला दिया हो। और वह एकांत में भी लोक-लाज में चुप बनी हुई बेहोश हो गई हो, पति के आलिंगन में फैले हुए विस्तृत सागर में उसकी मानस-तरणी बीच गहराई में ले जाकर खड़ी कर दी गई और तेज लहरों के आघात से वह आरोह-अवरोहमय हो गई।

पति के आग्रह से उसने स्वयं भी चाय का एक कप पिया, फिर उनके दूसरे चाय के कप के साथ दूसरा कप पिया और उनके तीसरे कप के साथ उसने कुछ अन्दाज के साथ आनाकानी की, पर बाद में तीसरा कप पी ही लिया। पर कपोल पर प्रथम चुम्बन का स्पर्श इस तरह झनझन् करता रहा कि जैसे किसी ने घड़ियाल पर किसी क्षण-विशेष की सूचना भारी आघात से गूँजा करती हो और उसकी स्वर लहरी अब भी शांत न हुई हो।

दो दिन बाद, वे दोनों काश्मीर पहुंच गये थे। उसकी इच्छा थी कि यह ट्रेन अभी और चलती रहे। श्रीनगर पहुंचे तो वह कहने लगे कि उफ, कितने बरस कटे तब आया यह श्रीनगर। यह कहकर उन्होंने वंदना को देखा तो वह उनके प्रश्न को हृदयंगम कर बैठी। उस की दहकती हुई देह-अंगीठी कश्मीर की सुषमा में दूने वेग से प्रज्वलित हो उठी। कश्मीर के सभी सौन्दर्य-अंचलों में स्तब्ध शील की चंद्रिका बाहर-भीतर रम गई है। वंदना के सभी दैहिक सौन्दर्य-अंचलों में स्तब्ध

मेरे लिये विधवा रहना व्यर्थ है। मेरे पास प्रवकाश कहां है कि एक जड़, प्रर्थमृत स्त्री बनकर, विधवा बनने का उपक्रम करूं ?

दीप्त अग्नि की प्रखर किरणें ठहर गई हैं। और वह हैं कि छलकती हुई जवानी की उमंगवती बयार से विभोर बने हुए दिन में चंद्रिका को आकंठ पीते हैं और रात में प्रखर किरणों पर अपने को उबलने के लिए, भट्टी का पक्का ताव खाने के लिए पड़ाव डाल देते हैं।

वंदना ने कश्मीर नहीं देखा। कश्मीर के विहार का स्वाद नहीं लिया। कब कहाँ गई, यह उसे याद नहीं है। वह तो एक देवांगना की तरह अपना मायाविनी-सा रूप बदले हुए दिन में उनका सहारा बनी हुई पगडंडियों पर आगे बढ़ती और रात अपने घृतपिंडों की शेष हो रही अग्नि को अपनी ही मधु बयार से दहका कर इतना तेज सुलगाती कि उन्हें शीत का एक भी कीट मामूली सा भी डंक मारने की धृष्टता न कर पाता।

लौटती बार वंदना ने कहा भी कि इच्छा हो तो एक मास और ठहर जाएँ। पर वह बोले, "नहीं, अब लौटेंगे। इस मधु-अग्नि में इतना तप चुका हूँ कि इस्पात से भी अधिक कठोर बन चुका हूँ। इतनी आकंठ तृप्ति तुमने दी है कि मैं लौटूँ तो जल्दी से प्रतिदान में तुम्हें एक श्रेष्ठ उपहार दूँ।" और रात को कान में चुपके से उन्होंने कहा था, "तुम चाहो तो वापस इंगलैण्ड लौट सकती हो—कम-से-कम दो वर्षों के लिये। चाहे आगे अध्ययन करो, चाहे नई विश्वयात्रा। यही उपहार मैं तुम्हें देता हूँ।"

वंदना इंगलैण्ड से यह विवाह करने चली थी तो बस एक संशय उसे था कि क्या जाने भारत में बस कर वह इस जीवन में फिर लौट सकेगी कि नहीं ? भारत की चतुर्दिक रेखाओं में घिरी रह कर हर स्त्री को बस स्त्री मात्र बने रहना पड़ता है। विदेशों में उन्मुक्त हो कर वह अपनी विराट शक्ति का अवलंबन अपने प्रतिनिधि स्त्रीत्व के लिये इस तरह कर सकती है कि एक शक्तिशाली मानवी वह बन सकती है। उसने इन से कोई शर्तबंदी नहीं की थी कि तुम से विवाह कर मैं इतने दिन भारत

में रहूँगी और इतने दिन वापस समुद्र पार। कुछ भी हो, वंदना ने अपनी माता जी के अनुरोध से विवाह तो किया, लेकिन वंदना के लिए भारत शुभ कहाँ रहा? पति की आयु उसके जीवन में सिर्फ पाँच मास रही।

अब सब श्मशान से लौट आए हैं। ससुर साहब का हाल कितना दयनीय हो चुका है। फूँक आए हैं और श्मशान की गंध को तालाब में स्नान से धो आए हैं। परिवार की महिलाओं ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया है। परिवार-जन अब विदा लेकर जा रहे हैं।

विलाप, रुदन और कराहटों से ध्यान बँटा कर वंदना सतर्क हुई। उसकी पुतलियों के आगे वह सजीव आकर खड़े हो गए हैं। उस दिन बजरे में रात की पूर्णिमा को उन्होंने उसे वरमालाएँ पहनाई थीं और आश्चर्य-चकित वह देखती रही थी कि वे वरमालाएँ चन्द्र की ग्रीवा से उल्लसित होकर माया के प्रांगण में तैरती हुई वंदना की ग्रीवा में सुशोभित होती गई थीं। उस क्षीर-सागर में विष्णु-पद पर आसीन वे लेट गए थे और वह लक्ष्मी का अभिनय करती हुई उनके पैर दबाने बैठ गई थी। जब वह एक झपकी ले चुके तो बोले, "नहीं, वंदना, मेरे पैर दबाने तुम नहीं आई हो। मैं यहाँ भारत में पला हूँ। तुम विदेशों की श्री से संपन्न हो। उसी संपन्नता की प्रशस्ति मुझे दो। बस, और कुछ नहीं।"

पड़ोस के एक लाला साहब ने उसके ससुर से कहा, "सुबह से मैं बहू की आँखों में एक भी आँसू नहीं देख रहा हूँ। यह ठीक बात नहीं है। इस तरह गहरा सदमा पहुँच गया तो बहू की जान पर भी बन आएगी।"

ससुर साहब उठे। सिर्फ नौ घंटों में कैसे बेहाल और आधे बूढ़े हो गए हैं। कमर पर हाथ रख कर बड़ी मुश्किल से ऊपर जीने पर चढ़ आए। आदर भाव से वंदना खड़ी हो गई। ससुर ने कहा, "बेटी, वंदना, यों पत्थर की तरह बैठे रहना खतरे से भरा हुआ है। दुख का वेग बहा दो। दुख तो जीवनभर का है : पर यह शरीर दुख से पत्थर

बन जाए तो शरीर कैसे रहेगा ? हमें देखो, दुख का जहर शरीर में जितना भरा था आँसू के सहारे बहाना पड़ा है।"

ससुर को सहारा देने के लिये सास भी जीने पर चढ़ी आ रही हैं। वंदना ने एक रूखी हँसी हँस कर कहा, "जी, मैं ठीक हूँ। आप मेरी चिंता न करें। जो दुख आया है वह समझ रही हूँ। लेकिन रोने की बात मैंने नहीं सीखी है। इसमें अशुभ कुछ नहीं है।"

ससुर वंदना को देखते रह गये। फीकी हँसी है इसके चेहरे पर ? अपने पति के लिए यह एक आँसू भी नहीं बहाएगी ? तो क्या दोनों के मनमें कुछ दरार बाकी रह गई थी जो इस तरह यह अनासक्त बनी हुई है ?

सास आई तो दुलार से उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा, "बहूरानी, यों पत्थर बनने से काम नहीं चलेगा, दुनिया में सुख भी है और दुख भी। दुख का पहाड़ ये सिर्फ आँसू उठा सकते हैं।"

वंदना ने सास से कहा, "जी, मैं आज रात की पहली गाड़ी से दिल्ली चली जाऊँगी और वहाँ से बम्बई। मेरा अब यहाँ काम नहीं रह गया है। मुझसे अगर कोई गलती हुई हो तो आप सब क्षमा कर दें।"

ससुर ने सब समझा। सास ने सब समझा। इस विलायत से आई हुई बहू से हम और आशा ही क्या करें ? विक्षिप्त और अपमानित ये दोनों नीचे उतर गए। हमारे बेटे के वियोग में उसकी पत्नी दो आँसू तक न बहाएगी ?

हाय, यह कौन-सी हवा है ! यह कौन सा अधर्म है !

वंदना उठ कर कमरे में गई। कमरे में जब लाश उठाई गई थी तो गुलाब और फूल का अर्चन हुआ था। श्मशान की भयावहता कमरे में उमस फैलाए हुए है। उसने अपने ट्रंक खोले और जो भी कुछ उन्होंने या सास-ससुर ने दिया है या कन्यादान में उसे मिला है, वह सब सहेज कर एक ओर रख दिया। अपनी चीजें बड़ी अटेची में रखीं, अपना पीहर से लाया हुआ बिस्तर अपने हाथों लपेटा और बैठ गई। उसने

यहाँ से चल देना उचित समझा है। उसका संबंध जिससे था, वह अब इस दुनिया में नहीं रहा। पहले भी वह वंदना थी, अब भी वंदना मात्र रह गई है। इस घर में अनाथ अबला और आश्रिता बन कर क्यों रहा जाए? मेरे लिये विधवा रहना कम-से-कम व्यर्थ है। मेरे पास अवकाश कहाँ है कि एक जड़, दीन और अर्धमृत स्त्री बन कर विधवा बनने का उपक्रम करूँ। इतना काम है मुझे कि पहली-सी वंदना बनी रह कर मैं अपना जीवन सार्थक करती रहूँगी। विलायत की प्रसिद्ध कलाकार हूँ मैं। पिछले चार महीनों में उसने महज एक उपन्यास पढ़ा था। उसके नायक से कुछ भ्रांति-सी हुई कि वह उसके संग सुहाग-रात मनाने गई है। उपन्यास शेष हो गया और नायक का देहान्त हो गया। ओह! यही सच है, यही सच है, यही सच है!!

कठिन मन उसने कमरे के फूल उठा कर अपनी अटेची में रखे। वहाँ सीढ़ियों पर कुछ गुलाब के फूल पड़े हैं। चुपचाप वहाँ गई और वे फूल भी उठा लाई। नीचे सास और ससुर के निकट दूर के स्त्री-पुरुष थक कर, हार कर हिचकियाँ ले रहे हैं, कराह रहे हैं और मौत के आगे दीन-हीन बने सिसक रहे हैं। सारा मकान हू-हू कर रहा है। वह इस श्मशान से विदा लेगी। विधवा श्मशान-सी भयावह पगडंडी पर ही तो अपना दीर्घ जीवन फैला देती है, जिस पर उसके पति की मृत्यु और उस की अनिवार्य मृत्यु पिशाचिनी की तरह से निर्द्वन्द्व भटकती रहती है।

वंदना को याद आया—'वह' लंदन गए थे। वहाँ से हमारे कंटरी-हाउस आए थे। पिताजी और माताजी ने उनका स्वागत किया था और उन्हें गुलाब की मालाएँ पहनाई थीं। जब वह अंदर चले गए थे तो वंदना ने नटखट भाव से सीढ़ियों पर पड़े हुए दो गुलाब के पुष्प उठा लिए थे। माताजी और पिताजी ने यह देख लिया था और जान लिया था कि वंदना ने उनके संग अपने ब्याह की स्वीकृति दी है। तो

ये सीढ़ियों के पुष्प उठा कर वह अपना सब समझौता समेट कर वापस ले जा रही है ?

आम के पेड़ पर बैठी हुई कोयल कूक रही है, फुदक रही है। इतने में तेज हवा का झोंका आया और ढेर सारे बौर डालों से टूट कर नीचे गिर पड़े। वह देर तक उनका गिरकर धूल में रलना-मिलना देखती रही।

वंदना की आँखें छलछला आईं। विदा से पहले उसका जी रोने को उतर आया। भारत में इतना ही संक्षिप्त रैनबसेरा करने आई थी ? देर तक मन-तन की सब कराहों को दबाए हुए वह उनका कश्मीर में उतरा हुआ चित्र देखती रही। वह उसकी ओर देख रहे हैं और पूछ रहे हैं कि तुम जा रही हो ? मैं तुम्हारे पास से सदा के लिए चला आया हूं, तो तुम भी इस घर से सदा के लिए जा रही हो ? मन के आग्रह को उसने इनकार किया और उसने वह चित्र अटेची में न रखा। एक बार उसने कमरे को देखा, पूरे मकान को देखा और जैसे उसे बहुत सारे हाथों ने धक्का दिया हो, वह भारी कदमों से नीचे उतरी। सब ने देखा, बहू की आँखों में आँसू हिलगे हुए हैं। उसने सबको नमस्कार किया, सास ससुर के चरण छुए और कुछ क्षण खड़ी रही।

सास ने फफक कर कहा, "बहू, यों असमय जा रही हो ?"

"हाँ, माताजी। अपना दुख मैं अपने तरीके से निबाहूँगी।"

"लेकिन, बहू........।" ससुर ने कहा।

"पिताजी, मैं पहले भी निराश्रित नहीं थी, अब भी निराश्रित नहीं हूँ। रोनेकी शिक्षा मैंने नहीं ली है। यहाँ रोकर मैं आप सबका अपमान नहीं करूँगी। अब मैं विधवा नहीं हूँ। संघर्षमयी वंदना हूँ।"

वह लौट आई। उसने नौकर को संकेत किया। वह उसका सामान ऊपर से ले आया। टैक्सी में बैठ कर उसने सारे परिवार को देखा। सब अपने इकलौते बेटे की मौत पर हाथ खाए बैठे हैं। और

यह दूसरा अशुभ दानव सा दाँत किटकिटा रहा है कि बेटे की बहू सदा के लिए इस घर से विदा हो रही है और अपनी विलायत लौट रही है।

ससुरसे बोली, "आपका सब जेवर और सब संपत्ति ऊपर ही कमरे में रखी है। मैं सिर्फ खाली हाथ लौट रही हूँ। आप सब का आशीर्वाद मुझे मिलता रहना चाहिए।"—और टैक्सी आगे बढ़ गई।

सास फिर जोरों से रोने बैठ गई। अरे, बेटा तो लाश बन कर इस घर से गया, यह बहू तो जिंदा लाश सी उड़ कर चली गई है।

ससुर देर तक सीधी सड़क पर दौड़ती हुई टैक्सी देखते रहे। आँखों से वह ओझल हो गई तो बड़बड़ाए "यह विलायती बहू! यों ही बेमाने उड़ती हुई सूखी बदरिया सी!"

किन्तु मैं इस बदरिया को अपनी वंदना देता हूँ जो यह दृढ़ निश्चय कर आगे बढ़ी है कि वह अश्रुओं की गंगा का अवतरण तो कम से कम न करेगी....

उल्लास की हिम-पताका का अवरोहण
नव-बालाओं के साथ नव वयस्काओं और बाड़ी-भर की युवतियों में
वसंत-लहरी हिलोरें ले रही है। (पृष्ठ १९३)

उल्लास की हिम-पताका का अवरोहण

●

बंगाल का दाम्पत्य अपने-अपने लक्ष-लक्ष विजय-ध्वज हाथों में थामे हुए निकल पड़ा है। बंगाल का संपूर्ण दर्शन करना हो तो वह आज ही संभव है।

(पृष्ठ १९८)

[१]

अभी साल के सात महीने ही गुजरे हैं। इतने दिनों में काफी त्योहार आकर चले गये हैं। साल की अपनी नियमित दुल्की चालवाली और मजेदार गति है। ये त्योहार साल की गति के प्रड़ाव हैं, जहाँ भिन्न मनोरंजन हैं, भिन्न आनन्द हैं, भिन्न क्रीड़ास्थल हैं। मोटी नजर से ये त्योहार, ऐसा लगता है, निःशब्द आते हैं और मन और दिल का क्लेश बुहार कर ले जाते हैं और एक कंपन, एक मीठी सिहरन, एक स्फुरण और चित्त को एक कचोट दे जाते हैं।

हमारी पड़ोसिन बड़ी सुन्दर है। हमें उन्हें अभी ताजा हाल में ही 'भाभी जी' कहने का अधिकार मिला है। उन्होंने एक दिन बताया कि ये त्योहार वैसे कुछ अर्थ नहीं रखते, न इनसे कैसा भी ताजा रस निचोड़ा जा सकता है। लेकिन क्योंकि ये त्योहार अधिकांश रूप में सामाजिक होते हैं इसीलिये हमारी क्लेशमयी सामाजिकता को एक हल्की-सी खुमारी दे जाते हैं। बस यही खुमारी सब-कुछ है। यही इन त्योहारों को, इन उत्सवों को एक हल्की-फुल्की मल्हार राग दे जाती है और दे जाती है एक दुलार-भरी थपकी।

कलकत्ता महानगरी मैट्रोपोलिस सिटी है। इसमें प्रायः सभी प्रान्तों की सामाजिक प्रशस्तियाँ आकर अपना पड़ाव और अपना स्थाई शिविर जमाए हुए हैं। साल में जितने भी त्योहार आते हैं, वे किसी भी विशिष्ट सामाजिकता की अपनी मधुर स्मृतियाँ और अपनी नृत्यभरी महिमा क्यों न हों, इस महानगरी में एक व्यापक हलचल लेकर आते हैं और कम-से-कम हर स्ट्रीट के अपने पास-पड़ोस को मुखरित कर जाते हैं, एक नई गुनगुनाहट दे जाते हैं।

मेरे जैसे आदमी को न दैनिक अखबारों की गरमागरम खबरों से मतलब है, न रोजाना की हाय-हाय से सरोकार है। बहुत हुआ तो पड़ोस की भाभियाँ आकर कुछ मिठाई या हलुवा दे जाती हैं, और मैं जान लेता हूँ कि कौन सा त्योहार कल आया था और चला भी गया। लेकिन जिस सप्ताह वसंत आया था, उस समय मेरे 'फ्लैट' में यहाँ-वहाँ सरसों फूली हुई तैर आयी थी! और साक्षात् रासलीला का आयोजन कर बैठी थी। सरसों की अपनी ताजा महक है। । उस दिन जिस-जिस 'खोखी' ने, जिस-जिस छात्रा ने और लड़की ने केसरिया साड़ियों का परिधान सँवारा था तो मैं चकित देखता का देखता रह गया। मैंने उस दिन, सिर्फ उसी दिन, महसूस किया कि अमुक-अमुक लड़की अपनी किशोरावस्था की लक्ष्मण-रेखा पार कर चुकी है; अमुक कन्या ने अब अपनी ताजा वय पाई है और उस शैतान नटखट बच्ची की वक्ष में मातृत्व की सिंधु नदी क्योंकि बहने ही वाली है, इसीलिये पहले से ही वहाँ खाई तैयार होने लगी है।

राष्ट्र-नारी अपनी अल्पायु में राष्ट्र-बाला होती है। 'इमरसन' जैसे महान साहित्यकार ने न जाने किस अतिरेकानन्द में कहा होगा, 'किसी भी राष्ट्र का परिचय लेना है तो वहाँ की सुन्दरियों के अधरों का रसपान करो।' पर भारतीय साहित्यकार होने के नाते मैं अपनी ही राष्ट्र-बालाओं और राष्ट्र-नारियों के सुषुप्त हास और स्मित् वय की एकांत निर्झरणी के तट पर बैठ कर यदि दृष्टा-गिद्ध की नाईं तेज नजरों से कुछ देखता भर हूँ तो वह मेरे मानस की कड़वाहट नहीं है। आर्थिक रूप में जर्जर हमारे समाज में सामाजिक यौवन एक प्रतिकूल तूफान बन कर आता है। वह प्रतिकूलता ही असली कड़वाहट है। किसी यौवन को, उसकी भीनी सुगंधि को प्रेय मानते हुये यदि मैं संकेत करता हूँ कि 'वह लड़की वयस्का हो गयी है,' और इससे किसी को भारी ग्लानि होती है तो समझ लीजिये कि वह इंसान या औरत अपने

समाज में सिर्फ नपुंसकता और विरसता और कैदखानेवाली निरंकुशता ही आयोजित करते रहे हैं।

मैंने देखा कि नव बालाओं के साथ नववयस्काओं और बाड़ी भर की युवतियों में बसंत-लहरी हिलोरें ले रही है। तेज समुद्री हवा के झकोरे में मर्मरस्वर से झर-झराती काँपती डोंगी की तरह इन सभी का मन बसंत की उमंग में आंतरिक मधुर दुराव का कंपन पाकर काँप-सा रहा है। पर जिस काँप में मिलन के हर्ष की ही अधिक उमड़ आने की संभावना है। और जिस दिन बसंत का उत्सव आया, उस दिन दुपहरी में अपने बन्द कमरे के दालान से अनायास मुझे दीखा कि आज समस्त बाड़ी भर की विवाहिता सुन्दरियों ने पीत-वस्त्र धारण किये हैं। पीत वस्त्र रसिक प्रेमियों को रतिनाथ और रतिमर्दन (!) गोपियों के स्वामी कन्हैया की याद दिला जाते हैं। आज वैसा सामूहिक रास नहीं होता। और आज वैसी ही ब्रज की मुक्त सामाजिक मर्यादायें होतीं तो शायद प्रातः से ही कलकत्ता महानगरी बृहत् रासलीला में तैर उठी होती। उन पीत वस्त्रों की मोहक सज्जा से इन सौभाग्यवतियों का अंग-अंग गदरा गया है और रति-संभार से इतना-इतना बोझिल हो गया है कि पेड़ की नई लदी डाली की नाईं झुक-झुक कर नम जाता है।

ऊपर के तीसरे कमरे की वह भौंड़ी कुरूप काली युवती रोजाना अपने पति से झगड़ती है और उसे कटु से कटु बात का ताना दे दिया करती है। आज उसने काजल से अपनी आँखों को कटीला बना लिया है। यह काजल उसके काले स्निग्ध चेहरे पर, गरम तप्त शलाख पर रखी हुई लौह छेनी सा काट कर उठा है। आज उसने अपनी मैली साड़ी अलगनी पर टाँग दी है और अपनी पुष्ट स्वस्थ छलकती देह पर रेशमी साड़ी संवार कर अपने उतावले दिल को रेशमी बना लिया है। ऐसा रेशमी कि ताजा किसलयों-सा। और अपनी जिह्वा को उसने ताजा पान के बीड़े से रक्ताभ कर, न सिर्फ पवित्र तुलसी-पत्तर सा

बना लिया है : जो कि किसी भी गले में उतर कर पाप-मोचन कर देगा, बल्कि स्निग्ध प्रकाश देनेवाली मोमबत्ती सा भी बना लिया है। वह आज अपनी इस जिह्वा से अपने पति के दिल पर खार न खायेगी, अपितु उसके दिल में मीठी-मीठी बतियाँ कर, उसके हृदय में एक विस्तृत स्निग्ध प्रकाश कर अपना दाम्पत्य उज्जवल करेगी और उस एकांत दीपावली में अपनी उमंगों को राजलक्ष्मी बनाकर अपने पति पर रति की शत-शत मुद्रायें बिखेर उठेगी। आज की रात !

यह बसंत किंतु, देश भर के घर के प्राणियों में अपना पराग-पूर्ण आँचल चाँदनी की किरणों सा भर देगी और कोटि-कोटि दंपति स्वागत में अपने सुहाग का कोरस-गीत इस तरह गा उठेंगे कि अतिरंजन और अतिरेकानंद और व्याघ्र-लिप्सा सा बिलास-नर्तन इस गीत की लय लेने में अपनी सुध-बुध खो बैठेगा।

[२]

दुर्गा पूजा का सप्ताह आ गया है। चार रोज बाद अष्टमी अपनी महिमा मंडित स्मृति लेकर पुनः उपस्थित होगी और सारा बंगाल उसकी अभ्यर्थना में, सत्कार में, वंदना में, निवेदन में, कीर्त्ति के यशोगान में, चिरंतन सत्य की जयजयकार में, शुद्ध-हृदयी स्वागत्-नृत्य में, महाशक्ति की शुभ्र धवलता का शंख-गुंजन करने में और जय दुर्गे के अमृतपथ को पुनीत-स्वच्छ बनाने में एक-धुन, एक-राग से एक-आत्मा बन कर मंगल-गान में जुट पड़ेगा। उत्तर भारत में इसी अष्टमी के दिन दूसरी तरह की युग-व्यापी शक्ति के दिव्य बाद्य से जन-जन अपने तिमिराच्छन्न मन, मानस को हर्षित करते हैं। रावण के ऊपर राम की विजय के उल्लास में पूरा उत्तर भारत रामलीला का स्वांग भरता है और आज के दिन रावण को इस पृथ्वी से, कोटि वर्षों के बाद भी पुनरावृत्ति कराते हुए, बाधित पलायन दुहराते हुये एक असीम संतुष्टि की अनिर्वचनीयता का दैवी पान करता है। लेकिन बंगाल इस दिन स्त्री-शक्ति के चंडी-

ञ्जा की ललित और कठोर वासनामय साधना का विशालतम छत्र अपने आतंक पांडु सिरों पर ओढ़-तान कर उसके पूजन में तपःमय प्रकोप की भाई अपने शरीर को इतना धुनता है कि मात्र शरीर की शुद्ध वाष्प का स्निग्ध स्पर्श ही व्योम में छाने लगता है। यही स्पर्श दुर्गामाई की मृदु रश्मियों का आशीर्वाद पाकर जब बरसता है तो सारा बंगाल अपने को धन्य-धन्य कर लेता है, अपने घर-घर के क्लेशमय दाम्पत्य को अन्तरिक्ष की देववाणी के महासौभाग्य की पुष्पवर्षा से स्नात् बना लेता है।

बंगाल में और भी त्योहार आते हैं, पर दुर्गा पूजा का यह पर्व प्रति वर्ष अवतारोचित जन्म लेता है—यही एक सप्ताह भर के लिये। इस अवसर पर बंगाल-निवासी बंगाली ही नहीं, प्रवासी उत्तरी-भारती परिवार भी दुर्गाशक्ति के रंग में खुशी-खुशी रंगे बिना नहीं रहते, क्योंकि यह त्योहार अखिल समृद्धि का आश्वासन देता है, परिवारों के दाम्पत्य-दैत्य का संहार करता है और दाम्पत्य के पुद्गल-रूप नक्षत्रों की ज्योति हर दम्पत्ति के आँचल में प्रतिष्ठित कर जाता है!

वसंत के बाद और भी अनेक त्योहार आये और चले गये हैं। मधु के गीतों की हल्की गुनगुनाहट बस उन्हीं गिने हुये दिनों में क्षणिक-सी सुनाई पड़ी है। वरना रोज-रोज तो इतना क्लेश पास-पड़ोस में और ऊपर-नीचे के तल्ले में होता है कि मैं अपने दरवाजे कसकर बंद रखता हूं कि वह कुहराम, जो आजकल मेरे राष्ट्र का सबसे बड़ा जीवित सत्य है, कहीं नित्य ही मुझे एक नया घाव न दे जाय।

लेकिन दुर्गा-माँ की पग-ध्वनि शत-शत भविष्यवाणियाँ लेकर जब हर परिवार के क्षितिज पर आकर थिरकने लगती है तो सारा बंगाल एक अलसाई अँगड़ाई लेकर उठ बैठता है और अपने घरों के बाहर आकर प्रत्याशा में विभोर होने लगता है। इसी विभोरावस्था की पहली उच्छ्वास में अपनी बाड़ी में देख रहा हूँ। मेरी बाड़ी में यही दो सौ परिवार रहते हैं। इसमें लगभग सवा सौ परिवार बंगाली हैं। कुछ

तीन-चार परिवार ऐसे हैं, जहाँ बंगाली तरुणियों ने अपना दाम्पत्य उत्तर-भारतीयों के साथ न सिर्फ नियोजित ही किया है, अपितु नैसर्गिकता की मधुरिमा के संपुट में समाधिस्थ भी कर दिया है। प्रांतीय सीमायें उनके मानस को अर्ध-कलिका से अधिक प्रस्फुटित होने का आश्वासन दिये नहीं दे रही थीं। अपने संस्कार की सीमाओं से बाहर ही पड़ाव डालने की व्यग्रता उनमें लहरें मार रही थी। इसीलिये तो ऊपर चार तल्ले पर एक बिहारी व्यक्ति है। वृद्धावस्था की पगडंडी पर प्रौढ़ावस्था के मोड़ से मुड़ कर चल पड़ा है। पत्नी का (जो कि बिहारी युवति रही थी) देहांत हुआ, उससे पूर्व अपनी कोख से उद्‌गमित दोनों वयस्क कन्याओं का विवाह वह रचा चुकी थी। झाड़बरी का धंधा करते हुए अब वह इतना समर्थ हुआ है कि विवाह की नई स्कीम उसने बनाई है। जैसे तो उस मृत-पत्नी का अभिशप्त काव्य अब समाप्त होने जा रहा है! उसकी कोठरी के सामने गत सप्ताह से एक बंगाली युवती को उल्लसित मुद्रा में तरंगायित भाव से उठते-बैठते देख रहा हूँ। आज रात विधिवत वेद-मंत्रों की सहायता से वह इस तरुणी से अपना नया दाम्पत्य व्यवहार में लायेगा। यह इसे अपने एकाकी जीवन की क्लान्ति की महौषध के रूप में विक्रय कर लाया है। मैं तन्मय होकर इस तरुणी को देखता हूँ। निश्चय ही यह स्फूर्त्त ललितलता यौवना अपने श्यामवर्ण के बावजूद इस बिहारी पति को उतना सौख्य तो दे ही सकेगी, जिसकी भूख इस आधुनिक महानगरी में रहते हुए, और बढ़िया से बढ़िया रोमांटिक सिनेमा देखते हुये तीव्र से तीव्रतम होती चली गई है। कल दुर्गा पूजा है और आज अपना नया दाम्पत्य स्वीकार करते हुये इस रमणी ने (यह भूल जाइये कि इसका भूतकालिक जीवन क्या रहा है: होगा आर्थिक अभावों का दुखड़ा) भविष्य को एक नये उत्साह से देखना शुरू किया है। बंगाली पति भी इसे स्वीकार होता, लेकिन वह दाम्पत्य का संरक्षण शायद इतना न करता कि वह पति की पूजा के लिये पूरी मात्रा में दीप

आहुति और धूप-नैवेद्य व यथोचित मात्रा में पुष्पों की मालायें नियमित जुटाता रहे। रिक्त हाथों पूजा करने की नौबत जो पति लाने वाला हो, वह अपना दाम्पत्य रिक्त ही रखे : पत्नी से रिक्त !

जब कि इस नवागता बंगाली तरुणी की चर्चा सारी बाड़ी में रसमय हो रही है, अन्य कमरों में पूजा के पर्व की नारी-सुलभ क्रीड़ा मचल उठी है। कमरे धूल से मुक्त किये जा रहे हैं। साफ-सूफ कर कलई और रंग से कमरे का अंतस आडम्बरमय करना ही होगा, क्यों कि दुर्गा माँ का अभिनन्दन जब तक क्या उत्तम रहेगा कि चित्र-विचित्र हार्दिकता का आँचल उसके चरणों के नीचे भक्तिभाव में न बिछा दिया जाये। हर हालत में बच्चों के पिताओं को, गृहस्वामियों को और नववधुओं के नव-पतियों को और प्रेयसियों के देवताओं को नया परिधान और नया शृंगार ला कर देना ही होगा। वर्ष भर की मंजिल पूरी कर हारे-थके जो परि-वार आगे बढ़े-चले आ रहे हैं, इस अंतिम मंजिल के निकट तो नवीनतम भूषा की प्रांजलता जब तक पूर्णतया धारण नहीं कर ली जायेगी, क्योंकर देवता के निकट जाने की सामर्थ्य संजोई जा सकेगी ? आज तो शरीर का, आत्मा का, मानस का, मन का, अंग-अंग का शैथिल्य और मैल धो कर दाम्पत्य के देवता की अर्चना और प्रार्थना करनी ही होगी। इसी प्रार्थना में पति और पत्नी के रसमय जीवन की सहस्त्रमुखी दिशाओं का दशमुखी अजगर नथा जा सकेगा.......और नये सिरे से पति और पत्नी सीधी एक दिशा में साथ-साथ कदम-ब-कदम चलने की प्रफुल्लता हासिल कर सकेंगे।

कल पूजा है। सब पत्नियों को नई साड़ियाँ लाकर दे दी गई हैं। नये आभूषण लाकर पहना दिये गये हैं। बच्चों को नये जूते, नई बुशशर्ट और बच्चियों को नई फिराकें और केशों के नये रेशमी रिबन खरीद दिए गये हैं।

जिन कमरों में क्लेश चलता रहता था, वह फिलहाल एक सप्ताह के लिये स्थगित कर दिया गया है। पत्नियों में अपने को संयमित कर

पत्नियों को अधिकतम प्यार का उपहार देना मान्य हुआ है। जहाँ साथ में मातायें, बहनें और भाई, साले और सालियाँ भी हैं, उनकी भी दुनियावी मिन्नतें कुछ भेंट के साथ की जायेंगी। दाम्पत्य के इर्द-गिर्द, अंदर और अगल-बगल में जो भी कील-काँटे, ऊबड़-खाबड़ रोड़े, पारिवारिक मनमुटाव और अभाव रह गये थे भूले-भटके वे तो आज प्रशस्त कर ही दिये जायेंगे।

और लो, देखते-देखते नौबत-बाजों के साथ सार्वजनिक स्थानों पर दुर्गा-माँ की मूर्त्तियाँ स्थापित हो गई हैं। सारा बंगाल जन-समुद्रके रूप में विशाल लहरों को लिये हुये उमड़ा चला आ रहा है। माँ दुर्गा को जितने भी संभव उपायों से प्रदर्शित, मूर्तित, चित्रित और पूजित किया जा सकता है, उनकी झाँकी ही देखने से मन को संतोष मिल सकता है।

मैं अपने माधो-भवन में तीन तल्ले के हवादार छज्जे पर खड़ा हो जाता हूँ। सामने फायर-बिग्रेड का पूजा-पंडाल है। शाम हो गई है और सर्वत्र विद्युत प्रकाश की मटरमाला आलोकित हो उठी है। जनरव अपने उच्चतम तापमान पर आकर रुक गया है। बंगाल का दाम्पत्य अपने-अपने लक्ष-लक्ष विजय-ध्वज हाथों में थामे हुए निकल पड़ा है। बंगाल का सम्पूर्ण दर्शन करना हो तो वह आज ही संभव है। किसी अन्य दिन वह गलियों में भटककर और कलकत्ता महानगरीकी गगनचुम्बी अट्टालिकाओंकी भव्यतापर वाह्-वाह् कर हस्तगत नहीं हो सकेगा। न वह बंगाल की झोपड़ियों की कलाकारिता में रंगों की कूची के फेरने से ही मिल सकेगा। आज ही, सिर्फ आज ही, तृप्त-सुखी आश्वस्त-दर्शनीय और देश के अन्य समाजों से कहीं विशिष्ट-कलात्मक बंगाली पति और पत्नी की युगल जोड़ी अपने पूरे परिवार की श्री और वृद्धिपूरक शोभा के साथ जो मंथर गतिसे कंधों से कंधा भिड़ा कर चली जा रही है, यही बंगाल, रवीन्द्रनाथ टैगोर का 'आमार बंगाल' और कला-साहित्य-उग्र राजनीति का जाना-पहचाना बंगाल है !

•

इस क्षण ऊपर के तल्ले में वही विवाह रचाया जा रहा है और बाहर दुर्गा-माँ के दर्शनों की उल्लास-लहरी पर असंख्य बंगाली परिवारों और युगल जोड़ियों का विवाह-विलास मनाया जा रहा है। ऊपर के तल्ले में पंडित-श्रेष्ठि वेद-मंत्रों के उच्चारण के संग नव वर-वधु को जीवन में अखंड विश्वास धारण करते-कराते हुये एक दूसरे की सेवा का आदेश दे रहे हैं। बाहर कई सौ पूजा-पंडालों में माँ दुर्गा इन सहस्त्र-सहस्त्र बंगाली दम्पतियों को सर्वोच्च मानवी विश्वासों की ओर नये सिरे से उँगली उठा कर कह रही है कि जो भी दैत्य या विचार-दैत्य तुम्हारे दाम्पत्य और सुहाग पर आक्रमण करके ध्वंस की योजना बनाये, उस पर इसी तरह सामूहिक सामाजिक शक्तियों का अस्त्र लेकर टूट पड़ो : इसी में लोक-कल्याण है, इसी में भविष्य का निदान है और इसी में शाश्वत दाम्पत्य का वह उपचार है, जिसके लिये विश्व मात्र का दम्पति-वर्ग युगों से भटक रहा है !

मैं खड़ा हुआ दर्शनार्थियों की भीड़ को गहरी बारीकी से देखने लगता हूं। वह तो इस भीड़ को इतने ऊँचे से ही देखने को मिल सकेगी : इस भीड़ में मिल-जुलने से कुछ पता भी नहीं चल सकेगा। उधर पुरुषों की अथाह भीड़ दरवाजे के पास आकर बार-बार टकराने के लिये आगे बढ़ती है कि अंदर पंडाल में प्रवेश करे, लेकिन व्यवस्थापकों ने द्वार बन्द कर दिया है, ताकि जो भीड़ अंदर दर्शन कर रही है वह शनैः शनैः बाहर निकलनेवाले दरवाजे से बाहर चली जाये। दूसरे दरवाजे से स्त्रियों का दल प्रवेश कर रहा है और मेरे सामने जो गेट है, उससे बाहर निकल रहा है। सुबह से ही स्त्रियाँ पैदल चली आ रही हैं। ये कितने ही पूजा-पंडालों को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित कर आई हैं। थक चुकी हैं, भीड़ की कशमकश से पसीना-पसीना हो चुकी हैं, लेकिन धीर गति से चली आ रही हैं। सभी विवाहिताओं की माँग का सिन्दूर खिलखिला कर अपनी परम तृप्ति की बात किस चरपरी जबान से कह रहा है !

मैं जल्दी-जल्दी हर तरुणी को एक-एक नजर देखने लगता हूं। शरीर का वर्ण श्याम है या अर्द्ध-श्याम है, या गौर है, या वासंती है, या हल्की झाँई का भी है, लेकिन आज तो जो भी वह वर्ण है गौण रह गया है ! आज तो हर युवती का लास्य, उसका हर्षित चाँद-सा मुखड़ा और उसके चेहरे पर आई हुई सुखानुभूति ही प्रमुख रह गई है। दाम्पत्य का नवनीत जैसे सबने ताजा ही अपने चेहरे पर प्रसाधन की मानिंद मल लिया है !

और, आज मैं देख पाता हूँ, बंगाल की अतिशय सूक्ष्म दृष्टि वाली कलात्मक अभिरुचि की अभिव्यक्ति किस तरह पारंगत हुई है। हर युवती, वधु और पत्नी ने अपनी-अपनी पसंद की साड़ियाँ पहनीं हैं। स्वयं ही अपने गोपन के रंग से हर साड़ी के रंग को मैच करने की साव-धानी भी बरती है। और सबसे ऊपर साड़ी के अलंकार को रसमय करते हुए वक्ष की परिपक्वता के उत्सको बेलबूटेदार ब्लाउज या जम्पर से इतना वैभवशाली बना दिया है कि मैं ठिठका सा रहा जाता हूँ। विधाता का तन्तुवाय जो भी रहा है, यह तो सच ही है कि अपनी सौन्दर्या-नुभूति की तन्तुवाय स्वयं यह रमणी ही है और रही है और रहेगी। और मैं देखता हूँ, इन बंग-पत्नियों ने कम से-कम मात्रा में आभूषण क्या धारण किये हैं, दूसरे रूप में अपने पतियों की आग्रही इच्छाओं को ही अपने अपने कानों में और अपनी लचकदार ऊर्ध्व-कांठी ग्रीवा में मन्दार हार बना कर झुला लिया है। इनकी कलाइयों में और उँगलियों में काँच की चूड़ियों पर मुकुटवत् बैठे हुए, जब मैं आभूषण देखता हूँ तो सहसा ही मेरे मुख से निकल पड़ता है :

"मेरा निवेदन है, सुंदरी पत्नी अधीश्वरी,
आभूषण की प्रवृत्ति की पराधीनता कहाँ सबल,
सबल तो तेरी ये कोमल कलाइयाँ बाँधें मुश्कें पति की !"

और मैं सोचता हूँ, क्यों इस नारी ने अपने शरीर को इतने विविध रंगों, भिन्न-भिन्न कोटि के वस्त्रों और, स्वयं स्वर्णकारों को आश्चर्य-

चकित करते हुये, बढ़-चढ़ कर निर्मित किये हुए आभूषणों से और अलंकारों से ऐन्द्रजालिक बना लिया है ? तो मैं स्वयं को ही उत्तर देता हूं, "तेरा क्या है ? तू निरा कथाकार और कवि ठहरा। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना ही तूने सच जानी है। निरी नारी की मनोभिव्यंजना में ही तूने परितोष किया है। यह इसकी अपनी अलंकारिता कहाँ ? यह तो पूरे दाम्पत्य की आनन्दमय सृष्टि है ! नारी का श्रृंगार उसके पति की स्वर्णिम अनुभूतियों को साक्षात् करता है और साकार बनाता है।"

पूरे दो दिन हो गये हैं। जब थक जाता हूँ तो अपने कमरे में लौट आता हूँ। लेकिन फिर जा खड़ा होता हूँ और देखता हूँ कि मानव-समुद्र का अथाह जल इतनी मात्रा में इस खाली होने वाली दिशा से से खाली होकर भी क्या खाली न हो सकेगा.....? स्त्रियों की और पुरुषों की भीड़ प्रति बीस मिनट में एक हजार की गिनती से चली जा रही है। जो यह कर्णभेद शोरी हो रहा है, कितना प्राणवान है ? यही मानवी स्वर है वह, जिसकी खोज करने के लिये वे विदेशी पर्यटक हमारे देश की प्राचीन इमारतों और भग्नावशेषों को एकटक निहारने में ही अपनी शक्ति शेष कर दिया करते हैं। बाढ़ आती है तो जल का रंग पृथ्वी से समाहित होकर धूल-धूसरित हो जाता है। लेकिन यह मानवी बाढ़ जो उमड़ी चली आ रही है, उसका रंग तो कितना बहिर्मुखी है, कितना बहुरंगी है, कितना बहुरागी है, कितना बहुसांगीतिक है, कितना बहुदृष्टि-कोणी है और, कितनी उत्ताल तरंगों वाली बहु कल्पनाओं की गीतिका से लब्ध है।

रहा होगा, इन पति-पत्नियों का आपसी क्लेश, वैमनस्य, तिरस्कार, प्रपीड़न, उत्पीड़न और रूदन-मर्दन। रहा होगा कल तक इतना विरस जीवन इनका कि ये अपने पारिवारिक पिंजड़े से मुक्त गगन में उड़-भागने के लिये कलप रहे होंगे। रहा होगा इनका जीवन छोटी-मोटी संधियों की गाँठों से गंठीला। लेकिन आज तो ये युगल जोड़ियाँ अपने

लिये माँ-दुर्गा की प्रशस्ति के एवज में नई पीत रेशमी डोरियाँ लिये जा रही हैं, जिससे ये अपने दाम्पत्य को नये सिरे से मर्यादित करेंगी और नये सिरे से नया वर्ष पुलकभरा बनायेंगी।

अब रात के तीन बजे हैं। भीड़ में रेशे भर भी कमी नहीं आई है। जितने भी पूजा-पंडाल हैं उनकी पूरी परिक्रमा करनी लाजिम है। इस पंडाल से यह भीड़ उस पंडाल की ओर बढ़ी जा रही है। मैं इन बंग, बिहारी, उत्तरभारती दम्पतियों को और इनके नव-हर्ष, नव-उन्माद, नव उन्मेष को अपना अभिवादन देता हूँ।

सच, कुछ सप्ताह, कुछ मास, कुछ वर्ष पति और पत्नी का पारस्परिक विछोह-विद्रोह और कल्पित श्रेष्ठता की प्रतिद्वन्दिता भले ही परिवार की चहारदीवारी में भूतों की सी मनहूस वाणी बनकर निनादित होती रहे, लेकिन आज जो यह उन्माद भरा पातिव्रत और पत्नीव्रत अपने-अपने पराग-कणों का भाण्डार बिखेरता हुआ आगे बढ़ रहा है, यही वह मूल स्त्रोत है जिसकी परिकल्पना ऋषियों ने की, महर्षियों ने की और दार्शनिकों ने की, संतों ने की, और आज जिसका मैं खुली आँखों दर्शन कर रहा हूँ......

[३]

आज दीपावली है। और इस पुनीत अवसर पर श्रीमती जी भी चार रोज हुए आ पहुँची हैं।

मैं देखता हूँ, आज हमारी धोबन ने अपने गैले-भद्दे-टखनों के ऊपर नई चाँदी की भारी-भारी कड़ियाँ पहनी हैं। उन कड़ियों के नीचे नई चाँदी की नेवरिया पहनी हैं और उन नेवरियों के नीचे नई चाँदी के टनके पहने हैं। हमारी धोबिन ज्यादा सुन्दर नहीं है। पर पति उसे बहुत चाहता है। घाट जाता है, तो उसे अपने साथ ले जाता है। रास्ते में अपने बैल के नथुनों की रस्सी उसके हाथ में थमा देता है और

खुद रसिया गाता हुआ चलता है। हमारी धोबिन घूंघट में से उन राह-गीरों को निहारती हुई चलती है, जो उनके जोड़े पर जलन खा कर फीकी हंसी हंसा करते हैं। इस धोबी ने हमारी धोबिन के हाथों में नई चाँदी की बंगड़ी डाली है। इन बंगडियों के नीचे उसके पहुँचों में नई चाँदी की गजरी पिरी हुई है। इन गजरियों के नीचे नई चाँदी की पहुँची है। शायद हमारी धोबिन बाजुओं के बाजूबंदों के लिये रूठ गई होगी, इसीलिये वे बाजूबंद भी हमारी धोबिन की मांसल चिकनी बहियों में जकड़े हुए हैं और उन्ही की जड़ मे एक रेशमी काला फुँदना लटक रहा है।

आज हमारी धोबिन यहाँ आई तो उसकी आँखों मे बारीक काजल था। रात शायद उसने एक पान भी खाया था, सो उसकी सूखी हुई गुलाबी इस वक्त उसके गेहुँवें ओठों पर कत्थई बन कर चमक उठी थी। यह कत्थई रंग उसके स्निग्ध चेहरे पर इतना कलात्मक हो उठा था कि इस गमग तो यही लिखा जा सकता है कि जैसे तो उसके अधरों का रति-रस रसलाभ से भी दूसरी स्तर का उच्च पद पा गया हो। उसकी ओढ़नी आज फीके गुलाबी रंग की है और उसकी घघरिया में चुन्नटें ज्यादा नहीं हैं। जिस के नीचे से उसके पदतलुवे उझक कर दिखा रहे हैं कि देखो, हमने मेंहदी लगाई है और चूँकि मेंहदी की सुहागभरी सज्जा पहले गोरी के हाथों की गोरी हथेलियों पर आकर गौरवान्वित होती है, मुग्ध होकर देखता हूं कि उसने हथेलियो पर भी मेंहदी रचाई है।

आज हमारी महतरानी ने रेशमी जम्पर पहना है। अगरचे यह जम्पर किसी का पहना-उतरा हुआ है और उसमें पसीने के दाग है, क्योंकि पसीने की बदबू, यह अच्छा ही होता है, औरत की बगल से बह कर निकल जाती है। इस जम्पर में और उसकी गोटे लगी ओढ़नी में शैया की सलवटें हैं। पर इस मैले उठानेवाली महतरानी की वक्ष पर यह जम्पर और यह उतराई ओढ़नी खिल उठी है। और हमारी आधी गोरी और आधी काली महतरानी का चेहरा काफी भोला और गोल-

मोल है; वह इस ओढ़नी में गहरा गुलाबी रंग का हो चुका है। हमारी महतरानी अभी चार महीने ही हुए ब्याह कर आई है, इसलिये अभी अपने पिया की प्यारी ज्यादा से ज्यादा बनी हुई है। आज वह प्यार उसकी गुलाबी परछांई का हद से बढ़ कर रसीला हो उठा है। झाड़ू हाथ में वह थामे हुए है। उन हाथों में उसने नई मोटे काँच की चूड़ियाँ पहनी हुई हैं। माँग में छटपुटी-सी रोली भरी हुई है। चेहरे पर एक अप्रत्याशित उमंग मचल रही है। उसकी पुतलियाँ किसी गुप्त चुहल से आज चंचल बनी हुई हैं।

मेरी अनन्त श्रद्धायें इस महतरानी को, जो हमारा कूड़ा और मैला नियमित समय पर उठा ले जाती है!

हमारी महाराजिन आज झक-झक नहीं कर रही है। खुद ही आज उसने हलुवा खीर पूरी बनाये हैं। हल्के-हल्के वह कोई गीत गुनगुना रही है। जुओं व लीकों से पटी पड़ी हुई उसकी केश-मींडियों में जो तेल आज पड़ा है, वह कड़वा तेल कतई नहीं है, क्योंकि विलायती नकली सेंट की सुवास यदाकदा आ जाती है। हमारे बच्चे खिलानेवाले रामू को सुबह से उसने तनिक भी नहीं झिड़का है। प्रेम से उसे छोटी-छोटी आज्ञायें देती है और हँसती जाती है। नये वस्त्र महाराजिन ने भी पहने हैं। मैले माँजने से दरारों पड़ी हुई अपनी हथेलियों के ऊपर उसने भी बारीक मेंहदी रचाई है और जता दिया है कि उसके दिल की उमंगें कितनी बारीक जालीदार अभी तक इस प्रौढ़ावस्था में भी बनी हुई हैं। तलुओं की रेखाओं पर भी उसने मेंहदी की बारीक झालर चित्रित की है। हमारी महाराजिन का नाम रूपकुमारी है। अपनी बहियों पर यह नाम उसने खुदवा रखा है। बार-बार वह अपने नाम को अपनी बहियों पर देखती है और शायद यह सोचती है कि ऊपर 'उनका' भी नाम और खुदवा लेती तो कैसा होता? कढ़ाई में कुछ तलती जा रही है। अभी उसने रामू से कहा है, "रे तेरी बहू मैं चुनूँगी। ऐसी

गोरी-मिट्टी लाऊँ कि तू अपना मुंह उसमें देख ले।" रामू धत्त कह कर बाहर भाग गया है। और महाराजिन अपनी बात से अंदर-ही-अंदर इतनी गुदगुदा उठी है कि उसका अंग-अंग रोमांचित हो आया है। हमारी महाराजिन का रंग तसल्लीबख्श रूप से गोरा है। पर गोरेपन पर सबसे ज्यादा चित्ताकर्षक बात है, उसके दायें गाल पर एक काला तिल !

आज धोबिन को कपड़े देते हुए मैं देखता हूं कि पास-पड़ोस में, ऊपर-नीचे के कमरों में सब ने सफेदी करवा ली है। उस सफेदी की सुफेदी में सबके कमरे चमक उठे हैं, उस चमक में सबका गात झिलमिला उठा है, उस झिलमिलाहट में सबकी उमंगें, सबके दिल, सबकी सोई-पड़ी आशायें सबकी अंदरूनी कुलबुलाहट, सबके मन और सबकी मनपुरसी वाली खूजली न सिर्फ तरल हो उठे हैं, बल्कि अगुरू धूप की नाईं उन कमरों को सुवासित कर उठे हैं, और इसी सुवत कल-कल में सब चहचहा उठे हैं। पास-पड़ोस की हर युवती षोड़षी और प्रौढ़ा भाभी और उनकी नवयुवती कन्यायें और नववयस्का नातिनें रीझे नहीं थक रही हैं। दीपावली का त्योहार तो खैर मनेगा ही, पर सबके मन के उद्वेग का त्योहार भी आज इतना मन लेगा कि आत्म-विस्मृति में सभी लम्बे अरसे तक अपनी-अपनी सुधि खोये रहेंगे।

मैंने धोबिन को कपड़े दे दिये, तो घूँघट जरा आगे खींच कर वह बोली, "बाबूजी, आज हमारा ईनाम मिलना चाहिये।"

महतरानी भी अपनी बत्तीसी में ही थोड़ी खिलखिलाकर बोली, "बाबूजी, ईनाम तो दें, पर एक रेशमी साड़ी भी दें।"

रसोई में महाराजिन ने काफी रसीली ध्वनि में अपनी अर्ज की, "बाबू, मैं ईनाम के साथ फटा-पुराना रेशमी कपड़ा न लूँगी। अबकी बार एक लहँगा सिलवाकर देना होगा।"

मैंने आराम से एक सिगरेट जलाई। दैनिक समाचार के पन्ने उलटे, उसके बाद गमलों में दो-तीन लोटे पानी उलीचा-सींचा। 'देखा

कि तीनों ही उत्तर की अपेक्षा में खड़ी हैं। मैंने कहा, "भई, अपनी-अपनी फरियाद और फरमाइशें मालकिन साहिबा से करो।"

धोबिन ने उत्साही होकर मालकिन साहिबा को आवाज दी, "बहूजी!"

बहू जी बाहर आईं। मैंने, महारजिन ने, धोबिन ने, महतरानी ने एक साथ बहूजी को देखा। मुस्करा कर मैंने तो रुचि से संयत होकर पीठ फेर ली। श्रीमती जी के रूप-सौन्दर्य की राजलक्ष्मी आज क्या दीपावली की राजलक्ष्मी से होड़ लेने का इरादा बाँध चुकी है? पर तीनों ने बहूजी को देखा और चुहल में तीनों ही थिरक उठीं। बहूजी ने आज कीमती लोशन से केशों को चमका कर पंजाबी तर्ज से अपने स्वर्ण-तंतुओं से पालित केशों को संवार कर अपने रतिमुख को तप्तकनक सा बना लिया है। हरी जार्जेट के ऊपर चौड़ा सुनीन गोटा था, उसे अपनी लुंगी के रूप में दोनों गोल कंधों पर झुला लिया है। सोने की बारीक चूड़ियाँ, कानों में जड़ाऊ ईयर-रिंग, गुलाबी उंगलियों में तीन डायमकट की जड़ाऊ अंगूठियाँ। एक रंग को मैच करता हुआ सलवार सूट और सैंडोकट नुमा बॉडिस। क्रीम, लिपस्टिक, पाऊडर, गुलाबी सैंडल। और वह सब शृंगार, जिसमें किसी भी ऋषि की हजारों सालों की तपस्या भंग करने की सामर्थ्य और किसी भी साम्राज्य को उच्छिन्न करने की शक्ति हो! मानो अति-रंजना का बीज अपनी वय की कठोर जमीन को फोड़ कर और अपनी खोल को उतार फेंक कर कलियाते हुए ऊपर उठ आया हो, जमीन में अपनी नवजड़ की कोमल शाखा को मृदुता से जमाकर, रोप कर!! रात सूखे मेवे, मलाई, खजूरों से अभिषिक्त दुग्धपान का सौभाग्य ये मुझे दे चुकी हैं।

किसी और मौके पर बहूजी इन तीनों को डाँट पिलातीं और जरा करारी व्यंग की बौछार से मेरे ऊपर भी कठिन ओलों की वर्षापात करतीं (बज्रपात की नाईं!), पर, देवकन्या की नाईं बाहर आते ही उन

एक अपूर्व शान्ति, एक भव्य दाम्पत्तिक सौख्य, एक नैसर्गिक संतुष्टि, एक भौतिक परितृप्ति और चेतना का एक मधुर दुराव इन चारों नारियों के शृंगार और उनकी उल्लासित रति में मुझे स्पष्ट दीखा।

तीनों की कुशल-क्षेम पूछी और जरा लाज से सुर्ख हो कहा कि तीनों ठहरो। अभी उनका मुंहमाँगा ईनाम मिलेगा। और कल सुबह उनका भोजन भी यहीं से दिया जायेगा।

एक अपूर्व शांति, एक भव्य दाम्पत्तिक सौख्य, एक नैसर्गिक-संतुष्टि, एक भौतिक परितृप्ति और चेतना का एक मधुर दुराव इन चारों नारियों के शृंगार और उनकी उल्लसित रति में मुझे स्पष्ट दीखा। और बरांडे से यह भी देखा कि आज तो सारी बाड़ी की नारियाँ अपने विभिन्न पन और अलग-अलग वय को अतिक्रमित कर बस यौवन की हरितिमा से मदमस्त हो उठी हैं और झूम उठी हैं।

कि पड़ोस का बंगाली बुड्ढा अपने सौतेले बेटे पर खीझ कर झुंझला उठा है, "परेर धने पद्दारी-परेर धने लवका पैरार मतो बड़ाच्छो !! निजेर संसारेर अवस्था देखे व्यवस्था कोरबे नाहीं।" उसका नाती अभी कुंवारा है, पर उसकी मसें गठ चुकी हैं और उस आयु की चौखट पर सशंक-सा खड़ा है, जहाँ पर वह किसी भी अदेखी-देखी स्त्रैण आहट-भर से विचलित हो जाता है और शरमाकर फड़क उठता है। आज वह भी छैला बना हुआ है और बार-बार हर किसी नवांगना को दबी दृष्टि और कनखियों से चोरी से उझक कर ताक लेता है और घूर लेता है। "रसिक कक्खन भद्रलोक होते पारे ?" यह बात मैंने बंगाली भद्रलोकों से सुनी है। कि रसिक लोग भद्र पुरुष नहीं हुआ करते। लेकिन इसका वास्तविक अर्थ मैंने यह समझा, कि भद्र लोक न तो यौवन पाते हैं, और न वे उस यौवन का हार्दिक भोग छैले रसिक बन कर करते हैं। बात जरा तमीजदार नहीं जँची। सचाई भी इसमें शतांश भर नहीं है। है फकत सम्पन्न लोगों की अभावग्रस्त लोगों के प्रति एक विडंबनामयी नफरत। यही कि क्यों ये छोटे लोग (?) इस तरह जरा सा यौवन का खुमार पाकर मचल उठते हैं। जैसे तो हीरा-मणिक-मोती से मंडित और जटित कृष्ण-राधा के मंदिर में सिर्फ

वही प्रवेश पा सकते हैं जो कि हजारपति हैं या करोड़पति हैं ! समाज और लोकाचार की मर्यादाओं को लांघकर अपने रति-भाव का प्रदर्शन करना कहाँ तक शोभा की बात है, यह विवाद का विषय है। बाजारों की सड़कों पर , गलियों से, प्रायः मैं युवकों, युवतियों को, गले में मालायें और अन्य असाधारण शृंगार से सज्जित मस्त देखा करता हूँ। वे झूमते हुए चलते हैं और लोग उनसे ईर्ष्या करते हैं। कुढ़ कर उन्हें कोस उठते हैं—'छैले ! छबीलियाँ !'

जिस वर्ग में जितनी पूँजी अधिक संचित होती चली जाती है, वह अपने पक्व रति भाव को उतना ही गोपनीय और गुप्त और मायापुरी सा बनाकर आडंबर से भारी-बोझिल बना लिया करता है। दुनिया के सभी साम्राज्यों का भी यही लम्बा इतिहास है। जो गरीब तबका है, अपने यौवन की मस्ती के उसके रंग-ढंग जरा उथले हैं, क्योंकि वे स्वयं थोड़े पानी में रहते हैं। उनके लिये पुष्पशैया और रेशमी गद्देदार पलंग नहीं होते, उनकी नवयुवतियों के लिये तेल-फुलेल और प्रसाधन के साधन अपरिमित नहीं होते। आरामप्रद कमरों में उनके लिये आदमकद शीशे नहीं होते। पर यह तवका जूही, चमेली पुष्प की तरह से तुरंत मुकुलित होता है। अपनी आंतरिक गंध का आदान-प्रदान शीघ्र करता है और अपने उस अतिरेकानन्द की अनुभूति का भी शीघ्र पतन कर डालता है। कसूर इसमें किसका है, यह जरा सोचने की बात है। अगर आवारा कुत्ते और कुत्तियाँ बीच सड़क पर गर्भधारण करते हैं तो इसमें आज कुत्सित और कदर्य से विपाक्त सभ्यता नाक-भौंह क्यों सिकोड़ती है ? इसी तरह यदि सड़क के फुटपाथ पर अपना रैन-बसेरा बसाये हुए भिखारी-दंपति या एक कमरे में ही प्रौढ़ माता पिता, और जवान बेटे, कुँवारी जवान बेटियाँ अवश भाव से जीवन-यापन करती हुई जरा-सी चुहल से छलक पड़ती हैं, तो उनके उस नग्न या अनढँकी भोग-कामना को हम इतनी छिछली दृष्टि से क्यों देखते हैं, और देखकर क्यों उसको सह्य नहीं मानते

हैं ? सुना है कि जब हट्टे-कट्टे तगड़े बैल को गाड़ी में जोतने के लिये खरीदा जाता है तो उसी दिन उसके अंडकोष कुचल दिये जाते हैं ताकि वह संतति-उत्पादक न रह जाये। तो क्या हमारा यह अपर-वर्ग चाहता है कि हमारा यह इतर वर्ग शोषित जो होता रहता है, सो एकदम उन बैलों की तरह अपने परिवार का भोग भी न कर सके !!!

यौवन की स्मिति और उच्छ्वास उच्चकोटि की पवित्र होती है। राष्ट्र के नर-नारी जब उसका अंतरदोहन करते हैं तो राष्ट्र के कोने-कोने में एक अभिनव प्रकाश असंख्य नक्षत्रों की राह से रिझने लगता है। पर आज इस यौवन की उच्छ्वास का सही और अगही उपयोग कुछ चुनिंदा इन्सान ही कर पाते हैं और एक लम्बी दीन-हीन अर्द्धमृत इंसानों की कतारें इस उच्छ्वास को या तो अपने गले में ही खट्टी डकार बना कर अपने इर्द-गिर्द बदबू फैला देती हैं या अपानवायु की राह निःसृत कर देती हैं। यह राष्ट्र, यह राजनीति, यह समाज आखिर दम्पतियों का सामूहिक उत्थान ही तो खड़ा करना चाहते हैं, या बस, कोरी बकवास के लिये अपना व्यर्थ वाग्जाल का ताना-बाना अंधीदृष्टि, बेमतलब बुनते रहते हैं। वह जमाना गया, जब कि इस इंसान की रखवाली ईश्वर से किये जाने की अपेक्षा रखी जाती थी। लेकिन अब इंसान को अक्ल आ गई है कि इंसान की रखवाली इंसान ही रख सकता है। आज जब कि हमारे देश में तथाकथित आजादी आ गई है तब यह अकल ग्रहण करने में आना-कानी क्यों है कि समूचे राष्ट्र के यौवन की रखवाली भी यौवन के सृजनहारों को ही करनी है। पर दुःख है, यौवन का भोग भी सम्पत्ति का भोग सा बना हुआ है। हम रुकें और यौवन के भोग को भी जन-जन का पहला मानवोचित अधिकार घोषित कर दें। यह कोढ़ की बीमारी रुक जानी चाहिए कि हमारी कुछ बेटियाँ नवजवानी पायें तो उनके घर वाले हाय खाने बैठ जायें और इसी कामना में मैं बाहर निकल जाता हूँ कि देखूँ कि आज कलकत्ता के फुटपाथों पर पड़े हुए हजारों बेघर-बार

के परिवार किस तरह दिवाली मनाते हैं---अपना यह त्योहार ! रोकर या अपने यौवन की उच्छवासा से मचल कर ?

[४]

सुहाग की महिमा हमारे यहाँ इतनी विशिष्ट तौर-तरीके की है कि विश्व में वह ध्रुव तारे सी कतई अलग और स्पष्टतया भिन्न प्रतीत होती है। सुहाग का सिंदूर इस महिमा को महामहिम बना कर सृष्टि का एक अद्‌भुत संपुट बन जाता है ! जिस संपुट में न सिर्फ पत्नी का और उसके पति का, बल्कि उसकी समूची गृहस्थी का अंधकार प्रतिक्षण प्रज्वलित होता रहता है। विचित्र मानवी प्रयोगशाला का निष्कर्ष है यह। क्षीर सागर की कथा हम श्रवण किया करते हैं। लेकिन पत्नी जिस क्षण अपनी माँग में सुहाग का सिंदूर भरती है तो उसकी समस्त देह में एक महा क्षीरसागर उत्ताल तरंग की लहरें मार उठता है ओर पति के एक ही चुम्बन से, स्पर्श से वह सागर इस कठोर मिट्टी से भरी धरती को और इसके सभी काठिन्य को तरल बना देता है। जीवन जब तक तरल है, तभी तक दम्पति उस में अपनी क्रीड़ा कर सकते हैं।

अरे, दाम्पत्य का हर क्षण एक दम तरल चाहिये !

एक कमरा छोड़ कर मेरे पड़ोस में एक बंगाली परिवार रहता है। बरसों से उसने एक कमरे में ही अपनी गृहस्थी की श्वासें अपने दिल की तपिश से तपा कर स्पात् सी बनाई हैं और उन्हीं को अपने चारों ओर सुरक्षा की ईंटों के रूप में खड़ा कर शेष जीवन का परकोटा तैयार कर लिया है। ११ और १७ साल के दो लड़के हैं और दोनों ही स्कूल में पढ़ते हैं। पत्नी की आयु ३० और पति की आयु यही ३५–४०। पति दमकल (फायरब्रिगेड) में काम करता है। पहले अपनी टैक्सी थी, पर कर्ज में वह छिन गई। दमकल में उसे सदा मुस्तैदी से चुस्त अटेंशन रहना होता है। वैसे भी उसकी भरी-पूरी देह में अभी किसी भी कोण से शिथिलता नजर नहीं आती। एक कमरा है और घर में

जवानी की लगाम पकड़ चुके दो बेटे हैं, इसलिये मौशाय बाबू हफ्ता-हफ्ता दफतर में ही पड़े रहते हैं और अपना रेडियो वहीं फिट करवा कर सजना-बालमा के गाने सुनते रहते हैं।

पत्नी के चेहरे की स्निग्धता बकरार है। गति में चुहल है। आँखों में अभी जैसे और सुरुर कल्लियाना शेष है। काजल लगा लेती है, तो उस दिन वह खास तौर पर मस्ती अपना लेती है और सब सहेलियों से गहरी सरस बातें करने की इच्छुक रहती है। गरीबी की मार इतनी गहरी है कि प्रायः उसे दो साड़ियों के बीच ही मैं देखता हूँ। कुछ पाई-पाई बचाकर पति देवता अवसर नई साड़ियाँ ला देते हैं। पर वे ट्रंक में इस लिये सहेज कर रख छोड़ी हैं कि अब बेटों की वहुयें आयेंगी, तो पहनेंगी। गोद में और बच्चा नहीं है, इससे दिन में फुर्सत मिलने पर और बच्चों-वालियों का वह छोटा-मोटा काम कर देती है। सुबह ही टिफिन भर कर पति को नाश्ता भिजवाती है। फिर चाँद (स्नान) कर अपने सुघड़ नृत्यशील पद-तलुवों में महावर की लाली रचाती है और फिर लग जाते हैं उसे यही पैंतालीस मिनट अपने लम्बे चूल (केश) संवारने में और तब माँग के बीच सिंदूर भरती है। मैं कायल नहीं हूँ कि श्रीमती जी माँग में सिंदूर भरें। जिस दिन भी किसी तरह इस प्रौढ़ा नारी की बन आती है श्रीमतीजी को पकड़ बैठती है और उसकी माँग में सिंदूर भर देती है। सचमुच उस दिन मेरी सारी आधुनिकता काफूर हो जाती है और मैं श्रीमतीजी का सिंदूर की ललाई से दमदमाता हुआ चेहरा एकटक ताकता ही रह जाता हूँ!

[५]

इन दिनों शंख की ध्वनि का मूल्य घट चुका है। वह बजता है कभी-कदास, तो लोग उसे इस तरह से सुन लेते हैं जैसे तो वे सड़क पर चली हुई किसी फरफराती पास से गुजरती हुई मोटर का हार्न सुन लेते हैं। लेकिन वह भी जमाना था कि शंख रणक्षेत्र में गूँजता था और उद्-

भर थोड़ा निजमोगात हो जाते थे। या फिर पूजा के समय पुजारी आरती लेकर जब शंखध्वनि बजाता था, तो पास-पड़ोस की गृहस्थियाँ उस ध्वनि का अमृत बड़ी आतुरता से पी लिया करती थी। मैं किसी ऐसे ही शंख की तलाश में हूँ, जिस से फूँक भर कर एक ऐसी तरुणाई की सूचना दूँ कि लोग उसे सुनें और निहाल हो जायें।

इन पंक्तियों की रमणीयता एक दिन मैंने देखी थी, और उस दिन अपने अनायास मिले हुए सौभाग्य पर मुझे स्वयं ईर्ष्या हो आई थी। यही निश्चय मैंने किया था कि मैं अपने हर अभाव को प्यार के अश्रु बनाने में ही अपना जीवन निःशेष कर दूँगा।

करोल बाग, दिल्ली, में अजमल पार्क है। उन दिनों वह बन कर तैयार ही हुआ था। शाम का ग्रीष्म-कालीन सुखद समीर बह रहा था और फुर्सत से बैठा हुआ मैं कुछ ऊँचे घराने के सुन्दर बच्चों की क्रीडा को तन्मय हो देख रहा था। दृष्टि दो स्फटिक मणियों पर जा पड़ी . कुछ पचास हाथ की दूरी पर बगल की 'लान' में एक वृद्ध और एक वृद्धा बैठे हैं। उनके सौभाग्य का जोड़ा आज भी जीवित है और है उनका दाम्पत्य एक दीर्घ जीवन के तेज-मंडल से परिव्याप्त। पहले तो ऐसा लगा कि जैसे किसी जीवन-प्रवाह में बहे हुए दो हिम-खंड यहाँ पर आकर रुक गये हों। वे एक ही ओर देखते हुए बैठे थे। उनका रंग काफी गोरा था। तरुणाई का गोरापन व्यक्ति को सिक्त करता है और खून की हलचल का सुरूर पिलाने के लिये उतावला रहता है। इस वृद्धावस्था का उनका गोरापन व्योम की ललाई को शरमा रहा था। दोनों के केश सफेद हो चुके थे। दोनों वस्त्र भी सफेद ही पहने थे। मुझे बरबस ग्रीक माइथोलाजी की वह कहानी याद आ गई जिसमें एक दम्पति ने एक देवता की सेवा करने के बाद यही वरदान मांगना उचित समझा था कि वे एक ही दिन और एक ही क्षण में अपने प्राण तजें और आगामी जीवन में भी वे इसी प्रकार साथ रहें। यह वृद्ध दम्पति उन्हीं हजारों सालों पहले के पति-पत्नी के प्रतिनिधि-स्वरूप लग रहे थे। उनके

चेहरों से असीम संतोष, पूर्ण भोग की तुष्टि, आकंठ लालसाओं का पान और प्रीति की अन्तिम तपिश की अंतिम उपासना टपक रही थी। कठोर जीवन की लम्बी उमर के तपस्वी वे वहां पर बैठे हुए यही भान दे रहे थे कि जैसे अभी आकाश-भ्रमण करते हुए यहां धरती पर उतर आये हों।

उसी दिन मेरे मन में पहली बार चित्रकार बनने की धुन जागी थी। आज भी मैं उनके चित्र को अमर बनाने की लालसा रखता हूं। अरे, अमर वही चीज हो सकती है जो कि इस पृथ्वी का आलिंगन और आंगिक दोहन-मंथन तसल्ली से कर चुकी हो, अन्यथा अतृप्त वस्तुओं की संगति से विद्रूपवती कला स्वयं अतृप्त रह जायगी।

मुसलमानों की धर्मकथाओं में लिखा हुआ है कि कयामत का दिन आयेगा, उस दिन खुदा का दरबार लगेगा, सारे मुर्दे कब्रों से उठ कर जागेंगे और खुदा उनके पापों की सजा सुनायेगा; जितनी ही बार मैंने इस इतिहासिक कथा को सुना है, उतनी ही बार मैंने यही कहा है कि "इस बार की कयामत में खुदा को कई हजार-साल लग जायेंगे पूरी दुनियां को पूरी सजा सुनाने के लिये। और, क्या आपको मालूम नहीं कि कयामत तो अभी से शुरू हो चुकी है और खुदा ने लोगों के पापों की सजा सुनाने के लिये अपना सिर धुनना शुरू कर दिया है?"

भाई मेरे, हम न जाने किस नक्षत्र से किस मंत्र के वशीभूत उतर कर इस पृथ्वी-नक्षत्र में आते हैं और यहाँ पर एक नारी के साथ कुछ दिन सुखमय घड़ियाँ बिता कर न जाने किस नक्षत्र की ओर आगे बढ़ जाते हैं। जिस व्यक्ति का यहाँ का दाम्पत्य बेदाग और बेलाग रहा हो, वही कयामत के दिन सबसे पहले पूजित होगा और खुदा उसी की आराधना में अपना सर्वस्व भुला बैठेगा। सजा देना तक। मै सामने की दीवार पर टंगी हुई मणियों की माला उठा लेता हूँ। इस पर हमारे दादा ने अपने जीवन की प्रति सुबह राम-नाम की लम्बी गिनतियाँ गिनी है। लेकिन, इस पर मैं उन दम्पतियों की गिनती गिनना शुरू कर देता हूँ जो कि कयामत के दिन खुदा के हाथों पूजित होंगे और कयामत को सृष्टि के मंगलोत्सव में बलात् परिणत कर

देंगे । पहली मणि मैं करील बाग के अजमल पार्क के इसी वृद्ध दम्पति के नाम की अंगुलियों में थामता हूँ और अतिरेकानंद में डूब जाता हूँ ।

[६]

और दूसरी मणि....राजपूताने की अरावली की पर्वतमाला के बीच में एक ग्यारह गाँवों की रियासत । इतिहास में जिसकी गद्दी प्रसिद्धि पा चुकी है और जिसके अवसान के बाद से देश में मुसलमानों का कारवाँ बेधड़क चला आता रहा है । उसी रियासत के राजा के यहाँ तीन दिन मेहमानगीरी का मौका मिला । किसी रियासत के राजा की मेहमानगीरी में मेरे जैसे चेता पत्रकार के लिये खुशी की बात नहीं हो सकती । न मैं इस की चर्चा श्रेयस्पद मानता हूँ । लेकिन इन तीन दिनों में मैंने दाम्पत्य का नवाँ आश्चर्य देखने का प्रथम सौभाग्य अर्जित किया । जीवन में आशाप्रद फुर्सत मिलेगी तो उसका एक उपन्यास लिखकर अपने जीवन को एक सेहरा सौंप जाऊँगा ।

दूसरे दिन, राजा साहब के साथ चाय पीने के बाद अनुमति मिली कि राजमाता के दर्शन कर लिये जायें ।

राजमाता का दर्शन । मुझे ऐसा लगा कि जैसे व्यर्थ प्रदर्शन होने जा रहा है । लेकिन उसको दर्शन कहना ही आज में वांछनीय मानता हूँ ।

एक झोंपड़ी । उसमें एक कोने में पुरानी धूल से सनी हुई बंदूक टंगी हुई है । एक मैले-से कपड़े में कुछ कारतूस बँधे हुए हैं । नीचे एक चटाई पर एक मैला फटा-सा गद्दा; उस पर एक कम्बल । पास में एक कुत्ता, एक बिल्ली बैठे हैं । और सिराहने पर एक तस्वीर है किसी मृत नरेश की । इसी स्वर्गीय नरेश की जीवित पत्नी मैले से जनाने पाजामे में मैली-सी चोली के ऊपर एक कमीज पहने बैठी है और जब कि हमने शीत के प्रकोप से बचने के लिये दो स्वेटर, एक चेस्टर पहन रखा है, उस विधवा राजरानी ने मामूली हल्की-सी चादर ओढ़ रखी है । वह उठती है और अपने हाथ से पास में बँधी हुई पाँच छः गायों को चारा पानी देने लगती है । बड़े दुलार से वह गाय का नाम ले कर पुकारती है और वे गायें दुम हिला कर उस का दुलार पाने के लिये अपना हृदय खुला छोड़ देती हैं ।

इसी चार हाथ लंबी-चौड़ी झोंपड़ी में रहने वाली वह राजरानी अपने गुप्त दीन वेश में राजमाता है।

चाहे कठोर गरमी हो, या कठोर शीत या मूसलाधार बारिश, राजमाता अपनी इस झोंपड़ी को छोड़ कर दस गज दूरी पर खड़े हुये छोटे से वैभवशाली राजभवन में नहीं जाती। जिस दिन पति की श्वास का परिगमन नैसर्गिक हो गया था, उस दिन जो वस्त्र पहन रख थे, वही आज तक राजमाता ने धारण कर रखे हैं। उस दिन से वह नहाई तक नहीं है। लेकिन, इस साक्षात् सती की देह से एक विचित्र खुशबू प्रति क्षण निकलती रहती है। उस बिना नहाई राजमाता को आज आधुनिक शृंगार से वेष्ठित कर चर्चित कर दिया जाये तो उसके सामने कई हजार विभूषित नारियाँ लजा जायें। उस वीर राजपूत रमणी ने जिस क्षण देखा कि उस का पति इस धरा से दूर चला जा रहा है तो उसने लपक कर पिस्तौल उठाई और आत्महत्या कर पति के संग डगों को भरने के लिये तैयार हो गई। लेकिन ठीक उसी समय उस की पलकें अपने इकलौते नौजवान पुत्र पर जा पड़ीं और वह रुक गई। उस दिन से वह अपने इसी पुत्र नामधारी राजा के चहुँ ओर मुर्गी के फैलाये हुये डैनों का चंदोवा छाये जीवित रहती चली आ रही है। उस के चेहरे के चारों ओर जो तेजमंडल प्रतिभासित हो रहा था, उसे मैंने सदा के लिये अपनी पुतलियों पर उतार लिया है।

राजमाता ने सुनाया, "उन्होंने (उस के स्वर्गीय पति) सदा शिकार के समय मुझे पहला मौका दिया कि मैं ही अपनी बंदूक से शिकार को सर करूँ। उन्होंने मुझे कभी किसी बात का कष्ट नहीं दिया। वे नहाने के समय मेरे स्नानार्थ जल में इत्र डाला करते थे।"

आज भी वह सती राजमाता जीवित है और प्रति रात्रि और प्रति सुबह उठते ही अपने तकिये के सहारे रखे हुये अपने दूर नक्षत्र के राही पति के चित्र की नतमस्तक हो आराधना करती है! उसका दाम्पत्य पति के अभाव में आज भी इतना मनोरम और तपोमय हो रहा

है कि मैं श्रद्धा से झुक गया और राजसी वैभव के प्रति कठोर अरुचि भरा मेरा दंभ वहीं भूलुंठित हो गया। उस राजमाता ने अपने वैधव्य को सुहागित स्मृतियों के रेशमी आंचल से ढँक कर इतना गोपनीय बना लिया है कि ऊषा का खुला हुआ घूँघट भी इतना गोपनीय न रह सके !

आप अपनी पत्नी कैसे रखते हैं ? यह प्रश्न इस राजमाता के लिये शास्त्रों से भी सर्वोपरि मंत्र बन चुका है।

[७]

जिस दिन भारतीय सेना के एक भूतपूर्व प्रधान सेनापति कमांडिंग जनरल के तलाक का समाचार दैनिक पत्रों में प्रकाशित हुआ था, उस दिन मैं राँची में अतिथि-रूप में था। मिलिटरी कैम्प्स में ठहरा था। सैनिकों का 'फील्ड-कैरियर' खूब सुन चुका था। पर निकट से उन के दाम्पत्य का लेखा-जोखा लेने का अवसर न मिल पाया था।

यहाँ से वहाँ तक कैम्प लगे हुए हैं। उधर मेजर का बड़ा कैम्प है। उस के आस-पास सैकण्ड लैफ्टीनेन्ट और कैप्टेन्स के कैम्प हैं। यहाँ पर सभी ने अपनी पत्नियाँ ला कर रख छोड़ी हैं। सब से पहले मेरी मुलाकात कराई जाती है एक सिख युवक से। वह प्रौढ़ है, पर उस की मस्ती और विनीत नम्रता युवकों के दिखावटी सदाचार को अतिक्रमित करती है। वह पहले सिपाही था। अब भी उस में छोटे सिपाही सी झिझक है। पर अब वह कैप्टेन है। उसकी पत्नी अब भी उसी भाँति सिपाही की पत्नी की तरह सादे लिबास में रहती है। लेकिन, उसका निजत्व ऊँची सैलरी के दंभ से मरोड़ नहीं खा गया है। सम्पन्न घराने के अफसर अब भी मजाक में उसे सिपाही कह कर रस लेते हैं। और ये दोनों पति-पत्नी इसी रस को अत्यधिक जायका लेकर पीते हैं। दोनों की आँखों में चमक है। दोनोंकी पुतलियाँ अपने भविष्यको इसी विनीत ढंग से प्रतिभासित करने लगी हैं, यही उनका सूक्ष्म परिचय है।

उधर दूसरे कैम्प में उस कैप्टेन की पत्नी एम. ए. है। ये जाट दम्पति हैं। उस रमणी ने एम. ए. कर अपनी हैसियत का वांछनीय परि

पा लिया है, यद्यपि वह बी. ए. है। पर आप उस की पत्नी को एम. ए. न कह सकेंगे। सादा गृहस्थी के वातावरण में उस ने अपना गोपन छिपा रखा है। उस के एक प्यारी बेबी है और सब कैम्पों में जा कर नटखट हरकतों से हरेक का कुछ न कुछ नुकसान कर आती है। पति को शराब से फुर्सत कम ही मिलती है। पत्नी का गृहस्थी का कर्तव्य सदैव सर्वोपरि रहता है। उसके कैम्प में, सिवाय उस की बेबी के शोर के, हमेशा नीरवता छाई रहती है।

इधर वह सैकंड लैफ्टिनेन्ट है। अच्छे घर का चुस्त हँसमुख संस्कृत युवक है। पत्नी भी उसे अच्छे मालदार घर की कालेजियेट और लाइट म्यूजिक में दक्ष मिली है। दोनों में सदा इस बात पर मीठी चखचख रहती है कि पत्नी अपनी चाय की टेबल पर उस की राह देखा करती है, पर पति कहीं और, और किसी की चाय-टेबल पर गप्पें हाँका करता है। पत्नी ने अपने कैम्प को इतना सजा रखा है कि प्रायः सभी अफसर यहाँ आकर बैठना और कुछ घंटों ब्रिज खेलना पसंद करते हैं। पत्नी हर अफसर की संयत मजाक का संयत उत्तर देती है और सदा हर अफसर की रुचि का नाश्ता तैयार कर पेश करती रहती है। अपने पिता की गिरिस्ती में वह रह चुकी है। उसी के पारिवारिक संस्कार विद्यमान हैं। अक्सर नौकर से वह झगड़ उठती है, पर पति की सहानुभूति उसे इस मामले में नहीं मिलती। और गुस्सा उसका ऊँची डिग्री पर चढ़ जाता है तो पति तुरन्त टैनिस का रैकेट उठा कर किसी अन्य अफसर की पत्नी के साथ खेलने चला जाता है। और सुबह जब पत्नी नहा-धोकर अपने सुहाग की रक्षा के लिये ईश्वर की आराधना करती है तो उसका गुस्सा शांत सरोवर की तलहटी में भारी होने के कारण डूब जाता है। दोनों का दाम्पत्य अपनी मुक्त क्रीड़ायें भी करता है और संपुट की रहस्यमयी किल्लोल भी!

वह मेजर है। फील्ड पर जब वह तीन हजार सिपाहियों की परेड कराते हुये आकाश तक को गुंजाता हुआ कहता है, 'अटेन्शन'! तो

वे सिपाही खट्खट्टाक करते हुए अटेन्शन हो जाते हैं। वही मेजर अपनी एम० ए० पत्नी के सामने कठोर सिपाही न रह कर पके अनन्नास सा खट्टा-मिट्ठा बन जाता है और उसके प्रेम को आकंठ पीने की लालसा में आज भी सचेष्ट है।

इस क्षण आठ-दस अफसर मेजर के साथ ब्रिज खेल रहे हैं। मेजर की पत्नी अपनी सर्वोच्च रेशमी साड़ी में अपने श्रेष्ठ चित्ताकर्षक डंक-युक्त सौंदर्य को मोहक साँपिनी की तरह से चकित-भ्रमित करती हुई पतिकी कुर्सीकी बाँह पर बैठी हुई अल्हड़तासे उनकी बगल में सटी हुई झूल रही है। मेजर और अन्य कैप्टेनों के मुंह से सिगरेट का धुँआ कश पर कश के मरोड़ खा कर वातावरण को रोमांटिक बना रहा है। सब अफसर मेजर से साथ बीयर के "सिप" ले रहे हैं। कुछ अन्य अफसरों की पत्नियाँ भी बैठी आपस की चुहल में सरस भाग ले रही हैं। मेजर की पत्नी भी बीयर के कुछ सिप लेती है कि मेजर के मुँह से शोखी के साथ सिगरेट छीन लेती है। मेजर अफसरों के साथ बैठे रहने के कारण गंभीर है। पर चुहल खाकर पत्नी के मुंह में सिगरेट लगा देता है और वह बिना हिचकिचाहट के तीन कश खींचती है और उस का धुँवा बीच टेबल पर बिखरा देती है। मेजर कहता है 'यू नॉटी ब्यूटी।' पत्नी बीयर की एक सिप लेकर उत्तर देती है, "आय लव यू! दैट्स वाह्य आय ऐम नॉटी।" मेजर इस उत्तर से परितृप्त हल्केसे मुस्करा उठता है कि एक अफसर चल रहे खेलमें उन्हें शिकस्त देता है कि पत्नी उत्साह देती हुई कहती है, "नैवर माइंड माय डीयर, हैव द डिफीट फार माय लव्ज सेक!"

पापड़ की कड़क, कचोरी का खस्तापन, गुलाबजामुन की मुलामियत, नृत्य की लचक, वेश्याओं की शोख मौखिक अदायें, सर्प की लहरियादार गति, बढ़िया मलमल की चुन्नट, चुम्बन की कसकभरी अतृप्ति और इन सब के संतुलन में सिपाही के दिल का बाँकापन! सिपाही का सूक्ष्म अर्थ क्या होगा? मेरे लेखे, 'कुतुबमीनार के शिखर पर खड़ा हुआ ताज-महल!' अगर आप नहीं समझे, तो इस तरह लिखूंगा, 'उद्दीप्त तरुणी के

'यू नॉटी ब्यूटी!'

उन्नत तप्त दोनों उरोजों की भावना-लहरी के बीच तैरती हुई नाव में बैठा हुआ लौह इंसान !' आप इस नाव के नीचे से भावना-लहरी के दोनों तट हटा लीजिये, वह लौह-इंसान मोम-सा पिघल कर बासी बैंगन सा शिथिल हो जायेगा !!

सिपाही के जीवन में जितना ही प्यार होगा, उतना ही वह प्रसिद्ध वीर होगा। सिपाहियों की पत्नियाँ यदि इस प्यार का प्रतिदान पूरी मात्रा में नहीं दे पातीं, तो वे जबरदस्त अन्याय करती हैं। जो तरुणियाँ किसी सिपाही के साथ विवाह कर अपना प्रथम कर्तव्य नहीं निभा पातीं, वे अपने पति की टाँगें पकड़ कर पीछे खींचने वाली होती हैं। सिपाही वह, जिसकी गति का हर कदम अपनी प्रेयसि की श्वास-लहरी का संबल पा कर आगे बढ़े !

गिरिस्ती की पत्नी चक्की या बेलन की कठिनता को पहचानती है। सोसाइटी और क्लब की सदस्या-पत्नियाँ युवकों के "शेकहैंड" की कठिनता को पहचानती हैं। सिपाही की पत्नी इन दोनों कठिनताओं को अ—आ—इ—ई के मानिंद मानती है और सबसे अधिक वह बंदूक के कुंदे की कठिनता के अंतिम छोर को पहचानती है, जिसकी आड़ में ही उसके पति का जीवन सुरक्षित और दीर्घ रहेगा। इसीलिये वह अपने पति के लिये जितना भी प्यार बन पाता है, उसके बंदूक के कुन्दे में भरती रहती है। फौजी पत्नी में और गिरिस्ती की छोकरियों में बंदूक की गोली और पिस्तौल की गोली का अंतर होता है। गिरिस्ती के दायित्व से अलग वह बस पति की उमंगों को ही अपने प्यार के शिखर पर इस तरह पोसती और सहेजती है जैसे तो वह मात्र दिये की लौ है और किसी आँधी के झोंके की पहली थपेड़ खाते ही न बुझ जाये। फौजी पत्नी का दाम्पत्य पति के चुम्बन और उसके आलिंगन में ही समाप्त नहीं हो लेता। वह रणक्षेत्र में जा कर भी अपनी गगन-व्यापी शंखध्वनि बजाया करता है।

नहीं, जरा रुकिये। मैं गलती टाइप कर गया हूँ। 'फौजी पत्नी'

एक गलत शब्द है। सिपाही की पत्नी हर क्षण अपने पति की संगति में प्रेयसी ही रहती है। इसलिये आप कहें, फौजी प्रेयसि !

वह सिख युवक सैकंड लैफ्टीनेंट है। उसकी पत्नी को देखिये। उँगलियों में असली नग की चार जड़ाऊ अंगूठियाँ। गले में जड़ाऊ हार। कम-से-कम चार सौ का सलवार सूट। पर सबसे अमूल्य तो इस छल-छलाती फौजी-प्रेयसि का रूप-सौंदर्य है। जरा आप देखिये तो, अपनी पत्नी को देख-देख कर यह सिख अफसर कितना गौरवशाली इन्द्रपद पाये हुये है ! दाम्पत्य का कितना अमृत्व यह संचित किये हुए है......

सैनिकों की दुनिया में यह प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है कि आप अपनी पत्नी कैसे रखते हैं ? मुक्त जीवन, मुक्त समाज, सैनिकों और उन की पत्नियों का पारस्परिक हास-बिलास, सुनियोजित नैतिक मर्यादायें। रामायण में पढ़ा है कि सीता ने अशोक वाटिका में रावण से सिर्फ एक तिनके का परदा किया था। आज वह तिनके का परदा सिर्फ सैनिकों की दुनिया में ही साक्षात् और जीवित है। फौजी गिरिस्तियों के मुक्त जीवन में कदाचित ही, एक हजार में एक दुर्घटना अवांछनीय नर-नारी के अन्तर्मिलन की हो जाया करती है। अन्यथा हर गृहस्थी अपने आप में सुरक्षित, हर पत्नी अपने आप में एक प्रकाश-स्तंभ ।

सिविलियन-क्षेत्रों में भी काश ! फौजी-पत्नियों सा आदर्श प्रतिष्ठित हो जाये। यही, कि हर गृहस्थ अपनी पत्नी को उस स्तर पर बैठा कर रखे, जहां से सदैव ही प्रेय और श्रेय और उपमेय और नेह का दीप-त्योहार प्रतिक्षण मनाता रहे।

पर यह तो थोथी बात नजर आती है। प्रायः सिविलियनों का हार्दिक स्पन्दन नून-तेल लकड़ी की तलब और फरमाइश में ही अर्द्धमृत या मूर्च्छित हो जाया करता है। गिरिस्ती की पत्नी पहली संतान के बाद प्रेयसि किसी भी हालत में नहीं हो सकती, न रह पाती है। लेकिन, नहीं, यह गलत है। मैं ठीक ही नया भविष्य देख रहा हूँ। आज यह फौजी दुनिया भारत सरकार के व्यय पर खड़ी हुई है। जब कि हर नागरिक

का जीवन सरकार के व्यय पर खड़ा रहने लगेगा और नागरिकों की अपनी सरकार रहेगी, उस समय ही दाम्पत्य का लुत्फ, पुरजोर लुतफ आयेगा !

यह राजनीतिक संघर्ष क्यों भला ? यह वादों का युद्ध क्यों भला ? क्या विश्वयुद्धों से सिर्फ एक व्यक्ति का स्वार्थ सिद्ध होता है ? ये आम-निर्वाचन क्यों इतने बड़े बड़े खर्चों से ? सबका यही तो आधार-भूत निश्चय और लक्ष्य है कि हम ऐसी सरकार बनायेंगे, जिस में हमारी जनता को हर चीज मुहैया होगी। जनता कौन ? हमारे सामूहिक परिवार न ? अर्थात् हमारे दम्पतियों की गिरिस्तियाँ !

जरा सोचिये गंभीरता से। हर पाँच वर्षों बाद निर्वाचन चलता है। आप अपनी पत्नियाँ कैसे रखते हैं, इस मसले को हल करने में आप को जो भी कष्ट सामने आये हों, उनका खूब ध्यान कर, उनका बारीकी से अध्ययन करने के बाद ही किसी ऐसे व्यक्ति को वोट देने की बात आपने सोची है कभी, जो अपने, आप के, औरों के दाम्पत्य को सुखी बना सकने की शर्त्त कबूल कर ले ?

शर्त। शर्त का अर्थ हुआ करता है नैतिक कर्तव्य।

इसी राँची की एक शाम। तय हुआ कि आज शाम को शहर चला जायगा। इस सिख सैकंड लैफ्टिनेंट की 'कार' में सब सवार हुए। मेजर के पास अपनी निजी कार नहीं है। सिख युवक को इसलिये जरूरत है कार की, क्यों कि उस की पत्नी बड़े घर की बड़ी लाड़ली बेटी है। फौजी कैम्प से हम लोग शहर गये और कार एक 'बॉर' के आगे जा कर रुक गई। पुरुष वर्ग एक ओर के सोफों पर फैल गया। पत्नियाँ एक ओर सोफे पर बैठ गईं। पूछा गया कि क्या मँगाया जाये। पुरुषों ने अपने लिये शैम्पेन, बीयर, रम चुना। स्त्रियों में से एक ने अपने लिये एक गिलास शैरी। दूसरी ने विम्टो। उस सिपाही की पत्नी ने अपने लिये सिर्फ शर्बत। और, एक गृहस्थी के संस्कारों से सम्पन्न सुशीला पत्नी ने अपने लिये स्क्वेश ! पीने का दौर चला और जल्दी ही पुरुष वर्ग नशे की खुमारी से शोर करने लगे। परिहास जोरों से चल पड़ा।

उसमें पत्नियों ने भी भाग लिया। लेकिन सीता जी का तिनका वहाँ पर दृढ़ प्रहरी-सा खड़ा रहा। तुलसीदास जी ने लिखा है कि सीता जी वह तिनका अपने हाथों में पकड़ कर रखा करती थीं। पर यहाँ फौज में वह तिनका सब पति संभाल कर रखते हैं !

कार जब लौटी तो वह सिख मचल गया कि उस के साथी सैकंड लैफ्टिनेन्ट की मृदु-गायिका पत्नी एक गीत सुनाये और कार रोक कर खड़ा हो गया जंगल में। गाना हो तो कार चले। कितना मीठा दुराव। उस पत्नी को आखिर एक सिनेमा गीत सुनाना पड़ा। और उसके साथ सभी पुरुष वर्ग ने कोरस का शोर मचाया उस जंगल के बीहड़ मार्ग में। और फिर कार दुबारा रुक गई। अब दूसरा गीत सुनाना होगा होगा। दूसरा गीत भी गाया गया और इस पत्नी का पति मजे ले-ले कर नशे में धुत सब से ज्यादा रेंक रहा था।

राँची का वह फौजी कैम्प। उस की तरह से देश भर के फौजी कैम्प। कठोर डिस्प्लीन जहाँ पर गोली भरी खुली संगीन-सा निशाने से छूटने के लिये बैठा रहता है। उस दायरे में कितना सरस दाम्पत्य है ! मेरे एक आत्मीय भी फौजी हैं। वे कहा करते हैं मुझ से, "अरे, तुम साहित्यिक क्यों बन हो ? पत्नी अगरचे सफेद हाथी होती है, फिर भी अगर उसे चूल्हे की मालकिन बनाना है तो कम-से-कम इतना राशन घर में होना चाहिये कि उसे चौबीसों घंटे में से एक मिनट भी सुस्वादु भोजन बनाने से फुर्सत न मिले। क्या वैसी जुगाड़ तुम्हारे पास है ? गिरिस्ती की पत्नियाँ कोरा प्रेम नहीं माँगतीं। उन्हें तो 'डायल्यूटेड प्रेम' चाहिये। वह डायल्यूशन कम-से-कम आटेदाल से भरपूर तो हो !"

इसी के समानान्तर दूसरा मार्ग यह है :

एक मेजर। ब्राह्मण जाति का खुशदिल युवक। मिलिटरी का सख्त सिपाही। परेड में सात-आठ सौ सिपाहियों की कठोर कमान सम्हाल चुका है। पत्रकारी-जगत की दरिद्रता से ऊब कर ही वह फौज का भोग करने चला गया था। देश की सुरक्षा करते हुए जीवन को सदा

के लिये गिरवी रख देने के एवज में उसे जीवन का भरपूर भोग मिला है। आज भी वह कमर सीधी कर चलता है। विनम्र इतना कि जितना एक तपस्वी संत भी न हो। जो भी सात-आठ सौ वेतन मिलता है, अपनी एक शरणार्थी बहन और उसकी बच्चियों, भाई-बहनों और अपने रिटायर्ड पिता की सेवा में नियोजित कर देता है।

उसे वृन्दावन की एक तरुणी पत्नी के रूप में मिली है। जब वह उसके घर में अपने चरण लाई तो नंगे पैर आई थी। दिन में दो बार राधाकृष्ण का स्मरण करती थी। उसकी धोती को कोई बच्चा स्पर्श तक कर देता था तो उसे दुबारा धोती थी। प्याज का टुकड़ा, सब्जी के थैले में बाजार से चला आये तो वह सब्जी पैंडे के पानी से पाँच बार धोई जाती थी। घूँघट में से अपने सात साला देवरों से बात करने के लिये उसका मुख पूरे पाँच साल तक नहीं खुला था।

जमाना करवट लेता है। इस गिरिस्ती की इस अबोधा पत्नी ने भी करवट ली और अपने पति के साथ आगे बढ़ी। अब वह मेजरनी है। कनाट सर्कस पर या कलकत्ता की चौरंगी में दीख पड़े तो आधुनिक युवतियाँ उस के परिधान और उसकी नवीनतम रुचियों का अनुसरण करना चाहें। पति के साथी अफसरों से वह खुल कर, हँस कर मिलती है और एकांत में उनका स्वागत करना चाहती है एक भद्र महिला की भाँति। अब घर में वृन्दावनी परम्परा नहीं है। अगर इसे मुसलमानी या म्लेच्छी परम्परा न कहें शिष्टता के नाते, तो कहें कि अब उसकी दुनियाँ में रुढ़िवादिता नष्ट हो चुकी है। बैरा और 'आया' भी रखती है। पिता ने जो रामायण बाँचने तक की विद्या का ज्ञान दिया था, वही काफी है। लेकिन पति ने जो ज्ञान नये जमाने का दिया है उसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

घर में चार लड़कियाँ। पति फील्ड पर मेजर। घर में मेजर के ऊपर मेजरनी साहिबा। वह डाँटेगी, हुकुम चलायेगी, आज्ञायें देगी, अपने तर्ज पर अपनी गिरिस्ती का ऐसा बंदोबस्त चलायेगी, जैसे तो

और नए सांचे के लिए एकदम नया तंदरुस्त
चिकना चमकता बदन चाहिए।
चाहे टी० बी० ही हो।

यह बंगाल का प्रसिद्ध 'बंदोबस्त' हो ! मेजर साहब उसकी बातचीत के बीच में बोलते हैं तो कभी-कभी फटकार तक खा लेते हैं ।

कि चौथे प्रसव के बाद मेजरनी साहिबा को टी० बी० हो गई है । मेजर साहब ने अपना दिन-रात का बचा-खुचा आराम इसी राजरोग की खिदमत में झोंक दिया है । और हर साल अपनी पत्नी को खुश देखने के लिये वेतन का एक चौथाई रुपया उसकी चिकित्सा में चढ़ाना शुरू कर दिया है । पत्नी भी पति के माथे पर बल देखने से दुखी हो उठती है । वृन्दावन की वह लजीली बेटी, जो कि प्याज के छिलके की बू से एक सौ इक्कीस छींक उठा बैठती थी, आज प्रति सुबह अंडे को दूध में मिला कर पी जाती है---शांत मन ! जब नये साँचे में ढल गये तो पूरे ढलें, नकल कर क्या होगा ? और नये साँचे के लिये एकदम नया तन्दुरुस्त चिकना चमकता बदन चाहिये । चाहे टी० बी० हो, पर मेजर साहब ने अपनी मेजरनी के चेहरे पर इस भयंकर रोग की शिकन न आने दी, बल्कि अब उनकी पत्नी पहले से कहीं अधिक चिकनी और चित्ताकर्षक हो उठी है !!

मिलिटरी में रहते हुए सुरा पान का दौर जिस कदर चला है, उसे देखते हुए किसी नौसिखिये कहानी-लेखक के लिये यह कल्पना करना आसान था कि यह मेजर अपनी पत्नी की टी. बी. से निराश होकर किसी अफसर की नाजिनी बेटी से अपना नया रिश्ता कायम करने लगता । पर लानत फेंकता है यह मेजर एक लाख एक नाजनियों पर और उन्हें एक साँस में वार सकता है अपनी इस राजयक्ष्मा-ग्रसित प्रियंवदा मेजरनी पर !!!

अपनी गिरिस्ती में अपने बच्चों के बीच बैठे हुए अपनी प्यारी पत्नी का एक मीठा दुराव हजारों चुनिंदा वेश्याओं के हजारों चुम्बनों से कहीं श्रेष्ट नहीं होता ?

[८]

शिल्पी अपनी छेनी और हथौड़े से पत्थर की शिला को शनैःशनैः काट-छाँट कर उसे अपने मन का रूप और दिली शकल देता रहता है और वह खुरदरा शिलाखंड बहुत जल्दी उस छेनी की काट से किसी भी नवांगना

की करभा से भी चिकनी स्निग्धता ग्रहण करता चलता है और अपने बीच मूक प्राण भी बसा लेता है ! कलाकार की कला उस शिलाखंड के गैरमोज़ँ तल को पहले स्वर्ण-सिंहासन में बदलती है और तब उस पर इस शान से जा विराजती है कि दुनिया की लक्ष-लक्ष आँखें विस्मय और आश्चर्य और मंत्र-मोहकता से ऊपर उठ कर स्वयं ही नत हो जाती हैं।

राष्ट्र क्या है ? दम्पतियों का खिलखिलाता उद्यान ! जनतंत्र क्या है ? जनता के लिये जनता की सरकार नहीं। यह १९ वीं शती का कच्चा अर्थ था। आज बीसवीं शती का अर्थ मैं आपको दूँगा : दम्पतियों के लिये दम्पतियों की सरकार !! हमारे राष्ट्र में हजारों जीवित इंसानी शिलाखंड जैसे पड़े हैं, नये सिरे से उग रहे हैं। सदियों की जंग खाई हुई अलसता से हमारे चारों कोने मकड़ी के जालों से सनें हुये हैं। और हमारे मस्तिष्कों के भी आठों कोने ऐसी भाग्य-लिपि से आवृत हैं, जिन्हें कि स्वयं विधाता भी पढ़ने से त्रास खाता है, क्यों कि उनकी लिखावट उलझ गई है। ऐसे शिलाखंडों का निर्माण करने के लिये हजारों राजनीतिज्ञ और हजारों समाज सुधारक असमर्थ सिद्ध होंगे। राजनीति का शिल्पी दम्पतियों के उद्यान के फूल-फल तोड़ सकता है, उसे उखाड़ सकता है, उसकी कतरब्योंत कर सकता है; पर वह किसी दम्पति की एक भी पौध को सहेज कर खड़ा नहीं कर सकता। राजनीति वास्तव में राष्ट्र की सीमाओं पर आठों प्रहर की प्रहरिनी हुआ करती थी। पर हमारे निर्बुद्धि राजनीतिज्ञों ने और नये युग के 'चाणक्यों' ने उस राजनीति को घर-घर की चौखटों के बीच की विभाजक-रेखा बना कर छोड़ दिया है। आज राजनीति की सिद्धि तो उसी क्षण होगी, जब कि राजनीति हमारे घर के आँगनों से विदायगी ले ससम्मान ! और देश की सीमाओं पर यह देखने आये कि अन्य राष्ट्र के दम्पतियों की गति हमारे दम्पतियों की गति से कितनी पिछड़ी हुई है ! या आगे बढ़ी हुई है.....?